ग्राम्य अर्थशास्त्र

(उत्तर प्रदेश के हाई स्कूल परीक्षा के अर्थशास्त्र विषय के लिये स्वीकृत)

लेखक

पण्डित दयाशङ्कर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०

अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

श्री शंकरसहाय सक्सेना, एम० ए०, बी० काम०

प्रिंसिपल, महाराणा कालेज, उदयपुर तथा डीन, कामर्स-फैकल्टी

राजपूताना विश्वविद्यालय

और

श्री महेशचन्द्र, एम० ए०, बी० एस-सी० (आनर्स), 'विशारद'

अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक

नेशनल प्रेस

इलाहाबाद

चौदहवाँ संस्करण] १९५५ [मूल्य २)

भूमिका

मैं उन व्यक्तियों मे से हूँ जो अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रचार छोटे दर्जे के विद्यार्थियों मे भी चाहते हैं। इसलिये मैंने अर्थशास्त्र-सम्बन्धी कई विषयों पर पाठ अपनी 'बालबोध' पुस्तक में दिये। वह पुस्तक चार भागों में प्रकाशित हुई और कई वर्षों तक उत्तर प्रदेश की प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिये पाठ्य-ग्रन्थ के रूप मे स्वीकृत रही। मुझे यह सूचित करते हर्ष होता है कि इस पुस्तक के अर्थशास्त्र सम्बन्धी पाठों को अध्यापकों और विद्यार्थियों ने बहुत पसन्द किया। इससे यह भी सिद्ध हो गया कि अर्थशास्त्र ऐसा सरल विषय है, जिसका ज्ञान छोटे बच्चों को भी प्रारम्भिक पाठशालाओं में आसानी से कराया जा सकता है।

अर्थशास्त्र का विषय सरल और महत्वपूर्ण होने पर भी उसे प्रारम्भिक पाठशालाओं के पाठ्य ग्रन्थों मे अभी तक स्थान नहीं मिला। सन् १६१७ तक तो जिस वर्ष मैंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की, अर्थशास्त्र को बी० ए० से नीचे दर्जे की परीक्षा के पाठ्य विषयों में स्थान नहीं दिया गया था। उन दिनों अर्थशास्त्र के विषय का पढ़ना बी० ए० क्लास से ही आरम्भ होता था। इन्टरमीडियट तक पढ़ने वालों को तो इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिलता था। कुछ वर्ष बाद अर्थशास्त्र को इन्टरमीडियट के पाठ्य विषयों की सूची मे स्थान मिला और सन् १६४० मे ग्राम्य अर्थशास्त्र को उत्तर प्रदेश की हाई स्कूल परीक्षा के पाठ्य विषयों की सूची में स्थान पहले-पहल मिला। ग्राम्य अर्थशास्त्र के पाठ्य क्रम के अनुसार ही यह पुस्तक तैयार की गई थी और इसका शीर्षक "ग्राम्य अर्थशास्त्र" रक्खा गया था। सन् १६५० से पाठ्य विषय का नाम अर्थशास्त्र हो गया है। उसी के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक की पाठ्य-सामग्री मे यथोचित परिवर्तन व परिवर्द्धन कर दिया गया है। अत. यद्यपि पुस्तक का शीर्षक वही पुराना "ग्राम्य अर्थशास्त्र" है, पुस्तक वर्तमान पाठ्य क्रम के अनुसार है। पुस्तक में इस बात का भी पूरा ध्यान रक्खा गया है कि अब भारत की सीमाएँ पहले जैसी नहीं हैं और इसलिये यथा सम्भव उदाहरण तथा सम-

स्थाएँ भारतीय संघ की हैं। पुस्तक का प्रस्तुत चौदहवाँ संस्करण इसकी उपयोगिता तथा प्रचार का द्योतक है। इस नवीन संस्करण में यथोचित सुधार तथा संशोधन किये गये हैं।

इसमें जमींदारी प्रथा की बुराइयों तथा जमींदारी उन्मूलन एक्ट का यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। सहकारी समिति सम्बन्धी अध्यायों में भी उचित सुधार किया गया है। सामुदायिक योजनाओं, भूदान यज्ञ तथा पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में भी थोड़ी चर्चा की गई है।

महाराणा कालेज उदयपुर के प्रिंसिपल श्री शंकरसहाय जी सक्सेना तथा श्री महेशचन्द जी के सहयोग से यह पुस्तक तैयार की गई है। हम लोग आशा करते हैं कि इस पुस्तक से हाई स्कूल के विद्यार्थियों को ग्राम्य अर्थशास्त्र का विषय समझने में पहले से अधिक सहायता मिलेगी।

यदि कोई सज्जन इस पुस्तक की त्रुटियों की तरफ मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे या इसको और भी अधिक उपयोगी बनाने के उपाय बतलावेंगे तो मैं उनका बहुत आभारी होऊँगा।

दयाशंकर दुबे
अर्थशास्त्र अध्यापक
प्रयाग विश्वविद्यालय

विषय-सूची

पहला अध्याय

अर्थशास्त्र का विषय

दूसरा अध्याय

परिभाषाएं

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति

चौथा अध्याय

भारतीय गाँव की मुख्य पैदावारें

पाँचवाँ अध्याय

घरेलू और स्थानीय उद्योग-धन्धे

छठा अध्याय

आवश्यकताएँ

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो ?

नवाँ अध्याय

विनिमय

दसवाँ अध्याय

ग्रामीण फसल की बिक्री

ग्यारहवाँ अध्याय

वितरण

बारहवाँ अध्याय

औद्योगिक मजदूर

तेरहवाँ अध्याय

बटाई-प्रथा

चोदहवॉ अध्याय

जमींदार और किसान

पन्द्रहवॉ अध्याय

ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन

सोलहवॉ अध्याय

किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

सत्रहवॉ अध्याय

गॉव की सफाई

अठारहवॉ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा

उन्नीसवाँ अध्याय

मनोरंजन के साधन

बीसवाँ अध्याय

स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का प्रचार

इक्कीसवाँ अध्याय

पशु-पालन

बाईसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

अट्ठाइसवाँ अध्याय

ग्राम पंचायत

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारिता तथा सहकारी साख समितियाँ

तीसवाँ अध्याय

गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ

ग्राम्य-अर्थशास्त्र

पहला अध्याय

अर्थशास्त्र का विषय

अर्थशास्त्र पढने से पहले तुम अवश्य यह जानना चाहते हो—अर्थशास्त्र क्या है ? इसको समझना कठिन है या सरल ? सबसे पहले इस अन्तिम प्रश्न को ही ले लें। विश्वास करो, तुमने भले ही अर्थशास्त्र का पाठ्यक्रम पहले न पढा हो, परन्तु तुम अर्थशास्त्र के अनुसार काम करते रहे हो, तुमने अर्थशास्त्र के नियमों का अपने भरसक भली प्रकार उपयोग किया है। सोते, उठते, बैठते, पढते, लिखते, दौड़ते, वस्तु खरीदते व बेचते, फीस देते—सभी कार्यों मे तुम अर्थशास्त्र के नियमों का पालन करते रहे हो। जिस विद्या का तुमने इस प्रकार उपयोग किया है उसको पाठ्य विषय के रूप में पढना उसी प्रकार सरल है जिस प्रकार मातृभाषा बोलने वाले बालक को हिन्दी पढना। अर्थशास्त्र दैनिक जीवन की विद्या है और इसकी सरलता शीघ्र ही तुम्हें स्पष्ट हो जायगी।

अर्थशास्त्र कैसी विद्या है ? अगर तुम अर्थशास्त्र शब्द को ही ध्यान से समझो तो तुम्हारे मन में यह भाव अवश्य आएगा कि अर्थशास्त्र शायद "अर्थ का शास्त्र" है। "अर्थ" शब्द धन के लिए भी प्रयोग होता है और शास्त्र विधिपूर्ण विद्या को कहते हैं। इसलिए तुम सोच सकते हो कि शायद अर्थशास्त्र में धन सम्बन्धी अध्ययन विधिपूर्वक किया जाता है। तुम्हारा ऐसा सोचना बहुत कुछ ठीक है। व्यावहारिक जीवन मे हमारा तुम्हारा क्या सभी का काम धन के बिना नहीं चलता। अत. धन के कमाने और खर्च करने आदि के सम्बन्ध में किसी विषय में विचार करना उचित ही है।

लेकिन हम तुम्हारा ध्यान अर्थशास्त्र के असली मतलब की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। ऊपर हमने तुम्हारे दिमाग मे उठने वाले एक ही विचार की ओर

ध्यान दिलाया है। कुछ कुछ वैसा ही है जैसा हम कहे कि "फाउन्टेनपेन" का मतलब है कि फाउन्टेन का पेन अर्थात् झरने का कलम। अर्थशास्त्र के असली अर्थ जानने से पहले तुम यह सोचो कि अपने जीवन मे तुम विभिन्न काम क्यों करते हो, इसीलिए न, कि तुमको खाने, पीने, पढने, लिखने आदि की आवश्यकता मालूम पडती है। दरअसल कुछ काम तो हम इसलिये करते है कि उनके बिना हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं है। भोजन करना तथा पानी पीना ऐसे ही काम है। कुछ काम हम इसलिए करते है क्योंकि हम जानते है कि उनके बिना हम जीवन मे वह तरक्की न कर सकेगे जो हम करना चाहते है। पढ़ना, लिखना, धन कमाना ऐसे कामो के उदाहरण स्वरूप गिनाए जा सकते हैं। और कुछ काम हम इसलिए करते हैं क्योंकि हमारा मन कुछ इच्छाएँ प्रकट करता है। उदाहरणार्थ हमको भूख ही मिटानी है तो हम नित्य दाल रोटी खा सकते हैं। हम को विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ बनाकर या खरीद कर खाने की क्या जरूरत ? तुम कहोगे कि पेट तो गाय बैल भी भर लेते है, अगर आदमी होकर हम ऐसा न करें तो गाय बैल मे और हममे अन्तर ही क्या रह जायगा। यह सही है। मनुष्य होने के नाते तुम्हारी इच्छाएं रहती हैं और उन्हे पूरा करने के लिए भी तुम काम करते हो। अतः संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि जीवन चलाने के लिए, जीवन सफल बनाने के लिए तथा मानवी इच्छाओं की पूर्ति के लिए तुम काम करते हो। इसी बात को दूसरी प्रकार से भी कह सकते है। जीवित रहने, सफल बनाने अथवा अन्य कारणों से तुम्हारी आवश्यकताएं बनती हैं और उन्हे पूरा करने के लिये तुम विभिन्न काम करते हो। तुम उन्हे पूरा कर पाते हो या नहीं यह तो दूसरी बात है। परन्तु यह सत्य है कि अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तुम प्रयत्न अवश्य करते हो।

अर्थशास्त्र (Economics) क्या है ?

अब अर्थशास्त्र क्या है इसको हम समझ सकते हैं। "अर्थशास्त्र वह शास्त्र है जिसमे हम मनुष्य के उन प्रयत्नों का अध्ययन करते है जो वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करता है।"

यदि कोई मनुष्य अधिक प्रयत्न करता है तो वह अपनी बहुत सी आवश्य-

कताओं (wants) को पूरा कर लेता है और यदि वह थोड़ा ही प्रयत्न करता है तो उसकी कम आवश्यकताएँ ही पूरी हो सकेंगी। दूसरे शब्दों मे पहला आदमी अमीर होगा और दूसरा गरीब। यही दशा एक देश की होती है। अगर किसी देश के लोग अधिक प्रयत्न करके प्रकृति से बहुत सी वस्तुएँ प्राप्त नहीं करते तो वह देश निर्धन रहेगा। अर्थशास्त्र में मनुष्य के इन प्रयत्नों का ही अध्ययन किया जाता है। इसलिये अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें यह भी मालूम हो सकता है कि हम निर्धन क्यों हैं और किस प्रकार धनी बन सकते हैं।

"सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि अर्थशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें हम मनुष्य के अपने भरण पोषण के लिये किये गये प्रयत्नों का अध्ययन करते हैं।'

उदाहरण के लिये विद्यार्थियों में से ऐसे बहुत से होंगे कि जिनके पिताजी नौकरी करके, वकालत या डाक्टरी से धन उत्पन्न करते हैं। क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि तुम्हारे पिताजी इन पैसों को कैसे पैदा करते हैं और इनको कैसे खर्च करना चाहिये? क्या यह अच्छा होगा कि तुम्हारे पिताजी तनख्वाह पाते ही सब रुपयों को खर्च कर दें? नहीं, क्योंकि ऐसा करने से महीने भर का खर्च कैसे चलेगा? क्या तुम्हारे पिताजी सब रुपयों को मुफ्त में ही बाँट देते हैं। क्या वे रुपये के बदले में कुछ नहीं लेते? जब तुम मंडी में अनाज खरीदने जाते हो तो रुपये के बदले में गेहूँ, चना, मटर, चावल आदि चीजें खरीदते हो। तुम लोगों में से बहुत से गाँवों के रहने वाले हैं। वहाँ किसान खेती करके अनाज की उत्पत्ति करते हैं। जब फसल कटकर खलिहान मे आ जाती है तो उपज का थोड़ा सा हिस्सा तो खाने के लिये घर मे रख लिया जाता है और एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यापारी के हाथ बेच दिया जाता है, लेकिन एक बात और है। इन सबके पहले खलिहान पर—नाऊ, धोबी, मालगुजार, महाजन आदि का धावा होता है। शहर की तरह गाँवों मे नाऊ, धोबी, बढ़ई वगैरह को नकद पैसा नहीं मिलता। घर पीछे उनका हिस्सा बँधा रहता है। फसल कट जाने पर अनाज में से पहले उनका हिस्सा निकाल देना पड़ता है। महाजन जिनसे किसान रुपया उधार लेते हैं, सूद की जगह अनाज ही लेते हैं।

अर्थशास्त्र के विभाग

ऊपर दिये हुए उदाहरण से यह साफ हो जाता है कि हर एक मनुष्य जो अपने भरण-पोषण के लिये प्रयत्न करता है अर्थात् कोई धन्धा या पेशा करता है उसको सबसे पहिले धन पैदा करना पड़ता है, फिर वह उसके बदले उन चीजों को मोल लेता है जिनकी उसको आवश्यकता है, फिर वह उनका उपभोग करता है अर्थात् काम में लाता है या खर्च करता है, और यदि उसने कुछ और लोगों की मदद से धन की उत्पत्ति की है तो उनका हिस्सा बॉटना पड़ता है। साराश यह है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिये हमें उसको चार विभागों में बॉट लेना चाहिये—

१—उत्पत्ति (Production)

२—उपभोग (Consumption)

३—विनिमय (Exchange)

४—वितरण (Distribution)

अब हम आगे इन चार विभागों के सम्बन्ध में विचार करते हैं।

उत्पत्ति (Production)

हम ऊपर कह आये हैं कि अर्थशास्त्र हमें उत्पत्ति के बारे में बहुत कुछ बतलाता है, पर यह उत्पत्ति है क्या बला ? क्या केवल किसान ही का सम्बन्ध उत्पत्ति से है ? नहीं ! दर्जी, बढ़ई, हलवाई सब के सब उत्पत्ति का कार्य करते हैं। जुलाहा क्या करता है ? वह रुई के रेशों को इस प्रकार बुन देता है कि कपड़ा तैयार हो जाता है। दर्जी उसी कपडे को क्या करता है ? वह आपके बदन का नाप लेकर उस कपडे को काट छॉटकर इस प्रकार मिलाता है कि उसकी बनाई हुई कमीज व कोट आपके बदन पर ठीक फिट कर जाती है। इसी प्रकार हलवाई मैदा, खोवा, चीनी, वगैरह को इस प्रकार मिला कर, आग पर भून कर तैयार करता है कि मिठाई बन जाती है। बढई लकड़ी और कुछ कीलों को इस प्रकार मिला देता है कि हमारा हल, खाट, कुर्सी या मेज बन जाती है। कुम्हार गीली मिट्टी को चाक पर इस प्रकार सॅवारता है कि सकोरा, करई व हॉडी तैयार हो जाती है। किसान को ही ले लो। वह थोड़े से बीजों से मनों अनाज पैदा करता है। परन्तु कैसे ? वह बीज को एक खास ढङ्ग से

खेत में रखता है। फिर इस प्रकार से खाद व पानी डालता है कि बीज उनके तथा हवा के अंशों को लेकर अपना वेष बदल डालता है। उसमें से एक छोटा सा पौधा फूटकर निकलता है और वह पौधा अन्त में अन्न के सैकड़ा दाने पैदा करता है। कहने का मतलब यह है कि कोई भी अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ता। किसान से लेकर जुलाहे और दर्जी तक सब के सब पहले से प्राप्त किसी वस्तु को इस प्रकार से रखते हैं कि उस वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। जो रुई पहले हमारे बहुत कम काम की रहती है, उसी रुई की कमीज या कोट को हम अपना बदन ढकने में उपयोग करते हैं। "इसलिये किसी वस्तु की उत्पत्ति से हमारा मतलब होता है उसे और उपयोगी बनाना। किसी चीज को पहले से अधिक उपयोगी बनाना ही धन की उत्पत्ति कहलाती है।'

मान लीजिये आपके खेत के छोर पर आपका एक पुराना सूखा पेड़ खड़ा है। आप उसे बेचना चाहते हैं और श्याम आपको बीस रुपये देने को तैयार है। आपको दाम कम जँचता है और स्वयं पेड़ काट कर उसके तख्ते बना डालते हैं। इन तख्तों को आप तीस पैंतीस रुपये में बेच सकते हैं। पर यदि आप इन तख्तों से चौखट, कुर्सी, चारपाई आदि बना डालिये तो आपको पचास रुपये भी मिल जायँ तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन आपने इतने समय तक किया क्या? उस पेड़ की लकड़ी को तो बढ़ा ही नहीं दिया, उल्टा आप उसे काटते छाँटते रहे। हाँ, आपने उस लकड़ी की उपयोगिता अवश्य बढ़ा दी। यहाँ पर आप किसी प्रकृति से प्राप्त की हुई वस्तु की उपयोगिता बढ़ाते रहे हैं लेकिन जब वकील साहब हमारा मुकदमा जीत जाते हैं, जब ब्राह्मण महाराज हमारे लिये कोई पूजा कर देते हैं अथवा जब पुलिस का आदमी हमारे जान-माल की रखवाली करता है, तब तो शायद किसी वस्तु के रूप में परिवर्तन नहीं होता उपयोगी तो ये सेवायें भी होती हैं, परन्तु ये ऊपर बताई हुई वस्तुओं से भिन्न हैं। इनसे हमारी विविध आवश्यकताएँ सीधी-सीधी पूरी होती हैं। पहले दिये गये उदाहरण अर्थात् किसान का अनाज पैदा करना, दर्जी का कोट सीना, बढ़ई का हल बनाना आदि भौतिक (Material production) उत्पत्ति के उदाहरण हैं। लेकिन वकील, पुलिस, मास्टर वगैरह के कार्य अभौतिक उत्पत्ति

(Immaterial production) के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। भौतिक उत्पत्ति करते समय किसी वस्तु का रूप, स्थान आदि बदलकर उपयोगिता की वृद्धि की जाती है। अभौतिक उत्पत्ति के लिये सेवा-कार्य किये जाते हैं कि जिससे मनुष्य की आवश्यकता सीधे-सीधे पूरी हो जाती है।

उपभोग (Consumption)

उत्पत्ति का अर्थ समझ लेने पर अब हम उपभोग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। रामू किसी खेत में क्या बोवेगा इससे अब हमसे बिलकुल मतलब नहीं। वह स्वतन्त्र है चाहे वह गेहूँ बोवे, चाहे चना, चाहे जौ या बाजरा। मान लीजिये वह गेहूँ बोता है। फसल के कट जाने पर किसान गेहूँ को काट माड कर घर में लाता है। घर वाले उसको पीस कर रोटियाँ पकाते हैं और तब उसे खाते हैं। खाने से किसान की भूख मिट जाती है। उसे एक तरह का संतोष मिलता है और हम कहते हैं कि किसान ने रोटी का उपभोग किया। आम तौर पर उपभोग से किसी वस्तु का उपभोग करने या सेवन करने का मतलब निकाला जाता है। लेकिन अर्थशास्त्र में उपभोग के मतलब कुछ और ही होते हैं। मान लो तुम्हारे पास रोटी का एक टुकड़ा है। उसे तुम खा भी सकते हो और आग में डाल कर जला भी सकते हो। दोनों हालत में कहा जाता है कि रोटी का उपभोग हो गया, लेकिन अर्थशास्त्र के मत से केवल जब रोटी खाई जाती है तभी उसका उपभोग समझा जाता है, अन्यथा नहीं। रोटी खाने से मनुष्य को इस प्रकार का संतोष मिलता है, लेकिन यदि रोटी आग में जला दी जाय तो किसी की आवश्यकता पूरी नहीं होती और इसलिये किसी को सन्तोष नहीं मिलता। रोटी खाई जाय अथवा जलाई जाय दोनों हालत में उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। अतएव अर्थशास्त्र के अन्तर्गत जब किसी सेवा या वस्तु का इस प्रकार से उपयोग किया जाता है कि मनुष्य की कोई आवश्यकता पूरी होती हो अर्थात् जिससे मनुष्य को किसी प्रकार का सन्तोष मिलता हो तभी हम कहते हैं कि उस सेवा या वस्तु का उपभोग किया गया। एक बात और. कभी-कभी किसी वस्तु का उपयोग किसी अन्य वस्तु के पैदा करने में किया जाता है जैसे किसी कारखाने में कोयले का उपयोग। यहाँ पर देखना चाहिये कि कोयले के जलने से

किसी आदमी की कोई इच्छा पूरी हुई या नहीं। उत्तर है कि हमारे देखते तो कोई इच्छा पूरी होती नहीं दिखाई देती। परन्तु कोयले से भाप बनती है जो उपयोगी है। हाँ, अगर जाड़े के दिन हों और आप कोयला जला कर आग तापें तो हम कहेंगे कि आपने कोयले का उपभोग किया क्योंकि इस बार कोयला जलाने से आपकी ठंडक दूर करने की इच्छा पूरी हो गई।

उपभोग का महत्त्व

ऊपर हमने अर्थशास्त्र क्या है, इसके बारे में जानकारी प्राप्त की। इससे एक बात साफ हो गई, वह यह कि यदि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को तृप्त या पूरा करने के लिए धन के उपभोग की जरूरत न समझे तो सारे आर्थिक जीवन का ही अन्त हो जावे। सच तो यह है कि उपभोग ही सारे आर्थिक प्रयत्नों का लक्ष्य है।

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि उपभोग में इच्छाओं की तृप्ति के लिए धन का उपभोग किस प्रकार किया जाता है हम इसका अध्ययन करते हैं। लेकिन किसी आदमी की एक समय एक इच्छा तो होती नहीं उसके मन में अनेक इच्छायें होती हैं और सबसे बड़ा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कौन इच्छा पहले पूरी की जावे। इसका सबसे सरल उत्तर यह है कि जिस इच्छा को पूरा करने से सबसे अधिक सन्तोष प्राप्त हो उसको पहले पूरा किया जावे।

लेकिन वास्तव में मनुष्य क्या करता है? क्या उन्हीं इच्छाओं को पहले तृप्त करता है कि जिनसे अधिक संतोष प्राप्त होता है? मनुष्य के लिए कौनसी वस्तुएं आवश्यक (Necessaries) हैं, कौनसी आरामदायक (Comforts) और कौनसी विलासिता (Luxuries) की हैं फिजूल खर्ची किसे कहते हैं? उपभोग मे इन बातों पर विचार किया जाता है।

मनुष्य जिन वस्तुओं का उपभोग करता है उनसे उसके रहन-सहन का दर्जा (Standard of Living) बनता है। जैसे-जैसे आवश्यकताएँ बढती जाती हैं वैसे-वैसे मनुष्य उनको पूरा करने का प्रयत्न करता है, वह पहले से अच्छी जिन्दगी बसर करने की कोशिश करता है और उसके रहन-सहन का दर्जा ऊपर उठता है। उपभोग में हम रहन-सहन के दर्जे के बारे में अध्ययन करते हैं।

इसके सिवाय उपभोग का एक दूसरी दृष्टि से भी महत्त्व है। किसी देश

की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि वह धनी हो, किन्तु यह भी कम आवश्यक नहीं है कि उस धन का उपभोग राष्ट्र हित की दृष्टि से ही हो। जिस राष्ट्र के लोग और सरकार इस बात का ध्यान रखते हैं कि धन का अपव्यय तो नहीं होता वह राष्ट्र अधिक समृद्धिशाली होता है। यही कारण है कि राज्य देश की प्राकृतिक देन (वन, खनिज, भूमि आदि) की रक्षा करता है, और हानिकर वस्तुओ के उपभोग पर नियन्त्रण लगाता है।

थोडे मे हम कह सकते हैं कि किसी देश के रहने वालों को किस प्रकार रहना चाहिए, वहाँ की सरकार को उनके उपभोग के सम्बन्ध में किन-किन बातों मे दखल देना चाहिए इत्यादि बातों का उपभोग (Consumption) के अतर्गत अध्ययन करते हैं।

उपभोग का क्षेत्र

अब हम यह कहते हैं कि अर्थशास्त्र के इस भाग मे यह विचार किया जाता है कि मनुष्य जो तरह तरह की वस्तुओं का उपभोग करता है, कहाँ तक वह उसके और देश के लिये लाभदायक है और किस हालत मे वह हानिकारक होता है। लगे हाथ इस बात का भी विचार किया जाता है कि मनुष्य कैसा रहता है और उसका रहन सहन का दर्जा क्या होना चाहिये तथा उस दर्जे को बनाये रखने के लिए देश की सरकार को क्या करना चाहिये।

विनिमय (Exchange)

लेकिन सोचने की बात है कि आजकल कोई आदमी अपने मतलब की सारी वस्तुएँ नहीं उत्पन्न करता। कोई केवल किसानी करता है तो कोई नौकरी, कोई मजदूर है तो कोई बढई, कोई धोबी है तो कोई चमार। चमार के लिये यह बिलकुल जरूरी है कि जूते बेचने से आने वाले पैसों से आटा खरीदे और मजदूर मजदूरी की रकम से दाल-चावल मोल ले। ऐसा क्यों होता है? बनिये के पास आटा इतनी अधिक मात्रा मे रहता है कि वह आटे से पैसों को अधिक उपयोगी समझता है और हमारे चमार के पेट के लिये तो आटा जरूरी है ही। कहने का मतलब यह है कि दोनों ओर वालों को कुछ फायदा होता है तभी अदल-बदल होता है और जब दो वस्तुओं का अदला बदला होता है तो एक वस्तु के कुछ वजन के लिये थोड़ी सी दूसरी वस्तु दी जाती है। उदाहरण के

लिये, हो सकता है कि बीस सेर गेहूँ के लिए दस सेर चावल मिले। इस प्रकार अर्थशास्त्र (Economics) की दृष्टि से दो सेर गेहूँ का मूल्य हुआ एक सेर चावल। आजकल गाँवों को छोड़कर शहरों में तो ऐसे उदाहरण बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। अधिकतर पैसे देकर हम-तुम बाजार से तरकारी, मसाला आदि खरीद लाते हैं। अगर सेर भर गेहूँ का मूल्य छः आना है तो हम कहेंगे कि गेहूँ की कीमत छः आना सेर है। **वस्तुओं को इस तरह से देने-लेने का नाम विनिमय है।** पहले जमाने में जब रुपये-पैसे का चलन नहीं था तो वस्तु से ही विनिमय होता था।

विनिमय के साथ प्रश्न उठता है विनिमय की दर का, अर्थात किस प्रकार यह निश्चित किया जाय कि एक रुपये के बदले में कितने सेर गेहूँ बेचा जाय अथवा एक मिर्जई को बनाने के लिये रामू दर्जी को कितने पैसे दें। इसके अलावा विनिमय के अध्ययन से हमें पता चलता है कि किसान, कारीगर तथा व्यापारी माल को बाजार में लाकर किस प्रकार बेचते हैं। गाँवों के हाट और मेले कितना महत्व रखते हैं। विनिमय में हम वस्तुओं के मूल्य और बाज़ार आदि का अध्ययन करते हैं।

वितरण (Distribution)

उपभोग करने वाले की दृष्टि से तो हमने देख लिया कि वह किस प्रकार विनिमय करके किसी वस्तु का उपभोग करता है। अब हमें देखना चाहिये कि बेचने वाला बिक्री से आने वाले धन में किस प्रकार अपना हिस्सा लेता है। क्या सारी रकम उसी की होती है अथवा कोई दूसरा भी उसमें साझीदार होता है। मान लीजिये किसान अपने अनाज को शहर वाले व्यापारी को दे देता है और वह उसे शहर के बाजार में जाकर बेचता है। बेचने से जो दाम आयेगा उसका किस प्रकार बँटवारा किया जाय। सोचने पर मालूम पड़ता है कि उत्पत्ति में जो शक्तियाँ मिलकर काम करती हैं उनके मालिक अनाज को बेचकर आने वाली रकम के हकदार हैं। इसलिये हमारी समस्या यह हो जाती है कि किस प्रकार से निपटारा किया जाय कि भूमि-मालिक को कितना लगान, मजदूर को कितनी मजदूरी व महाजन को कितना सूद मिले। परन्तु, यहाँ पर हम एक बात भूल जाते हैं। उसे साफ करने के लिये थोड़ी देर के लिये मिल-मालिक को

ले लीजिये। वह मिल का बीमा कराये रहता है और हर साल बीमे की रकम देता है। इसके अलावा हर साल उसकी मशीनें कुछ न कुछ घिस जाती हैं। उसके लिये आने वाली रकम मे कुछ निकालकर अलग कर लेना चाहिये। उन सब को काटकर जा बचता है जमीन के मालिक, मेहनत करने वाले मजदूर, धन लगाने वाले महाजन, प्रबन्ध व साहस प्रदान करने वाले मनुष्य के बीच बाँटा जाना चाहिए। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं है कि पाँचा कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्ति करें। हम जानते है कि मिल मालिक रुपया भी लगाता है, प्रबन्ध भी करता है और साहस भी दिखाता है। इसी तरह किसान अधिकतर मेहनत भी करता है और अनाज पैदा करने के लिये पूँजी भी लगाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन पाँचों के बीच किस हिसाब से रकम का बँटवारा हो। इसका उत्तर हमे अर्थशास्त्र के वितरण विभाग से मिलता है। वितरण में लगान, मजदूरी, सूद और लाभ किस प्रकार निर्धारित होते हैं इसका अध्ययन करते हैं।

यही नहीं, इस विभाग मे यह भी विचार किया जाता है कि कहीं भूमि वाला इतना अधिक भाग तो नहीं लेता कि मजदूरों के पास बहुत कम रह जाये और उनकी हालत खराब हो जाये। इसके अलावा हमें यह भी मालूम होता है कि जमींदारों और किसानों के बीच में कैसा सम्बन्ध होना चाहिए। धन का वितरण इस प्रकार न होना चाहिए कि जमींदार जो गिनती में किसानों से बहुत कम हैं, गुलछर्रे उड़ावें और मर-मर के अनाज पैदा करने वाले किसान भूख और बेगार भुगतें। किसानों के पास कितना धन पहुँचना चाहिए? क्या उनके लिये इतनी रकम काफी होगी जिसमे उनके कुटुम्ब का काम चल जावे? कहा जा सकता है कि देश की उन्नति के लिए यह जरूरी है कि हर देशवासी उन्नति करे अर्थात् प्रत्येक आदमी इतना धन पावे जिससे वह दूसरों को कम से कम हानि पहुँचाते हुए अधिक से अधिक लाभ उठाये। इसी प्रकार, वितरण में मजदूरों को कितनी मजदूरी मिलनी चाहिए इस पर भी हम विचार करते हैं।

सारांश

अस्तु, हम जान गये कि अर्थशास्त्र उस विद्या का नाम है जो मिलजुल कर रहने वाले मनुष्यों के उन प्रयत्नों के बारे मे विचार करती है जिनसे वे अपनी-अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को

पूरा करते और अर्थ (अर्थात् धन) या अन्य सामग्रियाँ उत्पन्न करते हैं। आदमियों के धन-सम्बन्धी उपायों का पूर्ण रूप से विचार करने के अलावा अर्थशास्त्र में देशों की आर्थिक दशा और उन्नति का भी ध्यान रक्खा जाता है। अर्थशास्त्र का अध्ययन अधिकतर उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण नामक चार मुख्य भागों में बाँट कर किया जाता है।

अर्थशास्त्र के अध्ययन से लाभ

अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें बहुत लाभ होता है। उसके अध्ययन से हम जान सकते हैं कि हमारा देश जिसको प्रकृति ने भरा पूरा बनाया है—यहाँ की मिट्टी, जलवायु पैदावार के लिये अच्छी है, यहाँ की खानों मे खनिज पदार्थ भरे हैं, जंगलों में कीमती लकडी है, नदियों के जल से बिजली पैदा हो सकती है लेकिन फिर भी हमारा देश गरीब क्यों है? उसकी गरीबी के क्या कारण हैं? यहाँ के अधिकांश निवासियों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। पहनने को कपडे नहीं मिलते, रहने के लिये मकान नहीं मिलते और बीमारी में उनका इलाज नहीं हो पाता। देश को राजनैतिक आजादी मिले कई साल गुजर गए लेकिन वस्तुओं के भाव बढते जाते हैं। कपडे की मिलें बन्द होने का डर बना रहता है। कपडा महँगा होता जा रहा है। घरों के किराए बढ रहे हैं। ऐसा क्यों है? क्या इस देश के प्राकृतिक साधन खतम हो गये हैं? क्या भारत की शस्यश्यामला भूमि रेगिस्तान है? क्या ईश्वर इससे क्रुद्ध है? क्या हमारा भाग्य हमसे रूठा है? अथवा क्या हम कामचोर बनते जा रहे हैं? क्या हम सब अपना-अपना काम मन लगाकर नहीं करते? क्या हम इसलिये काम से मन चुराते हैं कि काम का फल कोई दूसरा भोगेगा? क्या हम आजादी से यह मतलब समझने लगे हैं कि किसी भी प्रकार के अधिकार का दुरुपयोग करके भी धन कमाना चाहिए? क्या आजादी के कारण हमारे निम्न श्रेणी के भाई अब एकाएक अमीरों जैसा जीवन व्यतीत करना चाहते हैं? इस प्रकार के अनेकों प्रश्न तुम्हारे दिमाग में उठते होंगे। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत ये सब प्रश्न आते हैं। हमारी वर्तमान गरीबी और आर्थिक कठिनाइयाँ कैसे दूर की जा सकती हैं। किस प्रकार हमारा देश धनी बन सकता है? किस प्रकार हमारे देशवासी सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं? अर्थशास्त्र के अध्ययन द्वारा हम इन प्रश्नों का

उत्तर दे सकते हैं। अत. इस अध्ययन से हमको बहुत बड़ा लाभ है। सक्षेप मे अर्थशास्त्र के अध्ययन से हम यह जान सकते है कि देश समृद्धिशाली कैसे बनाया जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—अर्थशास्त्र क्या है? इसके अन्तर्गत किन बातों का अध्ययन किया जाता है? सोदाहरण उत्तर दीजिए। (१९४२,१९४५, १९५०)

२—अर्थशास्त्र की परिभाषा लिखिए। आजकल व्यावहारिक जीवन में इसके अध्ययन से क्या लाभ हैं? (१९४४, १९४६, १९४७)

३—आपके गॉव मे या मुहल्ले में कितने अमीर और गरीब कुटुम्ब रहते हैं?

४—अपने गॉव या मुहल्ले के भिन्न-भिन्न पेशे के ऐसे व्यक्तियों की सूची तैयार कीजिए जो परिश्रम करके अपनी जीविका प्राप्त करते हैं। इसी सूची मे उनका पेशा भी बतलाइये।

५—ऐसी बीस वस्तुओ की सूची तैयार कीजिए जिनका उपयोग आपके मकान मे प्रति सप्ताह होता है।

६—आपके गॉव के साप्ताहिक हाट मे अथवा आपके मुहल्ले के बाजार मे जो वस्तुएँ बिकती हैं उनकी सक्षिप्त सूची तैयार कीजिए।

७—किसी गॉव मे जाकर यह जानने का प्रयत्न कीजिए कि फसल के तैयार होने पर किसी एक किसान का बढ़ई, लोहार, नाऊ इत्यादि को कितना अनाज देना पड़ा।

८—अपने कुटुम्ब की एक मास की आमदनी और खर्च का पूरा हिसाब रखिए और यह बतलाइये कि भोजन, कपड़ा, किराया, शिक्षा, दान-धर्म इत्यादि में कितनी रकम उस मास में खर्च हुई?

९—यदि तुम्हारे गॉव में किसी को रुपये उधर लेने की जरूरत पड़ती है तो रुपया किससे उधार लिया जाता है और किस दर पर सूद दिया जाता है?

१०—उपभोग की परिभाषा लिखिये और उनका महत्व समझाइए।

११—अर्थशास्त्र के कितने विभाग है? प्रत्येक मे क्या अध्ययन करते हैं? खेल खेलना उपभोग है या उत्पादन? (१९४८)

१२—अशिक्षित किसान को अर्थशास्त्र का विषय समझाइये। क्या अर्थशास्त्र केवल धन का विज्ञान है? (१९५२)

१३—अर्थशास्त्र में हम क्या अध्ययन करते हैं? उसके मुख्य भाग क्या हैं? (१९५३)

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ (Definitions)

धन या सम्पत्ति (Wealth)

पिछले अध्याय में हम बतला आए हैं कि अर्थशास्त्र में धन-सम्बन्धी बातों का विवेचन रहता है। अब हम धन का अर्थ समझने का प्रयत्न करते हैं। संसार में सर्वत्र रुपये की ही माया है। बिना रुपये के किसी की गुजर नहीं हो सकती। तुम शहर में जरूर गये होगे। वहाँ तुमने देखा होगा कि लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर घूम रहे हैं। फिटन, टमटम, मोटर, साइकिल, दौड़ रही हैं। बड़ी बड़ी दूकानों और कोठियों में लाखों रुपये का माल भरा हुआ है। अमीर आदमियों के ऊँचे-ऊँचे मकान बने हुए हैं। अमीर कौन कहलाता है? वह, जिसके पास खूब धन-दौलत होती है, जो बड़ी बढ़िया शानदार कोठी में रहता है तथा जिसके यहाँ बहुत से नौकर चाकर होते हैं। लेकिन क्या अमीर आदमी की तमाम दौलत रुपये के रूप में ही रहती है? उत्तर है, नहीं। किसी मनुष्य के धन से उसका रुपया, जेवर, मकान, जमीन इत्यादि कीमती वस्तुओं का बोध होता है और वही मनुष्य धनवान कहलाता है जिसके पास ये सब चीजें अधिक तादाद में होती हैं। लेकिन अर्थशास्त्र में केवल इन चीजों को ही धन नहीं कहते। अर्थशास्त्र में हम उन वस्तुओं को **धन के नाम से पुकारते हैं जिनको हम काम में ला सकते हैं और जो बेची जा सकती हैं अर्थात् जो विनिमय साध्य हैं।** उदाहरण के लिए गेहूँ को ले लो। उसको पीसकर हम आटे की रोटियाँ पका सकते हैं और रोटियों के खाने से हमारी भूख मिट जायगी। अतएव गेहूँ उपयोगी है। गेहूँ को हम

बेच भी सकते हैं। जरूरत होने पर हम गेहूँ देकर धोती का जोड़ा खरीद सकते हैं। रुपये के बदले में हम गेहूँ दे सकते हैं और धोती के बदले में रुपया। अतएव गेहूँ विनिमय साध्य वस्तु है इसलिए अर्थशास्त्र के हिसाब से गेहूँ भी धन है। इस बात को और साफ करने के लिए हवा को ले लो। यह सबको मालूम है कि वायु हमारे लिए कितनी जरूरी है। इसके बिना हम एक घटा भी नहीं जी सकते। इसलिए वायु की उपयोगिता बहुत ज्यादा है। परन्तु क्या यह विनिमय-साध्य है? क्या आप वायु के बदले कोई वस्तु ले सकते हैं? वायु हर जगह मौजूद रहती है। इसलिए किसी को मोल लेने की जरूरत नहीं पड़ती। यह ईश्वर की देन है और हम इसे धन में नहीं गिन सकते। इसी तरह यदि आप नदी या तालाब से दो-चार घडा पानी भर कर किसी वस्तु से बदला करना चाहेंगे तो कोई बदला नहीं करेगा। क्योंकि नदी या तालाब का पानी आसानी से अधिक मात्रा मे प्राप्त किया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जितने पानी की जरूरत होती है उतना पानी वह आसानी से नदी से ले लेता है। इसलिए पानी हमारे लिए उपयोगी होते हुए भी धन नहीं कहला सकता, परन्तु यही जल राजपूताना के रेगिस्तान मे धन कहलाने लगेगा, क्योंकि जल की कमी के कारण वहाँ पर तो सब इसे मोल लेने के लिए तैयार हो जायँगे। गाय, बैल, मकान, लकड़ी, कडी, कोयला, पत्थर, पेड़, फल, फूल आदि सब वस्तुएँ सम्पत्ति या धन के स्वरूप मे हैं। और जब ऐसी चीजे सम्पत्ति हो सकती हैं तो इस हिसाब से हम कूड़ा, करकट, गोबर, राख, हड्डी आदि तक की गिनती सम्पत्ति मे कर सकते है।

केवल रुपया-पैसा (Money) ही धन (Wealth) नहीं

हम ऊपर कह आये है कि कुछ लोगो के हिसाब से रुपया-पैसा व सोना-चाँदी का ही नाम धन है। यह बिलकुल गलत है। भारत में ऐसे भी कितने गाँव मिल जाते है जहाँ पर लोगों के पास रुपए नहीं हैं, लेकिन क्या उन गाँवों मे अमीर और गरीब नही बसते? तुम पूछ सकते हो कि फिर रुपया-पैसा आया कैसे? इसकी क्यों जरूरत पड़ी? असली बात यह है कि बिना रुपये-पैसे के सम्पत्ति की अदला-बदली करने मे बड़ा झंझट करना पड़ता है। मान लो तुम्हारे पास चना है और तुम्हें मिर्जई की जरूरत है।

अब तुम्हें किसी ऐसे आदमी को तलाश करना पड़ेगा जिसके पास मिर्जई हो। ख्याल करो कि ऐसा मनुष्य मिल गया लेकिन वह मिर्जई के बदले में जूता माँगता है। अब दोनों आदमियों को एक तीसरे आदमी को ढूँढना पड़ेगा जिसके पास जूता हो और जो जूते के बदले में चना लेना चाहता हो। इन्हीं सब झंझटों को दूर करने के लिए रुपए पैसे का रिवाज चला है। रुपए-पैसे के चलने से हम जान सकते हैं कि राम और श्याम में कौन अमीर है। हम क्या करेंगे? हम इस बात का पता लगावेंगे कि राम का घर द्वार, खेत-पात कपड़ा-लत्ता आदि का क्या दाम है। मान लो सब मिलाकर चार हजार रुपया हुआ और श्याम के पास इस तरह से छः हजार का माल निकला तो हम कहेंगे कि श्याम राम से अमीर है। अस्तु, यह तय हो गया कि कठिनाइयों को दूर करने के लिए ही रुपये-पैसे चलाये गए और केवल यही धन स्वरूप नहीं है।

पर इन रुपये-पैसे के द्वारा हम कोई वस्तु कब खरीदते हैं? तुम कब गेहूँ खरीदते हो अथवा कब तुम्हारे पिता गाँव के चमार से जूता मोल लेते हैं? उस समय जब कि उन्हें जूते की जरूरत मालूम पड़ती है। वह जूते के दाम क्यों देते हैं? क्योंकि जूता हवा या जल की तरह ईश्वर की देन होकर काफी परिमाण में आसानी से नहीं मिल सकता। अर्थात् जूतों की संख्या परिमित है। इसके अलावा एक बात और है। जूता बनाने के लिए चमार को मेहनत करनी पड़ती है। उस मेहनत के बदले में कुछ देना जरूरी है। इसलिए वह दाम देकर चमार से जूता मोल ले आते हैं। अब तुम जान गए कि अर्थशास्त्र में धन किसे कहते हैं। प्रत्येक वस्तु जो उपयोगी होती है, जिसकी संख्या परिमित होती है व जिसके प्राप्त करने के लिए श्रम करने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् जो वस्तु विनिमय-साध्य है, उस वस्तु की गणना हम धन में करते हैं।

धन-वृद्धि (Increase of Wealth)

यह तो तुम जान गए कि धन किसे कहते हैं, पर क्या तुम बता सकते हो कि धन कैसे इकट्ठा किया जा सकता है। अर्थात् किस प्रकार से एक मनुष्य अमीर बन सकता है। यह तो हमको मालूम है कि अमीर के पास वस्तुएँ अधिक मात्रा में होती हैं। अब हमको देखना चाहिए कि वह कैसे अमीर बना होगा

या हम-तुम कैसे उसकी तरह धन इकट्ठा कर सकते हैं। लोग तरह-तरह के तरीकों से धन पैदा करते ह। एक आदमी दिन भर परिश्रम करके जङ्गल की घास या लकड़ी लाता है, दूसरा किसी के पास अथवा परिवार या सस्था म नौकरी करता है, तीसरा दूकानदारी करता है, चौथा किसान है। ये सब अपना काम अक्सर इसीलिए तो करते हैं कि इन्हे धन पैदा करना रहता है। परन्तु हम जानते हैं कि धन की उत्पत्ति के लिए मुख्य शक्तियाँ हैं—भूमि, मेहनत, स्वय धन, प्रबध और साहस। मान लो तुम्हारे पास दस बीघा खेत है और तुम उससे अधिक से अधिक अनाज पैदा कर रहे हो, यदि तुमको और अधिक माल की जरूरत है तो इसका उपाय यही है कि तुम दस की जगह बारह-पन्द्रह बीघे जमीन मे खेती करो उत्पत्ति बढाने का दूसरा साधन है श्रम बढाना। अगर खेत में काम करने वाले आठों मजदूर पूरी मेहनत के साथ काम कर रहे हैं तो यह जरूरी है कि उनकी सख्या बढ़ा कर दस या बारह कर दी जाय। धन या पूँजी का भी यही हाल है। जब आप धनोत्पत्ति की दो शक्तियों को बढा रहे हैं तो आपको तीसरे को भी जरूर ही बढाना पडेगा अन्यथा आपका काम नहीं बनेगा। अतएव धनी समृद्धि शाली बनने के लिए यह जरूरी है कि आप अधिक क्षेत्र में काम करें, अधिक मेहनत लगावें व अधिक पूँजी का उपयोग करें।

धन और सुख (Wealth and Welfare)

वस्तु के उपभोग से सतोष होता है और सुख की प्राप्ति होती है। गरीब मनुष्य के पास वस्तुओं की कमी रहती है, उसके पास सुख प्राप्त करने के साधनों का अभाव सा रहता है। गरीब को अधिक सुखी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके धन का परिमाण बढाया जाय, उसकी आमदनी में वृद्धि की जाय इसी प्रकार आर्थिक उन्नति की जा सकती है। परन्तु धनी बनने और सुखी बनने में महान् अन्तर है। यह बात ठीक है कि धनी मनुष्य जो चाहे सो कर सकता है। वह मोटर खरीद सकता है। दो-चार लठैत और अन्य व्यक्तियों को नौकर रख सकता है। अच्छा अच्छा खाना खा सकता है। परन्तु अमीर आदमी बदमाश और बदचलन भी हो सकते हैं। बुरे कामोमे रुपया भी लुटा सकते हैं। समृद्धि (Prosperity) और सुख प्राप्त करने के लिए यह जानना जरूरी है कि रुपया किस प्रकार खर्च किया जाता है। सुखी जीवन बिताने के लिये थोड़ी सी

सादगी अख्तियार करनी पड़ेगी । यही नहीं, ज्ञान की भी जरूरत पड़ती है । क्या हुआ यदि आपको एकाएक एक लाख रुपये की लाटरी मिल गई । यदि आप मूर्ख हैं, यदि आपके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है तो आप बड़ी जल्दी सब रुपया लुटा देंगे । दूसरी ओर अगर आप पढ़े-लिखे हैं और आपको अर्थशास्त्र की बातें मालूम हैं तो आप उस धन का उपयोग इस प्रकार से कर सकते हैं जिससे आपकी और देश की भी दशा सुधरने लगे । यह भी याद रखना चाहिए कि धन होते हुए मनुष्य दुःखी हो सकता है । रुपये के लोभ में मरने वाला महाजन सदैव चिंताग्रस्त रहेगा । धन रहते हुए भी कुचलन अथवा असतुलित व अवाञ्छनीय भोजन करने वाला व्यक्ति रोगग्रस्त और दुखी होगा । जिन परिवारों के बालक-बालिकाएँ अनुचित लालन-पालन के कारण बिगड़ जाते हैं उनमें भी धन रहते हुए माता-पिता दुःखी रह सकते हैं । कृत्रिम जीवन व्यतीत करने वाले तथा इच्छाओं के गुलाम व्यक्ति भी दुःखी ही रहते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि धनी होने मात्र से कोई सुखी होगा यह आवश्यक नहीं है । परन्तु सुखी जीवन के लिए उचित मात्रा में धन होना जरूरी है ।

देश की समृद्धि (Prosperity) तभी है जब वस्तुओं की कमी न हो, किसी को रुपये-पैसे की कमी न अखरे और बेकारों की सख्या न्यूनतम हो । यह तभी हो सकता है जब हरेक सुखी जीवन व्यतीत करे ।

उपयोगिता (Utility)

अब प्रश्न उठता है कि आपको किस प्रकार रुपया खर्च करना चाहिये । आपको कौन-कौन सी वस्तुएँ खरीदनी चाहिये और कितनी ? इससे भी मुख्य सवाल है कि आप क्यों किसी चीज को खरीदते हैं ? क्योंकि आपको उसकी जरूरत रहती है, क्योंकि वह चीज आपके लिए उपयोगी है । मान लीजिये आप अपने गाँव के हाट में गए । वहाँ पर बहुत सी चीजें बिकने के लिए आती हैं । कोई कपड़ा खरीदता है, कोई गेहूँ-चना खरीदता है, कोई कुछ खरीदता है तो कोई कुछ । आप भी कोई वस्तु पसन्द करके खरीद लेते है । परन्तु क्या आप बता सकते हैं कि आपने उसको क्यों खरीदा ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये यह जाना जरूरी है कि किसी वस्तु की उपयोगिता क्या होती है । कहा जाता है कि "उपयोगिता किसी वस्तु का वह गुण है जिससे उस वस्तु की

चाह होती है।" दूसरे शब्दों में, "मनुष्य को किसी वस्तु के उपयोग से होने वाली तृप्ति का नाम उपयोगिता है।" इसका सम्बन्ध मन से होता है। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा या रुचि में कुछ न कुछ अन्तर जरूर रहता है। इसीलिए किसी एक चीज की उपयोगिता प्रत्येक आदमी के लिए बराबर नहीं होती और हम उपयोगिता का वर्णन किसी नाप या तौल से नहीं कर सकते। लोग किसी वस्तु का मूल्य तय करने में उस वस्तु की उपयोगिता का विचार जरूर करते हैं। मान लीजिए रामू किसान के सामने हल, फावड़ा, खुर्पी आदि रक्खी हैं और उससे कहा गया कि वह कुछ मोल ले ले। रामू सोचेगा कि मेरे पास इतना रुपया तो है नहीं कि दो बैल और खरीदूँ इसलिए हल को मोल लेना ठीक नहीं। फावड़े भी रामू के पास कई हैं। इसीलिए वह फावड़े की भी जरूरत नहीं समझता। लेकिन उसके पास खुर्पी नहीं है और खेत के घास फूस उखाड़ कर फेंकने के लिए उसे खुर्पी की जरूरत है। अतएव खुर्पी को मोल ले लेगा।

इसी तरह हम उत्पत्ति में भी करते हैं। हम किसी वस्तु विशेष को उत्पन्न या नष्ट नहीं कर सकते। हम केवल उपयोगिता को ही उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए हल को ले लीजिए। बढ़ई अपने औजारों की मदद से लकड़ी को काट छाँट कर उसे हल का रूप देता है। ऐसा करने से लकड़ी की उपयोगिता बढ़ गई। काम आते-आते कई वर्षों के बाद हल टूट जाता है, उसकी उपयोगिता जाती रहती है। लकड़ी पड़ी रहती है पर हल काम का नहीं रहता।

सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

हम ऊपर कह आये हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता भिन्न भिन्न मनुष्य के लिए भिन्न भिन्न होती है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उसी मनुष्य के लिए एक वस्तु की उपयोगिता एक दशा में कुछ हो सकती है। तो दूसरी दशा में कुछ और। उदाहरण के लिए, मान लो तुमको खूब जोर से भूख लग रही है। उस समय रोटी तुम्हारे लिए बहुत बड़ी उपयोगिता रखती है। पर एक रोटी खा लेने के बाद तुम्हारी भूख कुछ कम हो जाती है और दूसरी रोटी की उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती जितनी कि पहली रोटी की थी। तीसरी रोटी की उपयोगिता दूसरी से भी कम होती है। अब यदि तीन रोटी में तुम्हारा पेट

भर चला हो तो तुम सोचोगे कि चौथी रोटी ली जाय या नहीं । मान लिया तुमने चौथी रोटी ले ली । इसके खाने से तुम्हारा पेट बिलकुल भर गया । यदि कोई तुम्हारे आगे दो-चार रोटियाँ और डाल दे तो तुम्हारे लिए उनका मूल्य नहीं के बराबर है । पहली चार रोटियों से तुम्हारे पेट को पूरा सतोष मिल चुका, इसलिए तुम पाँचवी व छठों रोटी को बिल्कुल नहीं खाओगे । उपयोगिता के घटने का एक अच्छा उदाहरण मिलता है जब कोई मथुरा का चौबे भोजन करने बैठता है । जब वह खाकर उठने लगता है तो आप कहते हैं कि चौबे जी एक लड्डू और खा लीजिए । चौबे महाराज सिर हिला देते हैं । इस पर आपका दोस्त हरी कह उठता है कि चौबे जी एक लड्डू खा लो तो एक आना पैसा देंगे । पैसे के लोभ में चौबे लड्डू लेकर खा जाते हैं । जब उठने लगते हैं तो अबकी बार आपका दूसरा मित्र श्याम कहता है कि महाराज एक लड्डू और ले लो तो मैं आपको एक दुअन्नी दूँ । महाराज राजी हो जाते हैं । इसी प्रकार तीसरे लड्डू पर चौबे जी को चार आने और चौथे पर आठ आने दिये जाते हैं । पाँचवें लड्डू के लिए एक रुपया इनाम रक्खा जाता है, किन्तु इस बार पेट जवाब दे देता है । चौबे जी ने अब तक जो चार लड्डू खाये उसकी उपयोगिता पहले खाये भोजन से कहीं कम थी । परन्तु उनकी उपयोगिता मे जो कमी होती वह पैसों की उपयोगिता के कारण पूरी हो जाती थी और चौबे महाराज का पेट किसी तरह ठूँस ठूँस कर लड्डू को स्थान दे देता था । किन्तु अब पेट एकदम भर गया और चौबे महाराज उसे बिल्कुल नहीं खा सकते । इसलिए एक छोड़ यदि उन्हें दस रुपया भी दिया जाय तो वे उस पाँचवे लड्डू को न खायँगे ।

अर्थशास्त्र के हिसाब से ऊपर दिए गये उदाहरण में रोटी खाने वाले के लिये रोटियों की सीमान्त उपयोगिता चौथी रोटी की उपयोगिता के बराबर है । इसी प्रकार यदि मनोहर के पास बीस आम हों तो आमों की सीमान्त उपयोगिता बीसवें आम की उपयोगिता के बराबर होगी । परन्तु ध्यान देने की बात है कि आमों की सीमान्त उपयोगिता और कुल उपयोगिता में अन्तर है । कुल उपयोगिता तो बीसों आमों की उपयोगिता के जोड़ के बराबर है, किन्तु सीमान्त उपयोगिता केवल अंतिम आम की उपयोगिता के बराबर होती है । यदि मनोहर

के पास एक ही आम होता तो कुल उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाती। परन्तु जैसे-जैसे वस्तु की संख्या या परिमाण बढ़ता जायगा वैसे ही उनकी सीमान्त तथा कुल उपयोगिता के बीच का फर्क भी बढ़ जायगा। उदाहरण के लिये यदि मेरे पास ३ आम हैं। पहले आम से मुझे ५ इकाई, दूसरे से ८ इकाई, तीसरे से २ इकाई उपयोगिता मिलती है तो २ इकाई तो सीमान्त उपयोगिता हुई और ११ इकाई कुल उपयोगिता हुई।

एक बात और। उपर्युक्त चौबे जी वाले उदाहरण मे पाँचवें लड्डू की उपयोगिता शून्य थी। मान लो चौबे जी उस लड्डू को अपने अँगोछे में बाँध लेते हैं। तब क्या दूसरे दिन भी चौबे जी यही कहेंगे कि उस लड्डू की उपयोगिता कुछ नहीं है और वे उसे नहीं खाएँगे? कदापि नहीं। समय व्यतीत होने के साथ चौबे जी का भोजन पच जायगा और चौबे जी फिर भूखे होंगे। अत समय व्यतीत होने के साथ-साथ चौबे जी के उस लड्डू की उपयोगिता बढ़ती जायगी। यदि तुम सोचो तो समय के साथ घटने बढने वाली उपयोगिता के अनेक उदाहरण बता सकते हो।

मूल्य (Value)

मान लो बाजार मे तुमने गेहूँ और चना दोनों बिकते हुए देखे और तुम दोनों को खरीदना चाहते हो। अब अगर तुम्हारे हिसाब से गेहूँ की उपयोगिता चने से दुगुनी है तो तुम एक रुपये मे जितना गेहूँ लोगे उसी रुपये मे उससे दुगुना चना माँगोगे। उदाहरण के लिये यदि तुम एक रुपये मे दो सेर गेहूँ लोगे तो चार सेर चना माँगोगे। यदि कहीं तुम गेहूँ बेचने वाले होते और श्याम चने वाला तो तुम श्याम से फी सेर गेहूँ की जगह दो सेर चने माँगते। और यदि श्याम भी एक सेर गेहूँ की जगह दो सेर चना देने को राजी हो जाय तो दो सेर चना का मूल्य एक सेर गेहूँ समझा जायगा। इसी तरह यदि तुम अपनी गाय को बेचकर बकरियाँ खरीदना चाहो और यदि तुम्हारी निगाह मे गाय की उपयोगिता बकरियों से तिगुनी हो तो तुम एक गाय के बदले मे तीन बकरियाँ माँगोगे? जब किसी वस्तु की किसी अन्य वस्तु से अदला-बदली की जाती है तब पहली वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु कितनी दी जाय, इसका निश्चय उपयोगिता द्वारा ही होता है। ऐसी दशा मे अर्थशास्त्र के अनुसार एक गाय

का मूल्य तीन बकरियाँ हुई, और एक सेर गेहूँ का मूल्य हुआ दो सेर चना।

मूल्य (Value) का जो अर्थ ऊपर दिया गया है उससे क्या नतीजा निकलता है? इसके मतलब होते हैं कि यदि एक चीज का मूल्य बढ़ जायगा तो दूसरी का कम हो जायगा। मान लीजिये कि पहले दो आम का मूल्य होता था एक खरबूजा। अब यदि किसी साल आम की फसल आधी हो तो आम का मूल्य दुगुना हो जायगा यानी दो आम के बदले दो खरबूजे मिलेंगे या एक आम के बदले एक खरबूजा मिलेगा। आम का मूल्य तो दुगुना हो गया, खरबूजे के मूल्य का क्या हाल है। जहाँ पहले एक खरबूजे के लिए दो आम मिलते थे वहाँ अब एक ही आम मिलता है अर्थात् खरबूजे का मूल्य आधा हो गया। एक बात और; यदि कहीं आम की फसल न बिगड़ती पर खरबूजों की संख्या दुगुनी हो जाती तब भी वही बात होती जो आमों के आधे रह जाने पर हुई थी। अर्थात् एक खरबूजे के लिए एक ही आम मिलता।

कीमत (Price)

पुराने जमाने में जब रुपये-पैसे का चलन नहीं था तब एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदली जाती थी। उस समय मूल्य का बोलबाला था। परन्तु उसमें कठिनाई होती? यदि सुमेर को किसी वस्तु की जरूरत है तो उसे ऐसे मनुष्य को ढूँढना पड़ता था जिसके पास वह चीज हो जिसकी सुमेर को आवश्यकता है। इतना ही नहीं, उस मनुष्य को ऐसी वस्तु की आवश्यकता होनी चाहिए जो सुमेर के पास है। इसके अलावा यह भी झगड़ा रहता कि हर एक अपनी चीजें बदलने को तैयार हो। मान लो सुमेर को एक कम्बल की जरूरत थी और कुबेर जिसके पास कम्बल है, सुमेर का गर्म कोट लेना चाहता है। परन्तु सुमेर कोट देने को राजी नहीं है तो अदला-बदली होना असम्भव है। जब से रुपये-पैसे का उपयोग होने लगा तब से ये सब बाधायें हट गई। यदि तुम अपना सेर भर घी बेचकर चार सेर शक्कर खरीदना चाहते हो, तो केवल इस बात की जरूरत है कि तुम किसी के हाथ अपने घी को पाँच रुपयों में बेच दो और उन रुपयों को लेकर शक्कर खरीद लो। ऐसी हालत में सेर भर घी के मूल्य हुए पाँच रुपये और सेर भर शक्कर के एक रुपया चार आने। जब किसी वस्तु की इकाई का मूल्य इस प्रकार रुपये पैसों में लगाया

जाता है, तो वह मूल्य वस्तु की इकाई की कीमत कहलाता है। यदि हम एक गाय साठ रुपये मे बेचते हैं तो गाय की कीमत हुई साठ रुपया। यदि हम उसको तीन बकरियो के एवज में बेचते हैं तो तीनों बकरियाँ कीमत न कहला कर गाय का मूल्य कहलाती हैं। मोटी बात यह है कि किसी चीज के बदले में जो चीज मिले वह उसका मूल्य है और उसकी इकाई के बदले मे जो रुपया मिला वह उसकी कीमत है।

आय (Income)

अब तक हम और किसी वस्तु की उपयोगिता, मूल्य और कीमत के बारे में बातें कर रहे थे। मान लो मुरली अनाज की दूकान रखता है। वह हर समय रुपये के बदले गेहूँ, चना, मटर, जौ बाजरा, मूँग, चावल आदि अन्न बेचा करता है। बेचने से जो रुपये आते हैं उन्हें वह एक कापी पर लिखता जाता है। महीने के आखीर में जोड़ लगाने से उसे मालूम पड़ जाता है कि महीने भर में उसे कितने रुपये मिले। इस आमदनी के योग से यदि हम वह रकम निकाल दें जिसका कि मुरली ने अनाज खरीदा था तो बची हुई रकम मुरली की आय कहलायेगी। इसी प्रकार क्लर्क साहब महीने भर काम करने के बाद पहली तारीख को अपना वेतन लेकर घर जाते हैं। परन्तु यह वेतन है क्या? यह है क्लर्क साहब की महीने भर के काम की कीमत और अर्थशास्त्र में ऐसी कीमत को आय कहते हैं। मजदूरों को अपनी मजदूरी रोजाना, हर हफ्ते, पन्द्रहवें दिन अथवा महीने पर मिलती है। महीने भर मे उन्हें कुल जितना रुपया मिलता है, वही उनकी माहवारी आय होती है। आय रोजाना से लेकर सालाना तक हो सकती है। अर्थशास्त्र में आय से उस रकम का बोध होता है जो कोई मनुष्य किसी निश्चित समय मे कमाता है। समय के किस परिमाण की आय निकाली जाय यह आय निकालने वाले की इच्छा पर निर्भर रहता है। अधिकतर आय से लोगों का मतलब माहवारी आय से रहता है। किन्तु कहीं-कहीं सालाना आय की रिपोर्ट करनी पड़ती है। तुम्हें मालूम है कि भारत की सरकार तुम्हारी आय के ऊपर आयकर या इन्कमटेक्स लगाती है। इस आय के निकालने मे मकान के किराये और बैंक में जमा सूद से लेकर कारबार का मुनाफा तक इसमें जोड़ लिये जाते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—'विनिमय-साध्य' वस्तु किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित समझाइये। क्या ज्ञान विनिमय-साध्य है ?

२—निम्नलिखित वस्तुएँ किन दिशाओं मे धन समझी जावेंगी ? गंगाजल, यजमानी, रेल का टिकट, घर का कूड़ा कचरा, कागजी मुद्रा, नोट, मनुष्य का शरीर, अस्पताल, सार्वजनिक पुस्तकालय।

३—कुछ ऐसी वस्तुओं का उदाहरण दीजिए जिनकी उपयोगिता किसी मनुष्य के लिए समय के साथ बदलती जाती है।

४—अग्रलिखित वाक्यों की गलतियों को दुरुस्त कीजिए :—

(क) २० सेर गेहूँ की कीमत ८) है।
(ख) पाँच सेर चावल की कीमत दस सेर गेहूँ है।
(ग) ५ गायों की कीमत १२५ रुपया है।
(घ) एक सेर चना का मूल्य ६ आने है।
(ङ) एक गज कपडे का मूल्य बारह आना है।

५—अपने कुटुम्ब की आमदनी का एक मास का हिसाब लिखिए और यह बतलाइए कि किन-किन जरियों से कितनी आमदनी प्राप्त हुई ?

६—यदि कोई मनुष्य अपने निजी मकान मे रहता है तो उसको अपने मकान से वर्ष भर मे क्या आमदनी होती है ?

७—आर्थिक उन्नति के क्या साधन हैं ? गरीब लोग अधिक सुखी कैसे हो सकते हैं ?

८—धनी लोग भी कभी दु:खी पाये जाते हैं। इसके क्या कारण हैं ?

९—सादे जीवन का सुख की वृद्धि से क्या सम्बन्ध है ?

१०—सम्पत्ति या धन किसे कहते हैं ? विस्तार सहित लिखिए।

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति (Production)

उपयोगिता वृद्धि (Increase in Utility)

प्रत्येक मनुष्य को भोजन, कपड़ा आदि की जरूरत पड़ती है। इसके बिना उसका काम ही नही चल सकता। अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे तरह-तरह की वस्तुओं को बनाना या तैयार करना पड़ता है। मिल-जुल कर रहने वाले किसी भी मनुष्य को देख लो। वह हर समय इस बात का उपाय करता है कि उसे किसी प्रकार धन मिले। धन की उत्पत्ति करने के लिये आदमी दिन भर मेहनत करके जगल मे लकड़ी या घास काट कर लाता है, दूसरा किसी के यहाँ नौकरी करता है, तीसरा दूकानदार है तो चौथा डाक्टर। यह तो हम आपको पहले ही अध्याय मे बता चुके हैं कि अर्थशास्त्र मे उत्पत्ति का क्या मतलब होता है और यह भी कह चुके है कि उत्पत्ति किस प्रकार की जा सकती है। **कोई वस्तु उत्पन्न करने के मतलब होते है किसी प्रकार की उपयोगिता को बढाना।** कुम्हार मिट्टी से बर्तन बनाकर मिट्टी की उपयोगिता में वृद्धि करता है। बढई लकड़ी को काट छाँट कर मेज-कुर्सी बनाता है। ऐसा करने से लकडी की उपयोगिता और बढ जाती है। इसी प्रकार के रूप परिवर्तन द्वारा चना, मटर, गेहूँ आदि अनाज खेती से पैदा किये जाते है। खेती-बारी मे अन्न पैदा करने का काम स्वय प्रकृति करती है। मनुष्य तो केवल बीज, खाद, पानी आदि का प्रबन्ध करता है। परन्तु स्थान और अधिकार बदल देने से भी किसी की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है। जहाँ जो सामान अधिक मात्रा मे होता है वहाँ से जब उन्हे उन जगहो मे ले जाया जाता है जहाँ उस सामान की मात्रा कम है, तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। लोहे, कोयले या पत्थर की खान के पास या लकड़ियों की जगल मे उपयोगिता बहुत कम होती है। जब ये ही चीजे रेल या, मोटर द्वारा बाजार मे पहुँचा दी जाती हैं तो उनकी उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी प्रकार अन्न, शाक, फलो को खेतों या बागों से बाजार मे पहुँचा कर उनकी उपयोगिता बढाई जाती है। जब हम किसानों से अनाज मोल लेकर बाजार मे किसी घर-गृहस्थी वाले

आदमी के हाथ उसे बेच देते हैं तब भी उपयोगिता बढती है। क्योंकि किसान के अधिकार मे तो इतना अनाज है कि उसके लिये उनकी उपयोगिता कम है लेकिन घर-गृहस्थी वाला आदमी खाने के लिये अनाज चाहता है और इस-लिए उसके अधिकार मे पहुँच जाने से अन्न अधिक उपयोगी बन जाता है। उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। उपयोगिता वृद्धि मे समय भी सहायता करता है। नये चावल की प्रायः बहुत कम कदर होती है। यदि नया चावल साल-दो साल रख छोड़ा जाय तो उसमे कुछ खास गुण आ जाता है और उसकी कदर या उपयोगिता बढ जाती है। इसी तरह पूस माघ मे बर्फ को कोई नहीं पूछेगा। उसे किसी तरह गर्मियों तक रख सके तो उसकी बड़ी कदर होगी। मई-जून मे गेहूँ का भाव बढ जाता है और बरसात मे सूखी लकड़ी तेज बिकती है। विज्ञा-पन के कारण भी वस्तु की उपयोगिता अधिक व्यक्तियो को महसूस होती है। अत. मॉग बढ़ जाती है। तब वस्तु दूर-दूर से बिक्री के लिए मॅगाई जाती है इस प्रकार विज्ञापन द्वारा हम वस्तु के स्थान और अधिकार परिवर्तन में योग देकर उपयोगिता बढ़ा देते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि रूप, काल, स्थान या अधिकार परिवर्तन के द्वारा उत्पत्ति या उपयोगिता मे वृद्धि की जा सकती है। परन्तु इन परिवर्तनों के करने मे हमको किसी शक्ति का सहारा ढूंढना पड़ता है।

कुछ समय पहले तक धन की उत्पत्ति के लिये तीन चीजों की जरूरत मानी जाती थी :—भूमि (Land), मेहनत या श्रम (Labour) और पूँजी या धन (Capital), चाहे जिस ढङ्ग से धन उत्पन्न या पैदा किया जाय इन तीनों साधनों की आवश्यकता पडेगी। इनके अलावा आजकल दो शक्तियाँ और मानी जाती हैं। प्रबन्ध और साहस (Organisation and Enterprise)। इसके पहले कि हम इन शक्तियों पर विचार करें, हमे यह देख लेना चाहिये कि कुछ चुने हुए उदाहरणो मे उपरोक्त शक्तियाँ किस प्रकार भाग लेती हैं।

पहले रूप-परिवर्तन द्वारा होने वाली उपयोगिता वृद्धि (Increased utility) के साधनों को ही लीजिये। इस रीति से कच्चा माल पैदा किया जाता है। कच्चा माल बहुधा खेती से उत्पन्न होता है। हमारे भारत में ज्यातर लोग खेती करके ही अपना पेट पालते हैं। अच्छा, इनमें ऊपर बताए साधन या शक्तियाँ किस

प्रकार काम आती है ? बिना भूमि के खेती नहीं हो सकती, और मेहनत करने वाले मनुष्य बिना खेती करेगा ही कौन ? किन्तु जमीन और मनुष्य के होने से भी तो खेती नहीं हो सकती । उसके लिये बीज, हल, बैल, खाद आदि की भी आवश्यकता होती है । ये चीजे मनुष्य के धन हैं, परन्तु ज्यादा धन उत्पन्न करने के लिये काम मे आने के कारण इनका नाम पूँजी हो जाता है । इससे साफ प्रकट है कि खेती करने के लिये भूमि, श्रम और पूँजी की आवश्यकता होती है ।

अब कारीगरी का एक उदाहरण लीजिये । तैयार माल भी रूप परिवर्तन द्वारा ही बनाया जाता है । दर्जी का काम लीजिये । वह कपडे को काट-छाँट करके कपडे सीता है । इसमें उसे सीने के लिये बैठने को स्थान (दूकान या मकान) चाहिये, यह भूमि है । उस पर बैठ कर वह सिलाई का काम करता है, इसमे उसे श्रम करना होता है । फिर उसे कपड़ा, सुई, डोरा, मशीन आदि चाहिये, तभी तो वह कोट तैयार कर सकेगा । ये चीजे वह पहले कमाये हुए धन मे बचत करके बचाता है और ये उसकी पूँजी हैं। इसी तरह से बढई, लोहार, जुलाहे आदि के कार्य पर विचार किया जा सकता है । अतएव तैयार माल में भूमि श्रम और पूँजी तीनों की आवश्यकता पड़ती है ।

अब तक हमने प्रबन्ध और साहस (Enterprise) का विचार नहीं किया है । आजकल के मशीन युग मे अकेला दुकेला आदमी धन पैदा करने का काम नहीं करता । सैकड़ों हजारो आदमी एक ही कारखाने मे काम करते नजर आते हैं । ऐसी हालत में इस बात की बड़ी जरूरत होती है कि कोई आदमी इन हजारों आदमियों के काम की देख-रेख करे और यह निश्चय करे कि कितने आदमी कौन-सा काम करें, किस प्रकार की भूमि, श्रम और पूँजी लगाई जाय और कहाँ से कच्चा माल मँगाया जाय इत्यादि । इन सब बातों के लिये प्रबन्ध करने की आवश्यकता पडती है । इस प्रकार आजकल अमेरिका आदि देशों में खूब बडे-बडे खेतों मे खेती की जाती है । यहाँ पर भी यह देखना पड़ता है कि खाद कहाँ से मँगाई जाय । कितनी खाद की जरूरत है । पानी का कैसा प्रबन्ध किया जाय इत्यादि ।

इसके अलावा एक ऐसे व्यक्ति समूह की जरूरत पड़ती है जो कारखाने में

होने वाले या बड़े परिमाण से की जाने वाली खेती से आने वाले लाभ हानि को सहने का बीड़ा उठाये। मजदूर अपना वेतन ले लेते हैं। प्रबन्ध करने वाला भी अपनी तनख्वाह लेता है। भूमि का मालिक केवल लगान मात्र चाहता है और पूँजी देने वाला सूद। इनमें से किसी को हानि-लाभ से कोई मतलब नहीं रहता। कारखाने के चलने या टूटने की जोखिम उस आदमी या कम्पनी पर रहती है जो उसके चलाने का साहस करता है तथा जोखिम उठाता है।

भूमि (Land)

यह तो हमने देख लिया कि उत्पत्ति के पाँच साधन होते हैं—भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस। अब इन पाँचों पर अलग-अलग विचार करना भी जरूरी है। पहले भूमि को लीजिये। आम तौर पर इससे पृथ्वी तल का मतलब निकाला जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में भूमि से हमारा मतलब उन सब शक्तियों से रहता है जो प्रकृति से प्राप्त होती हैं। इस तरह से खान से निकलने वाले पत्थर, लोहा, सोना आदि, जल, मछली, मोती, वायु, सर्दी गर्मी, रोशनी जलवायु, पहाड़, नदी, झरने, समुद्र आदि सब चीजें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। याद रखने योग्य दूसरी बात यह है कि प्रकृति का वही हिस्सा भूमि कहलाता है जिसका उत्पत्ति में प्रयोग होता है।

भूमि के गुण

भूमि अपरिमित मात्रा में बढ़ाई-घटाई नहीं जा सकती है वह परिमित है। बम्बई जाते समय थोड़ा-सा समुद्र का भाग आता है। आज समुद्र के स्थान पर वहाँ धीरे-धीरे सूखी जमीन बढ़ रही है। इस प्रकार तो भूमि बढ़ाई जा सकती है। अन्यथा यदि हम चाहें कि आज संसार में जितनी भूमि में खेती होती है वह दुगुनी हो जाय तो यह असम्भव है। इसी प्रकार हम बलुही जमीन को गेहूँ की खेती के योग्य नहीं बना सकते। कहा जाता है कि तिब्बत के लामा मनचाहा पानी बरसा सकते हैं और पश्चिमी देशों में भी विज्ञान के आधार पर ऐसे प्रयोग हुए हैं, परन्तु आमतौर पर हम और आप पानी नहीं बरसा सकते।

सब भूमि एक समान भी नहीं होती। कोई जमीन बहुत उपजाऊ होती है, कोई कम और कोई बिल्कुल ही नहीं। किसी जमीन की मिट्टी चिकनी होती

है, किसी की बलुही। शहर के बाहर की जमीन खेती के योग्य होती है, परन्तु शहरों मे जो जमीन पड़ी होती है वह अधिकतर पार्क, स्कूल, मकान या कारखाने के काम आती है। परन्तु यह तो हुआ आम भाषा में जमीन कही जाने वाली भूमि की बात। कोई भूमि जमीन है, कोई लोहा, कोई कोयला, कोई पानी और कोई प्रकाश। इसी से स्पष्ट है कि सब जमीन एक सी नहीं होती।

भूमि की उपजाऊ शक्ति की सीमा होती है—यदि हम खाद दिए बिना खेती करते चले जाएँ तो यह क्रमश कम उपजाऊ हो जाएगी। यदि हम खेत को गहरा खोदें और खाद डालें तब भी हम खेत की उपज को एक सीमा से अधिक नहीं बढा सकते। यदि फी एकड दस मन गेहूँ होता है तो पचास मन का क्या कहना, बीस मन गेहूँ पैदा करना आपके लिये एक समस्या हो जाएगी।

भूमि उत्पत्ति मे स्वयं भाग नहीं लेती। खेत पड़ा रहता है। खान में कोयला पड़ा रहता है। सूर्य का प्रकाश ससार भर मे बिखरा रहता है। किसान खेत से अनाज पैदा कर लेता है। मजदूर खान से कोयला निकाल लेते है। धोबी धूप मे कपड़ा सुखा लेता है। अगूर पैदा करने वाला उसे सुखा कर किशमिश बना लेता है।

जब मनुष्य प्रकृति की देन पर अपना कब्जा कर लेता है तब वह दूसरों से उस कब्जे के कारण दाम माँगता है। दरअसल वह दाम उसके कब्जे के होते है, न कि उसकी भूमि के। परन्तु आमतौर पर हम कहते है कि भूमि का दाम यह है और खेत का लगान यह है। ऐसी कीमत भूमि की स्थिति तथा उपयोगिता पर निर्भर है।

विभिन्न कामों के लिए भूमि सम्बन्धी विभिन्न विचार उठते है। खेती मे भूमि के उपजाऊपन का ध्यान रहता है कि किस खेत में क्या वस्तु अधिक उत्पन्न होगी। परन्तु व्यापार और कारखानों के काम में भूमि की उपजाऊ शक्ति का ख्याल नहीं किया जाता। कारीगर या कारखाने का मालिक यह देखता है कि जमीन किस जगह है। कारीगर अपनी दूकान बाजार के करीब खोलना चाहता है। मिल मालिक कारखाने को ऐसे स्थान पर चलावेगा जहाँ से खान और बाजार दोनों पास हों। मान लो तुम लोहे का कारखाना खोलना चाहते हो, तुम ऐसी जगह ढूँढोगे जहाँ से लोहे की खान भी पास हो और तैयार माल को

बाजार में पहुँचाने का सुभीता भी हो। इन्हीं कारणों से बड़े-बड़े शहरों मे भूमि का मूल्य या किराया बहुत अधिक होता है।

श्रम (Labour)

यह तो हुई भूमि की बात। अब श्रम को लीजिए। किसान खेती करने मे स्वय भी मेहनत करता है और बैल से भी काम लेता है। किन्तु अर्थशास्त्र के अन्तर्गत बैल के कार्य को श्रम में नहीं गिनते। श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की हुई मेहनत से रहता है। मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए फुटबाल हाकी वगैरह खेल खेलता है। ऐसे खेलों मे की गई मेहनत किसी प्रकार का धन नहीं पैदा करती। अतएव इसकी गिनती भी श्रम में नही की जाती। अब आप से कोई पूछे कि श्रम से क्या समझते हो तो आपको कहना चाहिए कि श्रम **से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की गई उस मेहनत से रहता है जो किसी धन की उत्पत्ति मे लगाई जाती है।**

श्रम के भाग (Division of Labour)

श्रम दो तरह के होते हैं—शारीरिक व मानसिक। कुली, मजदूर, लोहार बढ़ई आदि शारीरिक श्रम करते हैं किन्तु डाक्टर, वकील, जज, मास्टर आदि मानसिक श्रम करते हैं; कुछ लोग दोनो तरह के श्रम करते हैं, परन्तु अर्थशास्त्र मे श्रम के इस भेद को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। यदि कोई भेद माना जाता है तो वह उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के बीच मे होता है। मनुष्य किसी इच्छा की पूर्ति के लिए जो मेहनत करता है वह उत्पादक कहलाती है। उत्पादक और अनुत्पादक मेहनत को स्पष्ट करने के लिए मान लीजिये कि कोई आदमी बिना मतलब ही एक स्थान से मिट्टी खोदकर दूसरे स्थान पर जमा करता है, ऐसा श्रम अनुत्पादक कहलायेगा। हाँ, यदि पहले स्थान पर मिट्टी का ऊँचा ढेर लगा हो और दूसरे पर गड्ढा हो तो वह श्रम उत्पादक गिना जायगा क्योंकि ऐसा काम करने से गड्ढा पट गया और किसी के उसमें गिर जाने का डर जाता रहा। अस्तु उत्पादक श्रम के दो भाग किये जाते हैं। बढई लकड़ी से हल बनाता है, किसान खेत मे अनाज पैदा करता है और लोहार लोहे से चाकू बनाता है। इस प्रकार का श्रम प्रत्यक्ष उत्पादक श्रम कहलाता है। किन्तु जङ्गलों से लकड़ी लाने में जो श्रम पड़ता है, पडित जी चेलों को पढाने मे जो

मेहनत करते हैं अथवा परीक्षार्थी को परीक्षा में बैठने के हेतु जो विद्याध्ययन तथा परिश्रम करना पडता है, वह परोक्ष उत्पादक कहलाता है क्योंकि उससे किसी वस्तु विशेष की उत्पत्ति नहीं होती।

हमारे देश की गरीबी देखते हुए श्रम का एक अन्य वर्गीकरण हो सकता है—कुशल श्रम तथा अकुशल श्रम। आजकल वायुयान, रेल तथा मोटर चलाने में तथा उन्हें बनाने के लिए, बड़ी-बड़ी इमारतें और पुलों के निर्माण में, बड़ी बड़ी मशीनों को चलाने और उनकी मरम्मत करने के लिए ट्रेनिंग प्राप्त अर्थात् कुशल श्रमिक चाहिये। भारत मे इनकी कमी है। इसके विपरीत ईंट, गारा या बोझ ढोने, ठेला खींचने, फावड़ा चलाने आदि कामों को कोई भी अर्थात् अकुशल श्रमिक कर सकता है। कुशल श्रमिकों की कमी के कारण देश की उन्नति रुक जाती है।

श्रम की उपयोगिता (Utility of Labour)

जिस प्रकार सब भूमि एक सी उत्पादक नहीं होती उसी तरह सब श्रम एक-से उत्पादक नही होते। श्रम की उत्पादकता कई बातों के ऊपर निर्भर रहती है। मेहनत करने वाले यदि मजबूत, शिक्षित और ट्रेनिंग पाये हुये हैं तो उनकी उत्पादक शक्ति अधिक होगी। कार्यक्षमता आदमी को मिलने वाले खाने, उसके रहने के स्थान की आबहवा आदि बातों से सम्बन्ध रखती है, इसके अलावा यदि मजदूर गुलाम की तरह काम करते हें तो उनका श्रम कम उत्पादक हो जाता है। इसलिए कारखानों में अच्छे कारीगरों और मजदूरों को हिस्सेदार बना लेते है। इसी प्रकार खेतों मे हिस्सेदार होते हैं। अर्थात् खेत में काम करने वालों का हिस्सा बँध जाता है। इससे काम करने वाले मन लगाकर काम करते हैं, और अधिक से अधिक माल उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। चतुरता और बुद्धिमानी भी श्रम को और उत्पादक बनाती है। एक मामूली बढई जिस लकड़ी से एक भद्दा सा बक्स बनाकर तीन-चार रुपये को बेचता है, एक चतुर बढई उसी से एक अच्छी आलमारी बनाकर बेचने से दस-पन्द्रह रुपये प्राप्त कर लेता है। जो श्रमजीवी बुद्धिमान् नहीं हैं, जिन्हें इस बात का पता नहीं है कि किस प्रकार सम्पत्ति की वृद्धि करनी चाहिये, उनका श्रम बहुत कम उत्पादक होता है।

मजदूर की कार्यक्षमता पर उसके नैतिक गुणों का भी प्रभाव पड़ता है।

मान लीजिए कि एक मजदूर तन्दुरुस्त है और उसे साधारण शिक्षा और धंधे की शिक्षा दोनों ही मिली है। यदि वह चाहे तो अच्छा काम कर सकता है। किन्तु यदि वह लापरवाह, है कामचोर है और ईमानदार नहीं है तो वह अच्छा काम-नहीं करेगा। इसलिए ईमानदारी, कर्त्तव्य परायणता और धैर्य मजदूर की कार्य क्षमता को बढ़ाते हैं। मालिक का अच्छा व्यवहार भी मजदूर की कार्यक्षमता को बढ़ाता है।

श्रम विभाजन (Division of Labour)

उत्पादक के सम्बन्ध में श्रम की एक और बात जानने योग्य है। पुराने जमाने में आदमी अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्वय ही सब काम करता था। वही झोपड़ी बनाता, वही मछली मारता, वही तीर और धनुष बनाता और पहनने के लिए जानवरों को मार कर उनकी खाल खींचता। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ मनुष्य ने परिवार बसा लिया और कई परिवार मिलकर गाँवों में रहने लगे। इसके साथ ही इस बात का ख्याल हुआ कि यदि एक आदमी एक ही काम करे तो और भी अच्छा हो। अतएव एक आदमी केवल अन्न पैदा करता है, एक केवल कपड़ा तैयार करता है, इत्यादि। इस प्रकार गाँव के किसान, लकड़हारे और जुलाहे आदि का काम अलग-अलग हो जाता है। जैसे जैसे उन्नति हुई, एक-एक पेशे के कई-कई भाग होने लगे। कपड़ा तैयार करने के लिए एक आदमी केवल कपास पैदा करता है, दूसरा कपास को ओटता है अर्थात् रुई से बिनौले अलग करता है, तीसरा सूत को कातता है और चौथा केवल कपड़ा बुनता है। इसके बाद इन भागों के भी भाग किये जाते हैं। इस प्रकार से होने वाले श्रम के बँटवारे को श्रम विभाग कहते हैं।

श्रम विभाजन के लाभ

श्रम विभाग से बहुत लाभ हैं। पहले तो कोई आदमी बड़ी जल्दी किसी विभाग का काम सीख सकता है। इसके अलावा श्रम विभाग के अन्तर्गत एक ही काम करते रहने से आदमी खूब होशियार हो जाता है। फिर प्रत्येक विभाग में की जाने वाली क्रियाएँ इतनी सरल हो जाती हैं कि उनके करने के लिए मशीन का भली भाँति प्रयोग किया जा सकता है। इन सब का परिणाम यह

होता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति करने में व्यय कम पड़ने लगता है। इसके अतिरिक्त हर एक मजदूर अपने लायक काम पर जाता है और धन बहुत उत्पन्न होता है।

श्रम-विभाग से कुछ हानि भी है। एक ही काम करते-करते वह काम नीरस सा लगने लगता है। उस काम के करने मे फिर मन नहीं लगता। यही नहीं, यदि वह चाहे कि और किसी दूसरे पेशे को स्वीकार कर ले तो वह ऐसा नहीं कर सकता। तीसरे, इसके कारण उसे अपने शरीर के किसी एक अंग का ही अधिक उपयोग करना पड़ता है। फलतः उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। कुछ भी हो, श्रम-विभाग के कारण श्रमी भारी और दुःखदायक कामों के करने से बच जाते हैं और उन्हें अब सप्ताह में केवल ४८ घंटे तक काम करना पड़ता है। बाकी समय वे अपनी शिक्षा, मनोरंजन और उन्नति के लिये लगा सकते हैं। इसी प्रकार यदि भारतीय मजदूरों को भी शिक्षा व ट्रेनिंग मिले, उन्हें उचित मजदूरी दी जाय, नियत समय तक काम लिया जाय, उनके मनोरंजन और सुख सुविधा की व्यवस्था की जाय तो वे भी अधिक क्षमतावान बन सकते हैं।

पूँजी (Capital)

हम कह आए हैं कि किसी वस्तु की उत्पत्ति में धन की जरूरत पड़ती है। उत्पत्ति कार्य मे जो धन लगाया जाता है उसे हम पूँजी कहते हैं। नोट करने लायक बात यह है कि सब धन पूँजी नहीं कहलाता। वही धन पूँजी के नाम से पुकारा जायगा जो और सम्पत्ति पैदा करने के काम मे आवेगा। उदाहरण के लिये यदि कोई किसान बैठा बैठा अनाज खर्च करता है लेकिन काम नहीं करता, तो उसका अनाज रूपी धन पूँजी नहीं कहा जा सकता। यदि वह खाने के साथ खेती भी करता जाता है तो जो अन्न वह खाता है वह पूँजी स्वरूप है। खेत मे बीज बोने के दिन से लेकर और जब तक अनाज कटकर किसान के घर में आता है, इस बीच मे कई महीने गुजर जाते हैं। तब तक किसान को खाने-पीने को चाहिये, मजदूरी चाहिये, हल, बैल आदि चाहिये। पहनने को कपड़े, रहने को घर तथा औजार आदि भी चाहिये। ये सब चीजें पहले से ही इकट्ठी करनी पड़ती हैं। इनमे अन्न वस्त्र, बैल-बधिया, हल-फाल, घर-द्वार सब कुछ आ गया और इन सबकी गिनती पूँजी मे करनी चाहिये।

पूँजी की विशेषताएँ

बिना बचत के पूँजी नहीं हो सकती। किसान अपनी कमाई का कुछ भाग अलग निकालेगा तभी तो वह औजार मोल लेगा। कारखाने का मालिक लाभ का एक अंश अलग करेगा तभी तो वह नई मशीनें खरीदेगा।

पूँजी की दूसरी विशेषता यह है कि भौतिक पूँजी स्थायी नहीं होती। मशीन, औजार, हल आदि वस्तुएँ काम में आते-आते घिस जाती हैं और बेकार हो जाती हैं।

पूँजी के भेद

आमतौर पर पूँजी के दो भेद करते हैं—अचल पूँजी और चल पूँजी। किसान बार बार उन्हीं बैलों, हल, फावड़ा तथा कुदाली से काम लेता है। जुलाहा उसी करघे पर वर्षों कपड़ा बुनता है। मिल में उन्हीं मशीनों से बीस-पच्चीस साल तक काम लिया जाता है। यह सब बहुत समय तक काम आने वाली पूँजी के उदाहरण हैं और इनका नाम अचल पूँजी है।

इसके विपरीत जो पूँजी केवल एक बार के प्रयोग में खत्म हो जाती है उसे चल पूँजी कहते हैं। उदाहरणार्थ, खेती में बीज तथा जल बढ़ई की लकड़ी, मिलों का कच्चा माल आदि।

पूँजी की उत्पादकता उसके उपयोग करने के ढंग पर निर्भर रहती है। यदि बुद्धिमानी के साथ पूँजी लगाई जाती है तो अधिक सम्पत्ति पैदा होती है अन्यथा कम। यदि कोई जमीन बलुई है तो उसमें आप चाहे जितनी खाद डालिये और चाहे जितना पानी दीजिये, गेहूँ की पैदावार कभी अच्छी न होगी और आपने जो पूँजी उसमें लगाई है उसका आप को पूरा पूरा बदला नहीं मिलेगा। परन्तु उसी पूँजी को यदि आप किसी उपजाऊ जमीन में लगाते तो उसकी उत्पादक शक्ति अवश्य बढ़ जाती। कहने का मतलब यह है कि खेती या व्यापार में जो पूँजी लगाई जाती है, उसके लगाने में यदि बुद्धिमानी, तजुरबे और दूरन्देशी से काम लिया जाता है तो पूँजी की उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है।

प्रबन्ध (Management)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है आजकल के जमाने में भूमि, श्रम और पूँजी के ऊपर प्रबन्ध करने वाले का हाथ रहता है। प्रबन्ध के कार्य और श्रम

मे अन्तर है। श्रमी अधिकतर शारीरिक मेहनत करता है और प्रबन्धक को दिमाग से ज्यादा काम लेना पड़ता है। प्रबन्धक उत्पत्ति के लिये सबसे उपयुक्त भूमि की खोज कर उस पर आवश्यक योग्यता वाले मजदूरों को श्रम विभाजन के नियमों के अनुसार लगाता है। उसे नए नए लाभदायक औजारों को इकट्ठा करना पड़ता है। वह समय के हिसाब से कच्चे माल को सस्ते से सस्ते दामों में खरीदता है। बाजार मे लोगों की रुचि के मुताबिक माल बनवा कर वह इस माल को अच्छे अच्छे दामों मे बेचता है। कहने का मतलब यह है कि प्रबन्धकर्ता लोगों की रुचि का ख्याल रख कर भूमि, श्रम और पूँजी को इस हिसाब और रूप से लगाता है कि कम से कम लागत मे अधिक से अधिक वस्तु तैयार हो जाती है और वह सबसे अधिक मुनाफे के हिसाब से बाजार में बेच देता है।

प्रबन्धक के गुण

इसमे संदेह नहीं कि जो मनुष्य प्रबन्ध करता है उसमें बहुत से गुण होने चाहिए। वह पढ़ा लिखा हो, होशियार हो, दूरन्देश हो, लोगों से मिलता-जुलता हो। बाजार के भाव व लोगों की बदलती हुई चाह से वाकिफ रहे तथा ऐसा विचित्र फैशन का माल तैयार करावे जिसमें मनुष्य उस माल को सबसे अधिक मात्रा मे खर्च करे। प्रबन्धकर्त्ता आज-कल के कनवेसिंग के तरीकों से जानकारी रखता है और उपयोगी तरीके से अपने माल का विज्ञापन छापता है। इसके अतिरिक्त वह अपने माल को देशी और विदेशी बाजारों मे पहुँचाने के लिए सबसे सस्ती और शीघ्र पहुँचाने वाली सवारी का प्रबन्ध करता है। प्रबन्धक का उद्देश्य रहता है कि कम से कम खर्च मे अधिक से अधिक लाभ करते रहना। यदि किसी मशीन का प्रयोग करने से खर्च मे कमी होती है तो वह मजदूर का ख्याल किये बिना ही मजदूरों को घटा कर उस मशीन को कारखाने मे मँगावेगा।

साहस या जोखिम (Enterprise)

मान लो, उत्पत्ति के उपरोक्त चारों साधन मौजूद हैं परन्तु सबको इस बात का शक है कि कार्य शुरू कर देने के बाद उनको भूमि का लगान, श्रम की मजदूरी, पूँजी पर सूद व प्रबन्धक का वेतन मिलेगा या नहीं। ऐसी हालत मे उस समय तक उत्पत्ति का कार्य शुरू ही नही हो सकता जब तक कोई व्यक्ति साहस न कर ले, सबको इस बात का विश्वास न दिला दे कि काम असफल

हो जाने पर भी वह लगान, मजदूरी, वेतन, सूद आदि चुकता कर देगा। लेकिन खाली विश्वास वाला होने से काम नहीं चलना। विश्वास दिलाने वाले की हालत ऐसी होनी चाहिये जिससे सब लोग उसकी बातों का विश्वास कर ले। इसके लिये यह बहुत जरूरी है कि विश्वास दिलाने वाला साहसी मनुष्य धन तथा अपनी बात दोनों का धनी हो। इसके अलावा साहसी को बुद्धिमान तथा दक्ष होना चाहिये, जिससे वह योग्य सहायक वा प्रबन्धक को ढूँढ सके। यह तो हुए साहसी के गुण। अब देखना चाहिये कि साहसी और उत्पत्ति मे हाथ बँटाने वाले अन्य व्यक्तियों मे कोई भिन्नता है या नहीं। सबमे बड़ा फर्क यह है कि भूमि के मालिक का लगान, श्रमिक की मजदूरी, महाजन का सूद और प्रबन्धक का वेतन बँधा हुआ होता है लेकिन साहसी को आने वाली रकम में से यह सब काट कर जो बचता है उसी से सन्तोष करना पड़ता है। यदि कुछ कमी पड़ती है, तो उसे स्वय अपनी गाँठ से लगाना पड़ता है। यह सब ठीक है लेकिन तिस पर भी किसी मनुष्य या कम्पनी को साहसी का बीडा उठाना ही पड़ता है। क्योंकि बिना साहस के न कोई व्यापार चालू किया जा सकता है और न चालू व्यापार बढ़ाया ही जा सकता है। साहसी का कारबार की जोखिम उठानी पड़ती है। यदि हानि होती है तो उसे सहन करना पड़ता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—उदाहरणों सहित समझाइये कि स्थान-परिवर्तन से उपयोगिता की वृद्धि किस प्रकार होती है?

२—दूकानदार और व्यापारी वस्तुओं की उपयोगिना वृद्धि किस प्रकार करते हैं?

३—समय परिवर्तन से उपयोगिता वृद्धि के उदाहरण दीजिये।

४—क्या किसी वस्तु के विज्ञापन से भी उपयोगिता-वृद्धि होती है?

५—क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसके अधिक उपयोग करने से उसकी उपयोगिता-वृद्धि होती है?

६—यह समझाइये कि निम्नलिखित व्यवसायों मे उत्पत्ति के साधनों का किस प्रकार उपयोग किया गया है:—

हलवाई की दूकान, कपडे की दूकान, सूत कातना, कपडे बुनना, गौशाला।

७—श्रम और मनोरंजन का अन्तर समझाइये। यदि कोई व्यक्ति कविता करता है या गाता है तो उसका कविता करना या गाना श्रम कहलायेगा या मनोरंजन ?

८—उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के भेद बतलाइये। यदि कोई विद्यार्थी परिश्रम करने पर भी अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है, तो उसका श्रम उत्पादक कहलायेगा या अनुत्पादक ?

९—पंडा, जमींदार, डाक्टर, पुरोहित, साधु, सिपाही इत्यादि के श्रम किन दशाओं में उत्पादक माने जा सकते हैं ?

१०—भारतीय मजदूरों की कार्य क्षमता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है !

११—अर्थशास्त्र की दृष्टि से भूमि की विशेषताएँ तथा महत्व समझाइये।

१२—क्या आपके गाँव में भूमि किसानों को काफी परिमाण में मिल जाती है ? यदि नहीं, तो कमी के प्रधान कारण क्या हैं ?

१३—चल और अचल पूँजी के भेद समझाइये। निम्नलिखित उद्योग-धंधों की चल और अचल पूँजी लिखिये :—

गन्ने की खेती, कपास का कारखाना, मिठाई बनाना, खिलौना बनाना।

१४—प्रबन्धक के कार्य का महत्व समझाइये। उसमें किन गुणों की आवश्यकता है ?

१५—उत्पत्ति से अर्थशास्त्र में क्या अर्थ लिया जाता है ? उत्तर उदाहरण सहित दीजिए। (१९४७)

१६—उत्पत्ति में जोखिम का क्या स्थान है ? निम्नलिखित व्यवसायों में जोखिम कौन उठाता है —

बटाई पर की जाने वाली खेती, मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी, कपड़े का कारखाना, चीनी का कारखाना।

१७—उत्पत्ति के अर्थ समझाइये। उत्पत्ति के साधन बताइये। गाँव के उद्योग धन्धों में इन साधनों के महत्व की तुलना कीजिये। (१९४३)

१८—भूमि और पूँजी की परिभाषा दीजिये तथा अर्थ समझाइये। क्या भूमि अधिक होने से आपके गाँव में अधिक उत्पादन होगा। (१९४६, ५०)

चौथा अध्याय

भारतीय गाँव की मुख्य पैदावारें

भारतीय कृषि का महत्व

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि उत्पत्ति करने में किन-किन शक्तियों से काम लेना पड़ता है। अब इन शक्तियों के सहयोग से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के बारे में कुछ जानना आवश्यक मालूम पड़ता है।

भारत में अस्सी प्रतिशत से अधिक लोग गाँव में रहते हैं। सत्तर प्रतिशत से अधिक लोग खेती द्वारा अपना पेट पालते हैं। अत. यह मानी बात है कि हमारे यहाँ गाँव और खेती मुख्य हैं। लेकिन सन् १९४७ से, जब कि देश का विभाजन हुआ था, खेती की समस्या अधिक महत्वपूर्ण बन गई है। हमारे देश में अन्न की कमी है। देश में कितना अन्न अथवा कोई भी कृषि पदार्थ कितना पैदा होता है, यह हम सही-सही नहीं जानते। तब भी बहुत कुछ मालूम है। इससे हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि हमारे देश में अन्न, रुई और जूट की अति कमी है। भोजन और वस्त्र की कमी का मूल कारण जब उपज की कमी है तब भारतीय कृषि की उन्नति अति आवश्यक है। अत इसका ही पहले अध्ययन करना अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। भारतीय कृषि का अध्ययन कई प्रकार से हो सकता है। हम पहले खेत की उपज की मोटी बात बतायेंगे, फिर एक जिले की उपज की और तब भारतीय उपज की।

यदि खेत की उपज के बारे में पहले कुछ विचार किया जाय तो अनुचित न होगा। भारत में अधिकतर दो फसलें होती हैं। एक खरीफ कहलाती है और दूसरी रबी। खरीफ की फसल जेठ मास से लेकर कार्तिक तक चलती है और बाकी छै महीनों में अर्थात् कार्तिक से बैसाख तक रबी की फसल होती है।

खेती की क्रिया

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जिले में खरीफ की फसल बोने के पहले खेत में खाद डाल देते हैं। पानी बरसने के बाद खेत एक बार जोत दिया जाता है। खरीफ की फसल में यहाँ ज्वार, बाजरा, मक्का, सावाँ और कोदो, चावल,

अरहर, मूँग, उरद, और तिल्ली बोई जाती है। मक्का और ज्वार के लिये खेत अक्सर दो बार जोते जाते हैं। बाजरे के लिये एक ही बार हल चलाने से काम निकल जाता है। ज्वार और मक्के को तो किसान कूँड़ी बनाकर बोते हैं। बाजरा, उरद और मूँग के, बीज को बखेर कर बोते हैं। जब वर्षा नहीं होती तब खरीफ में एक-दो बार खेतों को सींचने की जरूरत पड़ती है और नहीं तो खरीफ की फसल के लिये सिंचाई कोई खास जरूरी नहीं है। अरहर रबी की फसल के साथ बैसाख में काटी जाती है, बाकी सब चीजें भादों और कुआर में काट ली जाती हैं। रबी की फसल में गेहूँ, चना, जौ, मटर, मसूर, अलसी, सरसों, गन्ना और ऊख बोया जाता है। जिन खेतों में गेहूँ, जौ-सरसों इत्यादि चीजें बोई जाती हैं उनमें खरीफ की फसल नहीं पैदा की जाती बल्कि उन खेतों को एक बार जोत कर बरसात के पहले छोड़ देते हैं। बरसात में उनमें खूब पानी भरता है। गेहूँ वगैरह बोने के पहले फिर ये खेत दो-तीन बार जोत दिये जाते हैं। रबी में चना और मटर को तो बखेर कर बोते हैं बाकी सब अनाज कूँड़ी द्वारा बोये जाते हैं। रबी की सब फसलें बैसाख के आखीर तक कट जाती हैं। अस्तु, इस प्रकार से इलाहाबाद जिले में पैदा होनेवाले अन्नों में चावल, गेहूँ, चना ज्वार, बाजरा, जौ, मर्रई मुख्य हैं। दालों में मूँग, उड़द, अरहर, मटर, मसूर. आदि पैदा होती हैं। तेलहन की वस्तुओं में तिल, सरसों या अलसी प्रधान हैं। इसके अलावा गन्ना और आलू की खेती होती है।

भारतीय भूमि की पैदावार की कमी

इलाहाबाद जिले में जो उपज पैदा होती है, उनमें मेवा, मसाला, कपास जूट, सन, चाय, तम्बाकू व पशुओं के चारे का नाम जोड़ दिया जाय तो भारत की सारी मुख्य उपज गिनती में आ जाती है। इन फसलों का विस्तृत वर्णन हमारी दूसरी पुस्तक "भारत का आर्थिक भूगोल" में किया गया है। मोटी तौर पर हम कह सकते हैं कि खेती से उत्पन्न पदार्थों की दृष्टि से भारत संसार में तीसरा गिना जाता है। संसार भर की पटसन की माँग का अधिकांश भारत ही पूरी करता है, लेकिन गेहूँ कपास, चावल आदि की पैदावार में भी यह अच्छा स्थान रखता है। यहाँ के निवासियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सोचने से यहाँ की उपज कम मालूम पड़ती है। यही नहीं, तुलना करने से पता चलता

है कि प्रति एकड़ हम जितना गेहूँ, जौ, कपास गन्ने आदि की उत्पत्ति करते हैं उतनी ही जमीन में उससे कई-कई गुना उपज अमेरिका और रूस वाले पैदा करते हैं। हमारे यहाँ फी एकड़ जितना गेहूँ पैदा होता है उसका चौगुना अमेरिका में और इससे भी अधिक रूस में पैदा किया जाता है, क्योंकि वहाँ पर तो मील-मील दो-दो मील की खेती की जाती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ से आठ से दस गुना और बढ़िया गन्ना जावा और हवाई द्वीप में उगाया जाता है। हमारे यहाँ जितना कपास एक बीघा में उत्पन्न होता है मिश्र और अमेरिका के लोग उसमें पाँच गुनी अधिक पैदा कर लेते हैं। चाहे जो उपज ले लीजिये, हर एक में हम और देशों से पिछड़े हुये पाये जाते हैं।

पैदावार की कमी के कारण

स्वभावत: प्रश्न उठता है कि आखिर किस कारण से भारत में और देशों की अपेक्षा उपज इतनी कम होती है। यह हम जानते हैं कि खेतों में उत्तम खाद देनी चाहिये, अच्छे बीज बोने चाहिए उत्तम औजारों से खेत को जोतना बोना चाहिये तथा खेत की सिंचाई का पूरा प्रबन्ध रखना चाहिये।

लेकिन हमारे देश के कितने भागों में तो सिंचाई के पर्याप्त साधन ही नहीं हैं। हमारे उत्तर प्रदेश में नहरों का इन्तजाम है। नहरों से आबपाशी करने के लिये किसानों को खेत के हिसाब से दाम चुकाने पड़ते हैं। यहाँ पर पानी का बड़ा नुकसान होता है। पहले किसान खेतों में पानी पहुँचाने के लिये जो नालियाँ बनाते हैं वे इतनी बुरी हालत में होती हैं कि पानी फूट-फूट कर बाहर निकल जाता है। खेतों में क्यारियाँ नहीं बनाई जातीं तथा सिंचाई ठीक तरह से नहीं होती। चूँकि नहर से आबपाशी करने की कीमत का पानी के परिमाण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता इसलिए जरूरत से ज्यादा पानी खेतों में दिया जाता है जिससे खेतों की फसल को बड़ा धक्का पहुँचता है। जिस प्रकार कम सिंचाई से उपज को धक्का पहुँचता है वैसे ही अधिक सिंचाई से भी उपज खराब हो जाती है। यदि उचित परिमाण में थोड़ी कम सिंचाई की जाय तो फसल बहुत अच्छी होवे। और यह जरूरी है कि किसान इस बात का ज्ञान प्राप्त करें कि किस फसल के लिये कितने पानी की जरूरत है। बहुत से प्रदेश ऐसे हैं जहाँ नहरों और कुओं का अभाव है सिंचाई की व्यवस्था नहीं है।

हमारे किसानों को पर्याप्त खाद नहीं मिलती। यह कुछ आम रिवाज सा हो गया है कि गोबर की उपली पाथ दी जाती है। ये उपली या कंडे ईंधन की जगह जलाने के काम में लाये जाते हैं। यदि इस गोबर से उपली पाथने की जगह खाद बनाई जावे तो बहुत अधिक फायदा हो। इसके अलावा खाद डालने के पहले किसान खाद को खेतों में पहले से ढेरी लगा कर धूप में छोड़ देते हैं जिससे खाद का बहुत-सा तत्व नष्ट हो जाता है। खाद के अलावा किसान जिन बीजों को बोते हैं वे स्वस्थ और अच्छी हालत में नहीं होते। वैज्ञानिकों ने यह समझ लिया है कि दीर्घकाल की दृष्टि से प्राकृतिक खाद जैसे गोबर की खाद हरी खाद, सनई की खाद, मलमूत्र की खाद अधिक उपयोगी है और कृत्रिम खाद अवांछनीय होती है। फलस्वरूप उपज कम होती है।

किसान के पास बैल और औजारों की भी कमी है। बैल मरियल तथा रोगी होते हैं, उनसे खूब कसकर काम नहीं लिया जा सकता। इसी प्रकार कहीं भारी हलों से काम लिया जाता है तो कहीं हल्के हल से। इसके अलावा हल में खेत खोदने के लिये जो लोहे का फल लगा रहता है वह कहीं अधिक नुकीला होता है और कहीं साधारण। सबसे बड़ी बुराई तो यह है कि हमारे हल ज्यादा गहराई तक नहीं खोद सकते और न मिट्टी को ही अच्छी तरह पलट सकते हैं इसलिये जो पौधे उगते हैं उन्हें ऊपर की ही सतह से अपनी खुराक खींचनी पड़ती है। नीचे की जमीन वैसी ही पड़ी रहती है। इससे भी पैदावार अच्छी नहीं होती है। यदि बढ़िया और उन्नत ढङ्ग के हलों से काम लिया जाय तो खेत अधिक गहरे खोदे जा सकते हैं। ऐसा करने से नीचे की बढ़िया मिट्टी ऊपर आ जायगी और पैदावार अच्छी हो सकती है।

जिस तरह से मनुष्य बिना आराम किये लगातार काम नहीं कर सकता उसी प्रकार जमीनों से लगातार वैसी फसल नहीं पैदा की जा सकती। प्रायः जब एक फसल पैदा हो चुकती है तो जमीन में कुछ तत्वों की कमी पड़ जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिये समय की आवश्यकता होती है अर्थात् फौरन ही यह कमी ठीक नहीं की जा सकती। इसलिये कितने ही एक फसल के बाद उस खेत में कुछ नहीं बोते अर्थात् उसे परती छोड़ देते हैं। ऐसा

करने से कुछ महीनों में जमीन उन पदार्थों को, जो उससे निकल जाते हैं, वायुमंडल द्वारा फिर से खींच कर जमा कर लेती है। यह कार्य तो ठीक है लेकिन इससे जमीन बेकार पड़ी रहती है। दूसरे भूमि को केवल परती छोड़ देने से ही खोये हुए सब तत्व वापस नहीं आ जाते। अगर खाद दी जाय तो इन तत्वों की उचित पूर्ति हो सकती है। खाद देने का उचित तरीका तो यह होगा कि परती छोड़ी हुई भूमि में बराबर दूरी पर फुट डेढ़ फुट गहरे गड्ढे खोद कर उनमें कूड़ा कर्कट, गोबर भर-भर कर उन्हें ढक देवें। इससे साल भर में खाद बनकर जमीन में मिल जायगी। लेकिन अब तो विज्ञान के धुरन्धर विद्वानों ने यह ढूँढ़ निकाला है कि किस फसल के बाद कौन कौन से तत्व नष्ट होते हैं। इसका सम्बन्ध फसलों के हेर-फेर मे जोड़ा जा सकता है। प्रायः किसान फसलों को हेर-फेर से बोते हैं लकिन वे उपरोक्त बताए सिद्धान्त को अच्छी तरह से नहीं समझते। किसी फसल के बाद जमीन के सब तत्व तो निकल ही नहीं जाते और न हर एक फसल से वही तत्व नष्ट होते हैं। इसलिये अगर किसी फसल के बाद ऐसी फसल बोई जाय जिसमें उन्हीं तत्वों की जरूरत पडे जो कि अभी जमीन में मौजूद हैं तो बहुत अच्छा हो। चूँकि खोये हुए तत्व से अब हमारा कोई मतलब नहीं रहता इसलिये जमीन उनको अच्छी तरह से वायुमडल के द्वारा खींच सकती है। इससे तीसरी बार हम फिर से पहली फसल को बो सकेंगे उदाहरण के लिये मकई के बाद गेहूँ, ज्वार के बाद जौ, मसूर, मटर या अलसी, कपास के बाद मकई बोई जा सकती है। गेहूँ के साथ-साथ दालें या तेलहन की वस्तुएँ बोई जा सकती हैं।

उपज में कमी होने का एक कारण यह भी है कि किसानों में शिक्षा का अभाव है। इसके अलावा वे निर्धन हैं। अतएव अच्छी बातों के ऊपर खर्च नहीं कर सकते। पैसा हो तो भी क्या करें। बिना उपयुक्त शिक्षा पाये वह अच्छी तरह व्यय नहीं कर सकता। यदि किसान पढ़ा-लिखा हो तो उसे यह भली-भाँति समझाया जा सकता है कि कैसी खाद होनी चाहिये कैसे फसलों के हेर-फेर से परती भूमि छोड़ने की आवश्यकता हटाई जा सकती है या अधिक पानी डालने से कौन से नुकसान होते हैं।

खेतों का छोटे छोटे और दूर-दूर होना
(Fragmentation of Land Holdings)

इन बुराइयों के अलावा एक और कमी है। भारत मे बहुत से खेतों का क्षेत्रफल एक-एक दो दो एकड़ भी नहीं है। कितने किसानों के खेत इससे भी छोटे-होते है। किसी-किसी का क्षेत्रफल तो आधा ही एकड़ होता है अथवा इससे भी कम। इसके अलावा अनेक किसानो के पास बहुत से खेत होते हैं। लेकिन यह दूर दूर होते है। इससे किसानों को बहुत हानि होती है। छोटे खेतों मे अच्छे-अच्छे हलों और औजारों से काम नहीं लिया जा सकता है। हलों को खेत में घुमाने में ही बहुत सी भूमि बेकार चली जाती है। इन सब बातों से किसानों में लड़ाई-झगड़ा खूब होता है और आये दिन अदालत के दर्शन किये जाते हैं। ऊपर इस बात का जिक्र आया है कि खेतों का दूर-दूर होना बुरा है। खेतों के एक जगह न होने के कारण एक खेत से दूसरे खेत मे पानी ले जाने मे बहुत सा समय व्यर्थ जाता है। जोताई-बोवाई के अवसर पर दो चार घटे की देर होने से ही नुकसान का डर रहता है। यदि खेत एक जगह हो तो ऐसे समय मे देर होने का डर नहीं रहता। फिर सिंचाई के समय एक ही समय में सब खेतों में पानी नही दिया जा सकता। अगर कही नहरों से पानी लेकर कोई किसान अपने खेत सींचता है तो नहर से पानी लाने में बड़ा खर्च और असुविधा पडती है। यदि खेत एक जगह हो और कुएँ से सिंचाई की जाय तो एक ही बार मे सब जगह पानी पहुँच जाय। खेतों के दूर रहने से एक ही कुआँ काम नहीं देता और दूर-दूर से पानी लाने मे बडी कठिनाई पड़ती है। फिर यह सब को मालूम है कि जब फसल तैयार होने लगती है तो उसकी रखवाली की बड़ी जरूरत पड़ती है। यदि रखवाली न की जाय तो चिड़ियाँ, तोते, गाय, बकरी वगैरह पशु और पक्षी फसल को साफ कर दें। लेकिन अगर किसान का कोई खेत गाँव के इस कोने पर है और कोई उस कोने पर तो रखवाली ठीक तौर पर नहीं की जा सकती। खेती के एक जगह होने से एक ही आदमी ठीक से खेत की देख रेख कर सकता है और बहुत से रखवालों की आवश्यकता नहीं पडती तथा पैदावार के मारे जाने का डर भी कम हो जाता है।

इसके अलावा खेत पास हों तो एक ही आदमी खेत के बहुत काम सँभाल

लेवे। हरवाहे आदि काम करते रहते हैं अकेला आदमी सब देख-भाल कर लेता है। दूर-दूर खेत होने से नौकर ठीक काम नहीं करते और अकेला आदमी सब जगह समय से ठीक देख नहीं पाता है। इससे खर्च भी अधिक हो जाता है और पैदावार को भी हानि होती है। फिर दूर-दूर की दौड़-धूप में शरीर को कष्ट होता है। एक जगह खेत होने से शरीर को भी आराम मिलता है। आदमी ही नहीं, बैलों को भी आराम मिलता है तथा कटाई, ढोवाई इत्यादि में भी आसानी रहती है। और आपस में दूसरे किसानो से होने वाली लड़ाइयाँ भी कम हो जाती हैं। खेतों के दूर-दूर होने से किसान खेत पर मकान बनाकर नहीं रह सकता। इससे खाद का अच्छी तरह से उपयोग नहीं हो सकता।

ऊपर कही बुराइयों के कारण यह जरूरी है कि ये हानियाँ दूर की जायें। इसका सीधा सा उपाय यह है कि हर एक गाँव में या कई गाँवों में मिलाकर सब खेतों का मूल्य अन्दाजा जाय और एक किसान के खेतों का जितना मूल्य हो उतने उतने मूल्य के खेत एक स्थान में एक चक में कर दिये जायँ और भविष्य के लिये उनको छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटा जाना बन्द कर दिया जाय। जहाँ एक ही परिवार के दो तीन आदमियों के पास कई छोटे-छोटे खेत हों वहाँ पर बेहतर होगा कि यदि उनमें समझौता करा कर वे खेत एक ही आदमी को दिलवा दिये जायँ, दूसरे आदमियों को उनके हिस्से का रुपया मिल जायगा। कई जगह ऐसा प्रयत्न सफलतापूर्वक किया जा चुका है और दूसरी जगह भी ऐसा ही उपाय किया जा सकता है। सहकारी समितियों द्वारा खेतों की चकबन्दी कैसे की जा सकती है यह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

गाँवों में बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास सब खेतों का क्षेत्रफल इतना कम है कि यदि चकबन्दी द्वारा एक चक में भी कर दिये जावें तो भी खेती से हानि निश्चित है। जिन किसानों के पास तीन चार एकड़ से कम क्षेत्रफल के खेत हैं उनको खेती से इतनी आमदनी नहीं हो सकती कि वे अपने कुटुम्ब का जीवन-निर्वाह कर सकें। ऐसे किसानों की सख्या प्रत्येक गाँव में काफी अधिक रहती है। इनकी दशा तो तब सुधर सकती है जब गाँव के सब किसान मिल कर एक सहकारी समिति बना लें और सामूहिक रूप से खेती करें। इस

प्रकार की सहकारी समिति मे संगठन कैसे किया जा सकता है, यह किसी अगले अध्याय मे बतलाया जायगा।

खेती में क्या करना पडता है?

आप भारत के खेतों की खास फसलें, उनके कम होने के कारण और इन कारणों को दूर करने के उपाय तो जान गए। अब हम संक्षेप मे यह भी बता देना चाहते है कि आखिर खेती करने के लिए क्या क्या करना पडता है अथवा भारत के किसान किस प्रकार खेती करते है। यह हम शुरू मे ही बता चुके हैं कि भारत मे अधिकतर दो फसलें होती हैं। एक खरीफ की फसल कहलाती है और दूसरी रबी की। पहली बरसात के शुरू से चलकर दिवाली तक जाती है और दूसरी दिवाली से होली तक मे तैयार होती है। अस्तु, वर्षा आरम्भ होने से पहले किसान खेत मे जगह-जगह खाद की ढेरियाँ लगा देता है फिर जब पानी दो-तीन दिन बरस कर रुक जाता है तब फौरन खेत को जोत दिया जाता है और खाद को फावडे से फैलाकर पटेला चलाकर खेत बराबर कर देते हैं। इसमे बीज मिट्टी मे दब जाते है और चिड़ियाँ उन्हें चुग नहीं सकतीं। आषाढ़ की फसल पानी बरसने के चार पॉच दिन में ही बो दी जाती है ताकि कहीं जमीन सूख न जाय अथवा पानी फिर बरसने लगे। इस फसल में मकई, बाजरा, कपास, उरद, मूँग, अरहर, अडी, सन, धान, इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। मकई व ज्वार के खेत अक्सर दो बार जोते जाते है। कपास का बीज बोने के पहले खेत तीन चार बार जोता जाता है। अन्य फसल बोने के पहले एक-दो बार जोतकर खेतों को छोड़ देते है। रबी की फसल मे बीज बोने से पहले खेतों को दो-तीन बार जोतना और उन पर पाटा चलाना पड़ता है। रबी मे गेहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों, अलसी, इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। बीज बोने के दो तरीके हैं। कुछ फसलों के बीज हाथ से खेत मे छितरा कर फेंके जाते हैं जैसे बाजरा, उर्द, मूँग, चना, मटर आदि के बीज। मक्का, ज्वार, कपास आदि के बीज कूँड़ा के जरिये या नाली के जरिये बोये जाते हैं। कूँड़ की बोवाई मे हल के द्वारा जो कूँड़ खुदता जाता है, उसमें एक आदमी दाना छोड़ता जाता है। नाली की बोवाई में हल के पीछे एक लम्बा पनालीदार बॉस बँधा रहता है। एक आदमी हल चलाता जाता है और दूसरा पोले बॉस में दाने छोड़ता चलता है। जिन खेतों की मिट्टी भुरभुरी होती है उसमें कूँड़ की बोवाई की जाती है।

जिस जमीन मे नीचे नमी और खुश्की होती है उसमें नाली की बोवाई होती है।

बोवाई के बाद सिंचाई की बारी आती है। अगर पौधों का पानी न मिले तो वे सूख जायँ और उपज मारी जाय। यो तो खरीफ की फसल में सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि बोवाई के बाद कई महीने तक बरसात होती है लेकिन जिस बार वर्षा नहीं होती उस बार खरीफ की फसल में और रबी की फसल में तो हमेशा ही सिंचाई करनी होती है। जहाँ नदियाँ है वहाँ पर तो सिंचाई के लिए नहरें खोद दी गई हैं। लेकिन सब जगह तो नदियाँ होतीं नहीं। वहाँ पर अधिकतर कुओं से सिंचाई की जाती है। मोट द्वारा कुओं से पानी निकलते तो सब ने देखा होगा। इसमें चमडे का बड़ा डोला होता है जो कुएँ में रस्सी बाँध कर डाला जाता है। इस मोट को कुएँ से खींचने का काम बैलों से लिया जाता है। एक आदमी बैलों को हाँकता हुआ दूर तक ले जाता है जिससे मोट ऊपर खिंच आता है। एक दूसरा आदमी कुएँ पर रहता है जो मोट के ऊपर आ जाने पर उसमें से पानी उडेल लेता है। पानी नालियों के द्वारा खेत में पहुँच जाता है। जहाँ किसी तालाब से किसी ऊँचे खेत में पानी पहुँचाना होता है, वहाँ दो आदमी एक दौरी मे पानी भर कर ऊपर फेंकते हैं, कहीं-कहीं रहट से सिंचाई होती है। इसमें एक चरखी खम्भों के सहारे कुएँ की जगत पर लगाई जाती है। चरखी पर बँधी हुई एक रस्सी में बहुत से डोल बँधे रहते हैं। एक डोल भर कर ऊपर आता है तो दूसरा कुएँ में जाता है। इसमे एक ही आदमी बैल हाँकने को रहता है।

सिंचाई के अलावा किसान को खुर्पी से पौधों के आसपास उगने वाली घास को खोदकर फेंकना पड़ता है। इसको निराई कहते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो फसल के पौधों का खाना घास वगैरह बँटा लें क्योंकि वह भी पौधों की तरह जमीन से खाना लेती हैं। बरसात में तो बड़ी जल्दी घास-फूस जम जाती है। इसलिए किसान दस-पन्द्रह दिन मे निराई करता है। रबी की फसल मे निराई की कम जरूरत पड़ती है।

जब फसल के खेत पक कर तैयार हो जाते है तो किसान हँसिया से काट कर गेहूँ, चना आदि को खलिहान में ले आता है। खलिहान उस लिपी-पुती जगह को कहते हैं जहाँ फसल साफ की जाती है। फसल के ऊपर बैल चला कर

पहले पौधों को मॉड़ा जाता है, जिससे भूसा और अनाज के दाने अलग हो जायँ। मॉड़ने के पश्चात् हवा चलाने पर उड़ौनी की जाती है। एक ऊँची तिपाई पर से टोरी मे भर कर मॉडे हुए अनाज को नीचे गिराते हैं। जिससे हल्का होने के कारण उड़ कर भूसा दाने से अलग जा गिरता है। इसके बाद किसान अनाज और भूसे को अपने घर ढो ले जाता है।

ग्रामीण उद्योग धन्धे

खेती के सम्बन्ध में हमने और सब बातों पर विचार कर लिया, परन्तु यह नहीं ख्याल किया कि खेती करने में किसान बारहों महीने काम करता रहता है अथवा उसे कभी खाली भी बैठना पडता है। भारत में किसानों को आमतौर पर चार महीने से लेकर छः महीने तक बेकार रहना पड़ता है। दूसरे महीने में तो उसका किसी तरह काम चल जाता है, परन्तु बेकारी के समय के लिए वे कुछ बचाकर नहीं रख सकते। अतः उन्हें किसी ऐसे उद्योग-धन्धे की आवश्यकता रहती है जो या तो खेती करने मे सहायता पहुँचावें अथवा जो खेती पर निर्भर हों। उद्योग-धन्धे न तो ऐसे होने चाहिए कि उन्हें छोड़ देने पर उनमे लगी हुई पूँजी जकड़ी पड़ी रहे और न ऐसे होवें जिनमें किसी प्रकार की विशेष शिक्षा की जरूरत पडे। **उद्योग धन्धे ऐसे होने चाहिए जो मौके-मौके पर चालू किये जा सकें, जैसे चर्खा कातना, लकडी व मिट्टी से खिलोने बनाना तार के पिजड़े बनाना, साबुन बनाना, हाथ का कागज बनाना, चावल कूटना, गुड़ बनाना, दाल दलना इत्यादि। इस दृष्टि से किसानों के लिए एक मुख्य उद्योग पशु-पालन का है।** गाय भैंस पालने से न केवल दूध घी-दही का व्यापार होता है, बल्कि साथ ही साथ गाय-भैंस के बच्चे खेती के काम में आते हैं और गाय का गोबर और मूत्र खाद के काम आता है। बकरी भी पाली जा सकती है। बकरी का दूध पी लिया जाय और बकरे-बकरी बेचे जायँ। काश्मीर, पंजाब, राजस्थान तथा अन्य ठडी जगहों में भेड़ पालने तथा ऊन-उत्पादन का काम किया जा सकता है। मुर्गी पालने और बच्चे तथा अडे बेचने का काम अच्छा है।

खेती के साथ मे कम खर्च के साथ एक छोटा सा बगीचा लगाया जा सकता है जिसमे तरकारी, भाजी या फल फूल पैदा किये जा सकते हैं। यदि किसान

फलों को न बेच सके तो वह बाग को ठेके पर उठा सकता है। यदि गुलाब के फूल लगाये जायँ तो गुलाबजल और गुलकन्द बनाना कठिन नहीं होना चाहिए।

ग्रामीण धन्धे इस प्रकार के होने चाहिये कि जिनमें अधिक पूँजी की जरूरत न पड़े क्योंकि किसान के पास खेती के ही लिए पूँजी का टूटा रहता है, और न इस प्रकार के होने चाहिये कि जिनमें बहुत पेचीदे यन्त्र और औजार काम में आते हों। जिनको चलाने में किसान को कठिनाई हो या उनकी गाँव में मरम्मत न हो सके। धन्धे इस प्रकार के होने चाहिए कि उनको जब भी चाहें छोड़ा जा सके और जब चाहें उन्हें फिर चलाया जा सके और हानि न हो। कारण यह है कि किसान का धन्धा तो यह है कि खेती को उसकी सेवाओं की जिस समय आवश्यकता हो उसी समय वह उस धन्धा थोड़े समय के लिए छोड़ दे। धन्धा जहाँ तक हो, ऐसा हो कि उसके माल की आस-पास ही गाँवों में खपत हो सके।

शहद की मक्खी को पालकर शहद उत्पन्न किया जा सकता है। शहतूत के वृक्ष लगाकर रेशम के कीड़े पाले जा सकते हैं। अंडी की पैदावार वाले प्रदेश में अंडी के कीड़े पाले जा सकते हैं। इससे प्राप्त रेशम भी बेचा जा सकता है और उससे धागे भी बुने जा सकते हैं। खेती के अयोग्य जमीन पर पेड़ लगा देने से लकड़ी मिल सकती है। इसके अलावा किसान रस्सी बटने, टोकरी बनाने, चटाई बुनने, पंखा बुनने, आदि का काम बखूबी कर सकते हैं। अगर गाँवों में बिजली पहुँच जाय और उपर्युक्त छोटी मात्रा के उद्योग-धन्धे खोल दिये जायँ तो किसान अपने बेकारी के समय में इन धन्धों में भी काम कर सकता है। अगर उन्हें कुछ शिक्षा तथा सहायता व सलाह मिले तो स्वयं भी मिलकर ऐसे धन्धे कर सकते हैं। उनके अतिरिक्त नीचे लिखे धन्धे भी ग्रामीण उद्योग-धन्धे के रूप में चलाये जा सकते हैं। तेल घानी, कताई, गुड़, और शक्कर बनाना, चमड़ा साफ करना इत्यादि।

ऊपर हमने केवल संक्षेप में बताया है कि किसान अपनी बेकारी के दिनों में कौन-कौन से काम कर सकता है। अगले अध्याय में इन धन्धों तथा जूता बनाने का काम लकड़ी के काम, लोहे के काम, मिट्टी के बर्तन बनाने के धन्धे आदि के बारे में और खुल कर बतायेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—शहर में रहने वाले अपने एक मित्र को पत्र लिखिए और उसमें अपने गाँव की खरीफ की फसलों का वर्णन कीजिए।

२—आपके गाँव में इस वर्ष रबी की फसलें कितने रकबे में बोई गई हैं। अपना उत्तर देने में पटवारी के कागजों से सहायता ले सकते हैं।

३—आपके गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे अच्छी फसल किस किसान के खेत में हुई? उस किसान से यह जानने का प्रयत्न कीजिए कि एक एकड़ में कितना गेहूँ इस वर्ष उत्पन्न हुआ।

४—आपके गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे खराब फसल किस किसान के खेत में हुई? उसकी फसल खराब होने के क्या कारण थे?

५—आपके गाँव में जिन हलों का उपयोग किया जाता है उसका सचित्र वर्णन कीजिए। हल कितनी गहराई तक जमीन खोदते हैं?

६—गहरी जोताई के लाभ समझाइये और बताइये कि आपके गाँव में कौन से नए हल का उपयोग विशेष रूप से लाभदायक होगा?

७—अपने गाँव की सिंचाई के तरीकों का वर्णन कीजिए। उनमें किन सुधारों की आवश्यकता है?

८—गोबर की खाद का महत्व समझाइये। गोबर की उपली बनाकर जला देने से जो हानियाँ हो रही हैं, उनको बतलाइये।

९—आपके गाँव में फसलों की हेर फेर किस प्रकार की जाती है? इस प्रथा में क्या कोई सुधार की आवश्यकता है?

१०—खेतों के दूर-दूर पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे हुए होने से क्या कठिनाइयाँ होती हैं? इनके उपयुक्त उपाय बतलाइये। (१९५१)

११—अपने गाँव के सब से बड़े खेत का रकबा और सबसे छोटे खेत का रकबा लिखिये। साधारणतः कितने एकड़ रकबे के खेत आपके गाँव में अधिक हैं।

१२—अपने गाँव में ऐसे किसानों का पता लगाइये जिनके पास ४ एकड़ से कम रकबे के खेत हों। उनकी एक वर्ष की आमदनी का पता लगाइये और

यह जानने का प्रयत्न कीजिए कि वे अपना जीवन-निर्वाह बराबर कर पाते हैं या नहीं।

१३—आपके गाँव के किसान उत्तम बीज प्राप्त करने के लिये किस प्रकार और कितना प्रयत्न करते हैं? यदि सब किसान उत्तम बीज बोने लगें तो आपके गाँव की फसलों की उपज में कितनी वृद्धि हो सकती है?

१४—अपने गाँव की किसी फसल की मँड़ाई का वर्णन कीजिए।

१५—आपके गाँव में कृषि की दशा क्यों खराब है? उसे सुधारने के लिये आप क्या उपाय करेंगे?

१६—आपके गाँव के किसान प्रति वर्ष साधारणतया कितने दिन बेकार रहते हैं? इन दिनों में वे क्या काम करते हैं?

१७—अपने गाँव के घरेलू उद्योग-धन्धों का वर्णन कीजिए। गाँव वालों के लिए उनका क्या महत्व है?

१८—भारत में कम उपज के मुख्य कारण क्या हैं? इसे बढ़ाने के मुख्य उपाय बताइये। (१९४३, ४७, ४९)

१९—भारत में कृषि के मुख्य दोष और कठिनाइयों को समझाइये। उन्हें सुधारने में लिये क्या उपाय कीजियेगा? (१९४५)

२०—भारत में भोजन की कमी के क्या कारण हैं? उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है? (१९४८)

पाँचवाँ अध्याय

घरेलू और स्थानीय उद्योग-धन्धे

(Cottage Industries)

घरेलू उद्योग-धन्धों की आवश्यकता

खेती पर तो हम पूरी तरह विचार कर चुके। किन्तु केवल खेती से उत्पन्न वस्तुओं से हमारा काम न कभी चला और न चलेगा। पहले हमारे देश के उद्योग-धन्धों का माल योरोप तक में बिकता था परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी की

उलटी नीति तथा इग्लेंड मे बडे-बडे कारखाने खुल जाने के कारण हमारे कारीगरों को धक्का पहुँचा। अतएव वे गाँव और खेती की ओर झुक पडे। अधिक खेती के द्वारा इतने अधिक लोगो का पालन न हो सका और उनका रहन-सहन गिर गया। तभी से बराबर अन्य उद्योग-धन्धों और खासकर ग्रामीण घरेलू उद्योग-धन्धो की आवश्यकता बनी रहती है।

घरेलू उद्योग या बड़ी मात्रा के उद्योग

वैसे तो हमको अनेक तरह का अन्य माल तैयार करना पड़ता है अर्थात् दस्तकारी और उद्योग-धन्धों का कार्य अख्तियार करना पडता है। भारत मे कुछ बडे-बडे कारखाने खुले हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अगर इन कारखानों की सख्या बढ़ाई जाय तो लोगों को काम भी मिले और देश में मिलो के तैयार माल भी मिलें। परन्तु पिछले सौ साल मे जितने बड़े उद्योग धन्धे खुले हैं उनमे तीस लाख से अधिक मजदूर काम नहीं करते। इन उद्योग-धन्धों को बढ़ाने के रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ है और अगर वे सब हल भी हो जायें तो हमारा मतलब पूरा नही होगा। बडे-बडे कारखानों में बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और यदि किसी तरह पूँजी इकठी भी कर ली जावे तो मशीनों की आवश्यकता होगी। हमे यथेष्ट मशीन भी नहीं मिल रही हैं और न शीघ्र ही कोई आशा ही है। फिर बड़े कारखानों को चलाने के लिये विशेषज्ञ, वैज्ञानिक तथा इञ्जीनियर इत्यादि की बहुत आवश्यकता है जिनकी आज देश में कमी है। इसके अतिरिक्त पिछले महायुद्ध ने हमें यह भी बतला दिया कि एक ही स्थान पर बहुत बडे बड़े कारखाने केन्द्रित कर देना देश को एक भयकर खतरे मे डालना है क्योंकि आज हवाई युद्ध मे बमो के द्वारा औद्योगिक केन्द्रों का नष्ट करना बहुत आसान है। अत आवश्यकता इस बात की है कि जो धन्धे छोटे रूप म चलाये जा सकते है उनको गृह उद्योग धन्धो के रूप मे ही चलाया जावे। केवल यही कारण नही हैं जिनसे हमे गृह उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देना जरूरी है। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि हम यदि मान लें कि बड़े बड़े कारखाने चलाए जा सकते है और बड़े धन्धे सफल हो सकते हैं तो भी वे बहुत थोडे ही आदमियो को काम दे सकेंगे। भारत मे लगभग ७५ प्रतिशत जनसख्या खेती करती है। भूमि की कमी है। किसानो के पास इतनी कम भूमि है कि उस पर

लाभदायक खेती हो नहीं सकती और न वे उतने मे अपना पालन-पोषण ही कर सकते हैं। अब यदि हम बडे-बडे कारखाने ही स्थापित करेंगे तो बहुत थोडे लोगोंको काम मिल सकेगा। ऐसी दशा में गृह उद्योग-धन्धों को स्थापित करना ही हमारे हित में होगा।

घरेलू उद्योग-धन्धों के भेद

कुछ लोग घरेलू उद्योग-धन्धों के दो भाग करते हैं:—कृषि सहायक घरेलू उद्योग-धन्धे तथा स्वतन्त्र घरेलू उद्योग-धन्धे। पहले वर्ग में ऐसे धन्धे रक्खे जाते हैं जिन्हें किसान अपनी कृषि के साथ या फालतू समय में कर सकता है जैसे—पशु पालन, रस्सी बटना चटाई बुनना, मुर्गी पालना, मधु मक्खी पालना, रेशम के कीडे पालना, सूत कातना आदि। दूसरे वर्ग में वे उद्योग-धन्धे रक्खे जाते हैं जो अधिकतर स्वतन्त्र रूप से किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, जुलाहा केवल बुनाई से पेट पालन करता है और चमडे के काम से चमार। इससे यह न समझना चाहिये कि ये काम स्वतन्त्र रूप से नहीं किये जा सकते हैं। अतः हम इस भेद को भुला कर नीचे मुख्य घरेलू उद्योग-धन्धों का वर्णन करेंगे।

हमारे स्थानीय उद्योग-धन्धे

भारत में प्रचलित घरेलू उद्योग-धन्धे अनेकों हैं। लाख जो एक प्रकार के वृक्ष की गोंद है तथा जो वारनिश करने और मोहर लगाने के काम मे आती है, अब बडे पैमाने में तैयार होने लगी है। पहले यह घरों मे ही साफ की जाती तथा बनाई जाती थी। शहद और मोम की तरफ लोगों का अधिक ध्यान नहीं गया है। तब भी कुछ जगली और पहाडी जातियाँ इस काम को करती हैं। साबुन फैक्टरी में भी बनता है और घरों में भी बनाया जाता है। बाजार मे आपको घरेलू बने हुए बहुत से साबुन मिल सकते हैं। हाथी-दाँत की कारीगरी में तो भारत के शिल्पी मशहूर हैं। हाथी-दाँत का जितना बढिया और उत्तम काम होता है वह प्राय अफ्रीका के हाथी-दाँत पर होता है। दिल्ली, मुर्शिदाबाद, मैसूर, ट्रावनकोर, जयपुर वगैरह हाथी दाँत की कारीगरी के लिये मशहूर हैं। रेशमी कपडे का काम अब बहुत कम हो गया है। जापानी और बनावटी रेशम के कारण भारत का यह धन्धा बिलकुल मारा गया। तब भी भागलपुर, मुर्शिदाबाद, बनारस आदि स्थानों में अब भी रेशमी कपड़ा हाथ से तैयार किया

जाता है। उत्तरी भारत और खास कर काश्मीर मे अच्छा और वढिया ऊनी कपड़ा बनता है। हालोंकि ऊन के कारखाने खुल गये हें तब भी मोटे कम्बल, दरियाँ, पट्टी और पश्मीना बनता है। काश्मीर के शाल बहुत मशहूर हैं। कार-चोबी और कसीदे का काम उत्तर में बड़ी उन्नत दशा मे है। तम्बाकू, काली मिर्च और इलायची साफ करना, सिरका डालना, सत निकालना, डबल रोटी और बिस्कुट बनाना वगैरह-वगैरह काम घरेलू उद्योग-धन्धों मे गिने जाते हैं। अब हम उत्तर प्रदेश के कुछ उद्योग-धन्धा का वर्णन करते है।

बरतन बनाना

इस प्रदेश में बरतन बनाने का काम बहुत होता है। पीतल, ताँबा, कस-कुट और लोहा के बडे अच्छे-अच्छे बरतन बनाये जाते हैं। बरतन बनाने का काम करने वालों को ठठेरा कहते हैं। मुरादाबाद के कलई के बरतन बडे मश-हूर हैं। अब तो बरतन बनाने का काम बहुत बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। धनी आदमी सैकड़ों बरतन बनाने वालों को नौकर रख लेते हैं और खूब तादाद में बरतन तैयार कराते हैं। यह तो हुआ धातु के बरतनों का हाल। अब मिट्टी के बरतनो के बारे मे सुनिये। कुम्हार और कुम्हार के चाक से तो सभी परिचित होंगे। तुमने कुम्हार को अपने पत्थर के चाक घुमा कर उस पर रक्खी मिट्टी से सिकोरा, करई, हँडिया, मटकी, घड़ा बनाते तो देखा ही होगा। वह किस सफाई के साथ अपनी उँगलियों को नचा कर अच्छी-अच्छी चीजे बना लेता है। हर एक गाँव में कुम्हार होता है। चुनार की तरफ मिट्टी के चिकने काले बरतन बनाये जाते हैं जो बडे सुन्दर होते है।

चटाई और टोकरी बनाना

बरतन के अलावा कलकत्ते की तरफ बड़ी अच्छी चटाइयाँ बिनी जाती है। ये चटाइयाँ खूब पतली बिनी हुई रहती हैं। उत्तर प्रदेश मे अक्सर ताड़ के पत्तों की चटाइयाँ बुनी जाती हैं। ये कुछ भद्दी और कमजोर होती हैं। गाँवों में डलियाँ, टोकरी झाऊ के पेड़ों से, सरकडों तथा बाँस की तीलियो से बनाई जाती हैं। मजदूर के टोकरे, भूसा उपली रखने के टोकरे झाऊ और सरकडो के बनाये जाते हैं। इन्हीं से डलिया बनाते हैं। बाँस की टोकरी बनाने मे पहले बाँस को चीर चीर कर चौड़ी पतली-पतली खपाच बना लेते हैं। पहले कुछ मोटी

और चौड़ी खपाचियों को आड़ा समझ कर रख लेते हैं। उसके बाद दूसरे डठलों को चारों ओर घुमाकर इस तरह कसते जाते हैं कि वे अलग-अलग न हो सकें। सरकडों से टोकरी तथा मोढे आदि बनाये जाते हैं।

गुड़ बनाना

गांव में किसान गन्ने या ऊख से रस निकालते हैं। इस रस का गुड़ बनाया जाता है। गुड़ बनाने के लिये रस को बडे-बडे कड़ाहों मे उबालते हैं। हमारे यहाँ के किसान गुड बनाने में सफाई का ख्याल नहीं रखते। तिनके, पत्तियाँ आदि सब रस के साथ गुड में रहने देते हैं। इनके अलावा जो रस के ऊपर का मैल होता है उसे भी ठीक से नहीं निकालते। मेरठ, बनारस और कानपुर का गुड़ खूब अच्छा और साफ समझा जाता है।

चरखा कातना और कपडा बुनना

किसान का दूसरा सहायक धन्धा है सूत की कताई और कपडे की बुनाई। महात्मा गाँधी का कहना है कि आर्थिक दृष्टि से चरखे और खद्दर का महत्व बहुत है। इस काम में अब भी बीस लाख जुलाहों और सूत कातने वालों को काम मिलता है। सूत कातने का काम ऐसा है कि किसान को जब फ़ुरसत हो तभी कर सकता है। एक चरखे में कोई ज्यादा पूँजी भी नहीं लगती। यदि चरखे पर सात-आठ घंटे काम किया जाय तो कातने वाला अच्छी तरह आठ आने रोज कमा सकता है। सूत कातने मे एक और फायदा यह है कि इसी सूत से किसान अपने घर वालो के पहनने के लिये कपडे बुन सकता है। सचमुच सूत की कताई और कपड़ों की बुनाई का काम ऐसा है कि दरिद्र किसानों की दरिद्रता बहुत हद तक कम हो सकती है। पुराने समय में तो ढाका की तरफ ऐसा पतला सूत काता जाता था कि उसके बिने हुए मलमल के थान एक छोटी डिबिया में आ जाते थे। कहते हैं कि जहाँगीर को किसी ने एक छोटी अँगूठी में नग की जगह थान रख कर भेंट किया था।

कुछ लोगों का कहना है कि हाथ करघे पर कपडा बुनने का धंधा मिलों के मुकाबले मे नहीं ठहर सकता, किन्तु उन्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस गिरी हुई अवस्था में भी हाथ करघे लगभग २८ लाख बुनकरों को काम देते हैं और देश में जितने कपडे की खपत होती है उसका एक चौथाई कपड़ा हाथ-करघे

पर तैयार होता है। फिर भी इस धन्धे की दशा अच्छी नहीं है। इसके मुख्य कारण ये हैः—(१) जुलाहे निर्धन हैं। उनके पास पूँजी नहीं होती। उन्हें सूत इत्यादि उधार लेना पड़ता है और इस कारण वह महाजन के चंगुल में फँस जाता है। (२) उसके कर्घे तथा अन्य औजार बढ़िया नहीं हैं, उनमें उन्नति होने की आवश्यकता है। (३) जुलाहा अधिकतर पुरानी डिजाइनें ही तैयार करता है। नई डिजाइन जिनकी बाजार में माँग है उनको सीखने की जरूरत है। (४) जुलाहे को अपने माल को बेचने की न तो कला ही आती है और न उसके पास विज्ञापन देने तथा कनवेसर इत्यादि रखने की सुविधायें ही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सहकारी समितियों के द्वारा माल बिकवाने का प्रबन्ध किया जावे। (५) जुलाहों के लिये पर्याप्त सूत मिलों से नहीं मिलता।

पशु-पालन

जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया था, किसानों के लिए एक बड़े महत्व का उद्योग है पशु पालन। गाँव में बहुत से लोग गाय पालते और दूध-घी बेचते हैं, लेकिन न तो वे रोजगार के ढंग से जानवरों की सेवा करते हैं और न रोजगार के ढंग से अपना माल ही बेच पाते हैं। इसी से देखा जाता है कि किसानों को अकसर गायों के पालने से कोई लाभ नहीं होता। कहने को हम लोग गाय को गौ माता कहते हैं, लेकिन हमारे किसान न तो उन्हे अपनी माँ की तरह खाना देते हैं और न अच्छी जगह में उन्हें रखते ही हैं। इसके अलावा गाय भैंसों की सफाई नहीं रक्खी जाती, फलस्वरूप ढोरों में अनेक रोग फैल जाते हैं और बहुतों की अकाल मौत हो जाती है। इन्हीं कारणों से ढोरों की नसलें कमजोर होती जा रही हैं। पहले तो किसान गाय खरीदने में गलती करते हैं। गाय दुधार होनी चाहिये। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि गाय मोटी हो। गाय की खाल पतली तथा रोयें नरम और चिकने होने चाहिये। थन सीधे हों, न बहुत छोटे हों न बहुत बड़े। काली, लाल और भूरे रंग की गायें अकसर अच्छी होती हैं।*

दूध का काम

गाय पालने से बहुत फायदे होते हैं। गाय का बछड़ा बड़ा होकर खेत

*देखिये अध्याय २०—पशुपालन।

जोतने के काम आता है। गाय का गोबर उपलों, खाद और घर लीपने में काम आता है। गाय के दूध के बगैर तो हमारा काम ही नहीं चल सकता। कोई दूध पीता है कोई उसका दही, कोई मक्खन या मलाई रबड़ी बनाकर खाता है। दूध का खोया बनाया जाता है। हम आगे किसी अध्याय में बतावेंगे कि दूध क्यों ताकतवर होता है। ताकतवर होने के कारण ही तो छोटे बच्चों को गाय का दूध पिलाया जाता है, लेकिन दूध से बीमारियाँ भी बहुत सी फैलती हैं। दूध की सफाई में जरा भी लापरवाही करने से वह खराब हो जाता है। जरा भी सफाई की कमी होने से बैक्टीरिया नाम का एक कीड़ा दूध में पैदा हो जाता है, इससे दूध फौरन बीमारी का घर बन जाता है। हमारे ग्वाले दूध दुहने में बड़ी लापरवाही दिखाते हैं। न तो वे कभी थन को धोते हैं न अपने हाथों को दुहने के पहले साफ करते हैं और न साफ-सुथरे कपड़े ही पहनते हैं। इनके अलावा बछड़े के दूध पी चुकने के बाद भी थन का धोना आवश्यक है। दुहने वाले को न तो खाँसने छींकने की आदत होनी चाहिये और न कोई छूत का ही रोग हो। दुहने की जगह पर गर्द-गुबार न पड़ना चाहिये। दूध का बरतन साफ मँजा हुआ होवे और जब दूध बेचने के लिए ले जाया जाय तो बरतन हमेशा साफ कर लेना चाहिए। यह तो हुई दुहने के सम्बन्ध की बातें। अब दूध बेचने का तरीका सुनिये। हमारे देहाती भाई अगर सेर भर दूध होता है तो पाव डेढ़ पाव पानी मिला देते हैं। यही नहीं विज्ञान के विद्वानों ने एक ऐसी मशीन निकाली है जिसमें डाल कर घुमाने से कच्चे दूध से मक्खन अलग निकल जाता है। बचे हुए दूध को मक्खनिया दूध कहते हैं। आजकल देहाती इस प्रकार पहिले से ही मक्खन निकाल कर तब दूध को बेचने लाते हैं। ऐसा दूध किसी काम का नहीं होता। हमारे हलवाई इसी दूध को खरीद कर बेचते हैं। इसी का दही जमाते हैं। चूँकि मक्खनिया दूध पतला और सार रहित सा मालूम पड़ता है इसलिये इसको गाढ़ा बनाने के लिये थोड़ा सा आरारोट या तीखुर डाल देते हैं। आरारोट पड़े दूध के दही के ऊपर मोटी मलाई जम जाती है। यह काम शहर में काफी किया जाता है। अगर हम चाहते हैं कि अधिक किसान दूध बेच कर कुछ पैसा कमा सकें तो उन्हें दूर-स्थित शहरों और नगरों में बिना बिगड़ा दूध ले जाने की सुविधा जरूरी है।

मक्खन और घी

दूध से मक्खन और घी भी बनाया जाता है। ऊपर हमने मक्खनिया दूध का हाल बताते समय कच्चे दूध से मक्खन निकालने की एक तरकीब बताई है। कच्चे दूध से मक्खन निकालने की जिस मशीन का जिक्र ऊपर आया है वह अभी हमारे गाँव तक नहीं पहुँची है। शहर में ही उसका उपयोग किया जाता है। तुमने पिछली बार जो मक्खन मोल लिया होगा वह इसी तरह बनाया गया था। दूध को आग पर पका कर मथने से भी मक्खन निकल आता है, लेकिन शहर वाले पकाने के झगड़े में नहीं पड़ते। गाँवों में जो घी तैयार किया जाता है उसके लिये पहले दूध को उबालते अथवा पकाते हैं। पके हुए दूध में थोड़ा सा पहले का रखा हुआ दही डाल कर रख देने से सात आठ घंटे में दूध जम कर दही बन जाता है। इसको मथानी से खूब मथते हैं। मथने से मक्खन ऊपर तैरने लगता है और निकाल लिया जाता है। मक्खन निकालने के बाद जो दूध सा पदार्थ बचा रहता है उसे मट्ठा कहते हैं। मथ कर निकाले मक्खन को नैनू भी कहते हैं। नैनू कच्चे दूध से निकाले मक्खन से कहीं अधिक अच्छा और स्वादिष्ट होता है।

मक्खन को अच्छी तरह गरम करके घी बनाया जाता है। मक्खन में दूध का कुछ भाग बचा हुआ रहता है। औटाने पर वह जल जाता है और घी तैयार हो जाता है। मक्खन एक दो दिन से अधिक नहीं ठहरता। दूध का भाग रहने से उसमें बदबू आने लगती है और वह खराब हो जाता है। इसलिए मक्खन ताजा खाया जाता है। घी बनाने में खराब होने वाला भाग पहले ही जल जाता है। इसलिये घी बहुत दिनों तक रहता है। घी और मक्खन दोनों शरीर को ताकत पहुँचाते हैं। लेकिन ये बहुत अधिक हजम नहीं किये जा सकते। मक्खन को घी से अधिक लाभदायक मानते हैं। आजकल बिकनेवाले घी में नारियल या दूसरी चीजों का तेल भी मिला देते हैं। इसके अलावा आजकल तरह-तरह के बनावटी घी चल निकले हैं। जैसे घास का घी, कोकोजम इत्यादि। बहुत से लोग मक्खन को अच्छी तरह नहीं तपाते हैं बल्कि आधा पका आधा कच्चा ही बेचते हैं। इसलिये तुमने कभी किसी को घी के बारे में कहते सुना होगा कि घी में मट्ठा है। आजकल शहर में अच्छा घी मिलता ही नहीं। हाँ,

गाँव में अच्छा घी मिल जाता है। इसलिए आजकल घी मोल लेते समय उसे अच्छी तरह देखकर लेना चाहिये।

रस्सी बनाना

तुमने देखा होगा कि गाय दुहते समय ग्वाला अक्सर गाय के पिछले पैर रस्सी से बाँध देता है। पतली डोर को रस्सी कहते है और मोटी को रस्सा। किसानों का तो बिना रस्सी रस्से के काम ही नहीं चल सकता। घर में, खेत में, गाड़ी की जाली बनाने में, बोझा बाँधने में उसे रस्सी की जरूरत पड़ती है। मूंज के, घास के, नारियल की जटाओं के, सन के सरपत के तथा और और चीजों के भी रस्से बनाये जाते हैं। मूज की महीन बटी रस्सी को बाध कहते हैं और यह खटिया बुनने के काम आती है। घास और मूँज की रस्सी बनाने के पहले उसे पानी में भिगोते है। अच्छी तरह भीग जाने पर इन्हें खूब कूटते है। जब उनके डोरे-डोरे अलग हो जाते ह तब उनमें से चार-चार छै-छै रेशे हाथों में लेकर ऐंठते और आपस मे मिलाते चलते है। एक लम्बी रस्सी तैयार हो जाने पर उसे दोहरा-तेहरा करके और मोटा व मजबूत बना लेते हैं। सन की रस्सी बनाने के लिए पहले सन के पौधों का सडा कर सुखाया जाता है, तब सन अलग कर लेते हैं और उसे बट कर रस्सी तैयार करते है। हमारे यहाँ के किसान सन को गन्दे पानी मे सडाते हैं जिससे वह मैला हो जाता है। इसके अलावा हमारे यहाँ सन में कूडा भी होता है। फिर वे योंही सन के लच्छे बना डालते हैं जिससे रेशों के उलझ जाने पर उन्हें सुलझाने मे बडी मेहनत पड़ती है। मूँज की रस्सी मजबूत होती है और पानी पडने पर बिगडती नहीं। लेकिन सन की रस्सी पानी में रहने से ठीक नहीं रहती। नावों को बाँधने के लिए जो बडे बड़े रस्से बनाये जाते हैं वे मूँज के ही होते हैं।

लकडी का काम

रस्सी के अलावा दूसरी चीज है लकड़ी, जिसके बिना किसानों का काम नहीं चल सकता। गाँव मे बढई का होना जरूरी है। हल, जुआ, पालकी, खिडकी, दरवाजा बढई द्वारा ही तैयार होते हैं। डीवट, खड़ाऊँ और खुरपा, कुल्हाड़ी व बसूला का बेंट भी वही बनाता है। लकडी के जो कुछ भी काम बन सकते हैं वे बढ़ई की ही दस्तकारी के नमूने हैं। लेकिन बढई एक ही दो

चीजों के बनाने में अपना हुनर दिखाते है। जो सब बातों में अपनी टाँग अड़ाते हैं वे किसी बात में निपुण नहीं हो पाते। गाँव के बढ़ई को हल तथा बैल-गाड़ियाँ तो जरूर ही बनानी पड़ती है। कोई बढ़ई हल बनाने में होशियार होता है, कोई गाड़ी बनाने में। इसके अलावा उत्तरी भारत मे लकड़ी पर चिताई का काम देखने मे आता है। कारीगर लकड़ी पर ऐसे उम्दा-उम्दा बेल-बूटे बनाते है तथा ऐसी नक्काशी करते हैं कि देखते बनता है। इसमे शीशम, साल व आबनूस की लकड़ी अधिकतर काम में लाते हैं। नागपुर तथा अन्य जगहो में चिताई का काम बहुत अच्छा होता है। बनारस की तरफ लकड़ी के खिलौने बनाकर उस पर हल्के रग से चित्रकारी की जाती है और फिर एक खास किस्म की वारनिश कर दी जाती है। ये खिलौने काफी अच्छे होते हैं।

लोहार का काम

बढ़ई के बाद गाँव के लोहार का नम्बर आता है। हल का फाल, कुल्हाड़ी का लोहा, खुरपा, बसूला आदि चीजो के बनाने के लिए प्रत्येक गाँव मे एक लोहार का रहना जरूरी रहता है। लोहार लोहे को आग मे तपाता है। फिर उस लोहे को चौड-ऊँचे टुकडे पर जिसे घन कहते हैं हथोडे से पीट कर जिस शक्ल का चाहता है बना लेता है। लेकिन अब तो लोहे के बडे-बडे कारखाने खुल जाने से लोहार का बहुत काम घट गया है। तब भी लोहार देहात मे अपना स्थान रखता है।

तेल पेरने का काम

लोहार की तरह तेली का हाल है। गाँव में तेल जलाने के काम में आता है। तिल्ली का तेल जलाया भी जाता है और खाया भी। सरसों, अलसी, महुआ आदि और भी कितनी चीजों का तेल निकलता है। गाँव मे एक तेली अवश्य होता है। तेल पेरना और बेचना ही उसका काम होता है। तिल्ली कोल्हू मे पेरी जाती है। पत्थर की एक बड़ी सी ओखली जमीन मे गड़ी होती है। ओखली के पास ही एक लकड़ी का खम्भा रहता है। उसमे लकड़ी का बड़ा सा कोल्हू बाँध देते हैं, जिसमें वह सधा रहे। ओखली मे तिल्ली डालकर बैल कोल्हू के साथ ओखली के चारों ओर घुमाते हैं। ऐसा करने से तिल्ली कोल्हू के नीचे पिसती है और उसमें से तेल निकलता है। पत्थर में छेद होता

है। तेल इस छेद से जमीन में रक्खे हुए एक बर्तन में गिरता जाता है। तेल निकल जाने पर तिल्ली की खली हो जाती है। खली जानवरो को खिलाई जाती है जिससे वे दूध अधिक दें। अब तो कहीं-कहीं आयल एंजिन की मशीनों द्वारा तेल निकाला जाता है। इसके चालू करने मे खर्च तो ज्यादा जरूर होता है लेकिन देशी कोल्हू में जितना तेल दिन भर मे निकलता है उतना तेल एंजिन के जरिये आधा घण्टे में निकल आता है।

जूते बनाना

जिस तरह गाँवों में जुलाहा, बढ़ई, लुहार आदि रहते हैं, वैसे ही चमार भी रहता है। अगर इनमें से कोई भी गाँव छोड दे तो सब लोगों को तकलीफ होगी। चमार हमारे लिए नए-नए जूते बनाता है और फटे-पुराने जूतों की मरम्मत करता है। गाँव का चमार खेती भी करता है और खेती से फ़ुरसत मिलने पर जूता बनाने का काम कर लेता है। यों तो गाँव का चमार घोडों पर की काठ और बैल हाँकने के लिए चमडे के तस्मे वगैरह बनाता है। शहरों मे चमडे के बक्स और मशक वगैरह बनाये जाते हैं लेकिन गाँव का चमार अधिकतर जूते ही बनाता है। तुमने देहाती जूता तो देखा ही होगा। शहरों में अब पश्चिमी ढग के फैशनदार जूते के चल जाने से देहाती जूतों को कोई नहीं पूछता। लेकिन अंग्रेजों के आने के पहले सब कोई देहाती जूता पहनते थे। हमारा देहाती जूता बड़ा मजबूत तथा अच्छा होता है। इससे पहले तो पैर में गर्मी नहीं पहुँचती है। फिर भी यह जल्दी पहना और उतारा जा सकता है। ये जूते ऐसे बनाये जाते हैं कि इन्हें पहनने और उतारने मे हाथ न लगाना पडे। जूता गाय, बैल, आदि जानवरों की खाल का बनाया जाता है। जानवर के मर जाने पर चमार उसकी खाल को निकाल लेते हैं। खाल को पहले धूप में अच्छी तरह सुखाते हैं जिससे वह खूब कडी हो जाती है। इसके बाद खाल के रोएँ साफ कर दिये जाते हैं। फिर खाल को कमाते हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार ने चमड़ा निकालने और कमाने की शिक्षा देने के लिए और सुधार करने को 'बख्शी के तालाब' (लखनऊ) पर एक केन्द्र खोला है। अब तो जूता बनाने के बडे-बडे कारखाने खुल गए हैं, जिनमें बडे-बडे उम्दे-उम्दे सस्ते जूते बनाये जाते हैं। भारतीय कारखानों में बने जूतों में कानपुर आगरा या बाटा कम्पनी (कलकत्ता) के

जूते मशहूर हैं। अब हम कुछ ऐसे उद्योग-धन्धों का वर्णन करेंगे जो गाँवों में खोले जा सकते हैं।

फल, फूल और तरकारी पैदा करना

हमने पिछले अध्याय में फल, फूल और तरकारी-भाजी के बाग लगाने के काम की चर्चा की थी। यदि किसान उपज की खेती के साथ एक छोटा सा बाग लगा ले तो उसे फल और तरकारी खाने को मिलेगी ही, उन्हें बेच कर वे कुछ पैसे भी पा सकेंगे। फूलों से किसान का घर तो महँक ही उठेगा। उससे खुशबूदार जल, इत्र तथा गुलाब से गुलकन्द बनाया जा सकता है। कुछ फूल के पेड़ बंजर भूमि में भी फूल सकते हैं और तरकारी की वाटिका में किसान के घर का गन्दा पानी काम आ सकता है। परन्तु यदि वाटिका किसान के घर से मिली नहीं है तो गन्दे पानी को वाटिका तक ढोना पड़ेगा। फूलों से पूर्ण लाभ उठाने के लिये किसान को उचित शिक्षा, ट्रेनिंग तथा सहायता देने की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु किसान गाँव में फल व तरकारी किसके हाथ बेचेगा? अगर वह किसी शहर के पास है तब वह उसे शहर ले जाकर अथवा शहर के विक्रेताओं के हाथ उन्हें बेच देगा। अगर ऐसा नहीं है तब बिना यातायात के प्रबन्ध के वह पैसे नहीं कमा सकता।

शहद का धन्धा

ऊपर फूलों का जिक्र आया था। फूलों के बीच अगर शहद की मक्खी पाल कर छत्ता लगवाया जाय, तो शहद पैदा किया जा सकता है। लेकिन छत्ते के लिए फूल की वाटिका आवश्यक है। अब तो लकड़ी के ऐसे बक्स मिलते हैं जिनमे शहद की मक्खियाँ पालकर शहद निकालने के लिये न तो मक्खियों को उड़ाना पड़ता है और न छत्ते को तोड़ना। इस धन्धे मे झंझट भी कम होता है। पूँजी भी कम लगती है और जगह भी कम घिरती है। शहद अधिक पौष्टिक भोजन भी है। परन्तु इस धन्धे की सफलता के लिये भी किसान को शिक्षा तथा बिक्री मे सहायता आवश्यक है। दक्षिण भारत में डाक्टर स्पेंसर हैच तथा दूसरे ईसाई मजहब वालों की मेहनत के कारण गाँवों मे इस धन्धे का काफी प्रचार हुआ है।

अन्य उद्योग-धन्धे

ऊपर बताए गए कुछ घरेलू उद्योग-धन्धों के अलावा अभी बहुत से और धन्धे हैं। मध्य प्रदेश में वार्धा नगर में एक "अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ" है। उसका उद्देश्य गाँवों की हालत सुधारना है। उसकी देख-रेख में नीचे लिखे ग्राम-उद्योग चल रहे हैं :—

धान से चावल निकालना, आटा पीसना, गुड़ बनाना, तेल निकालना, शहद की मक्खियाँ पालना, मछली पालना, दूध का काम, कम्बल बनाना, रेशम का माल बनाना, सन की कताई और बुनाई, कागज बनाना, चटाई बनाना, कंघियाँ बनाना, पत्थर की कारीगरी, साबुन बनाना, चमड़ा तैयार करके उससे तरह-तरह की वस्तुएँ बनाना इत्यादि।

घरेलू उद्योग-धन्धे की कठिनाइयाँ

घरेलू उद्योग-धन्धों की मुख्य कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) काम करने वालों को अच्छे कच्चे पदार्थ, जैसे सूत, लोहे की चद्दर तथा ताँबा-पीतल उपयुक्त भाव में नहीं मिलते।

(२) उसके पास पूँजी की कमी है। वे जिस महाजन से कर्ज लेते हैं उसके चंगुल में फँस जाते हैं। फिर या तो उन्हें अपना माल सस्ते दामों पर महाजन के हाथ बेचना पड़ता है या अधिकांश कमाई महाजन को सूद के रूप में देनी पड़ती है।

(३) पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण खरीदार की पसन्द बदल गई है। न खरीदार की पसन्द पहले जैसे बनती है और न कारीगरों को नये डिजाइन आदि बताने का उपयुक्त और पर्याप्त प्रबन्ध है। शिल्प शिक्षा का विशेष प्रबन्ध भी अपर्याप्त है।

(४) घरेलू उद्योग-धन्धों के माल को उचित कीमत पर अच्छे बाजार और विदेशों में जहाँ उनकी माँग अधिक है, बेचने की विशेष सुविधा भी नहीं है।

घरेलू उद्योग-धन्धे और सरकार

हमने इस अध्याय में कुछ खास उद्योग-धन्धों के बारे में तो खुल कर बताया है और कुछ के बारे में संक्षेप में हाल कह दिया है। जिन धन्धों को अच्छी तरह बताया है उनका गाँव से अधिक सम्बन्ध है।

इसका यह मतलब नहीं है कि गॉवों में गाँवों से अधिक सम्बन्ध रखने वाले धन्धों की ही उन्नति की जाय। अगर सरकार पहले से योजना बनाकर गॉवों में कृषि के साथ उद्योग-धन्धों की व्यवस्था और उन्नति करे तो घरेलू उद्योग-धन्धों द्वारा साबुन, कागज, कघी, बटन, सुरक्षित छिले फल, हाथ के बिने कपड़े आदि अनेकों पदार्थ तैयार किये जा सकते है। वह गॉवों के लिये उपयुक्त धन्धे चुन सकती है। उसको चालू करने की व्यवस्था कर सकती है। किसानों को उनमें शामिल होने के लिये प्रोत्साहन, शिक्षा और आर्थिक सहायता दे सकती है। धन्धों के लिये यातायात के साधनों की उन्नति कर सकती है और माल की बिक्री सुलभ कर सकती है। अगर गॉवों मे बिजली भी पहुँच जाय तो कार्य-क्षमता और कार्य क्षेत्र अधिक बढ़ जाय। सरकार ही यह कार्य सम्पन्न कर सकती है। प्रादेशिक तथा दिल्ली की केन्द्रीय सरकारें ऐसी कोशिशें कर रही हैं। घरेलू उद्योग की उन्नति करना उनकी घोषित नीति है। भारत सरकार ने घरेलू धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए एक बोर्ड बनाया है। उत्तर प्रदेश मे टेकनिकल शिक्षा प्रदान करने के लिए नवीन सुविधायें दी जा रही हैं। सरकारी विभाग में काम आने वाली वस्तुएँ विशेषत कुटीर उद्योगों से ही खरीदी जाएँगी। अभी हाल में भारत सरकार ने तीन बोर्ड बनाये हैं जिनका काम गॉवों के उद्योग-धन्धों को तथा खादी को, हाथ करघे के धधे को, तथा अन्य दस्तकारी के धधे को उन्नत करना है। यह बोर्ड इन धधों को कच्चा माल मिले, उनको पूँजी मिलने की सुविधा हो, उनके लिए अच्छे औजार मिलें, अच्छा माल तैयार किया जावे और उनके माल की बिक्री बढ़ाने के लिये देश-विदेशों मे प्रचार किया जावे, इसका प्रबन्ध करते हैं।

यही नहीं सरकार इन धधों की मिलों की होड़ से रक्षा भी करती है और इन्हें आर्थिक सहायता भी देती है। आशा है कि सरकार की सहायता से यह धधे उन्नति करेंगे।

हम खेती और घरेलू उद्योग-धन्धों के बारे में काफी जान गये। अब प्रश्न उठता है कि इनके जरिये जो वस्तुएँ उत्पन्न की गई हैं उनको काम मे किस प्रकार लिया जाय। अर्थात्, वस्तुओं का किस तरह से उपभोग किया जाय।

उपभोग के सम्बन्ध की सारी बातों पर हम अब अर्थशास्त्र के उपभोग विभाग के अन्दर विचार करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसी किसान से पूछकर लिखिए कि प्रतिमास उसे खेती सम्बन्धी कौन कौन से काम करने पड़ते हैं। किन महीनों में उसे सबसे अधिक काम रहता है और किन महीनों में उसे सबसे कम?

२—आपके गाँव के किसान साधारणतः वर्ष भर में कितने महीने बेकार रहते हैं? इस बेकारी के समय में आप इनको कौन सा काम करने की सलाह देंगे?

३—आपके गाँव में आजकल प्रतिमास कितना सूत काता जाता है? यदि गाँव के सब बेकार स्त्री-पुरुष प्रतिदिन चार घंटा सूत कातने लगें तो एक मास में कितना सूत तैयार हो सकता है?

४—आपके गाँव में या आसपास के गाँवों में जुलाहों की कितनी संख्या है? ये जुलाहे हाथ के कते सूत का कहाँ तक उपयोग करते हैं?

५—जुलाहों की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिए और उनकी दशा सुधारने का उपाय बतलाइये।

६—आर्थिक दृष्टि से खद्दर प्रचार की आवश्यकता समझाइए।

७—अपने गाँव के कुम्हार की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिए। वह अपनी आमदनी किस प्रकार बढ़ा सकता है?

८—उत्तर प्रदेश में पीतल के बरतन किन स्थानों में अच्छे और सस्ते मिलते हैं? मुरादाबाद किस प्रकार के बर्तनों के लिए प्रसिद्ध है और उस उद्योग की वर्तमान दशा कैसी है?

९—आपके जिले में गुड़ किस प्रकार बनाया जाता है। इस प्रदेश में गुड़ कहाँ अच्छा और सस्ता बनता है?

१०—शहर में दूध का क्या भाव है? गाँवों में दूध किस दर पर मिलता है? दोनों दरों में अन्तर के क्या कारण हैं?

११—शुद्ध दूध की पहचान लिखिये। शहर में शुद्ध दूध सस्ते भाव से देने के लिए योजना तैयार कीजिये।

१२—अपने गाँव के मुख्य घरेलू धन्धों का वर्णन कीजिए और बतलाइए कि उसके लिए कच्चा माल तथा श्रम किस तरह प्राप्त होता है और उसकी बिक्री किस प्रकार होती है। क्या आप बिक्री सुधार के कुछ उपाय बता सकते हैं? (१९४३)

१३—आपके गाँव में चमारों की क्या दशा है? उनकी दशा किस प्रकार सुधारी जा सकती है?

१४—अपने गाँव के मुख्य घरेलू धन्धों का वर्णन कीजिये। उनमें कौन-कौन सी बुराइयाँ हैं? उन्हे आप कैसे दूर करिएगा? (१९४४)

१५—यदि आपको ५००) दे दिया जाय तो आप उसे अपने गाँवों के घरेलू उद्योग धन्धों को सुधारने के लिए किस प्रकार खर्च करेंगे?

१६—सरकार योजना बनाकर किस प्रकार घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति कर सकती है? उदाहरण देकर समझाइये।

१७—ग्रामीण उद्योग धन्धों की आवश्यकता क्यों है? समझाकर लिखिए कि ग्रामीण धन्धे किस प्रकार के हों।

१८—अपने स्थान के उन मुख्य कुटीर उद्योगों का उल्लेख कीजिये जिन्हें आप जानते हैं। आपके पड़ोसियों के लिए उनका क्या महत्व है? (१९४२)

१९—अपने पड़ोस के किसी ग्रामीण उद्योग के कार्य और व्यवस्था तथा दोषों का पूर्ण वर्णन कीजिए। (१९४६)

२०—आपके स्थान के मुख्य कुटीर उद्योग क्या हैं? उनके महत्व पर विचार कीजिए। आजकल उनमें क्या कठिनाइयाँ हैं? (१९४७)

२१—अपने प्रदेश के मुख्य ग्रामीण उद्योग गिनाइए। उनकी सबसे महत्व-पूर्ण समस्याओं की विवेचना कीजिए। (१९४८)

छठा अध्याय

आवश्यकताएँ

(Wants)

आवश्यकता का महत्व

(Importance of Wants)

किसी वस्तु की उत्पत्ति उसके उपभोग किये जाने के लिये की जाती है। किसान अनाज क्यों पैदा करता है ? उसके आटे की रोटी बनाकर खाने के वास्ते। आदमी कपडे क्यों बनवाता है ? उन्हें बदन पर पहिनने के लिए। गाँव वाले जाड़े में अलाव क्यों जलाते हैं ? आग ताप कर ठंड मिटाने के लिए। अर्थात् उपयोग करने के कारण ही उत्पत्ति का कार्य किया जाता है। आदमी क्यों खाना खाता है ? काम करने के लिए। और काम क्यों करता है ? उसमे पैदा हुए धन से खाना खरीदने के लिए। मनुष्य को तरह-तरह की आवश्यकताएँ रहती हैं। वह भाँति-भाँति के फल फूल, कपडे लत्ते प्राप्त करना चाहता है। इसलिए ससार में तरह-तरह के काम धन्धे दिखलाई पड़ते हैं। किसानी, बढ़ईगिरी, लोहारी, चमारी, दर्जी का काम, घी बनाने का धन्धा आदि जितने काम काज हैं सब की पूर्ति मनुष्य की आवश्यकताओं के हाथ मे रहती है। अगर आज हमारी आवश्यकताएँ कुछ भी न रहें तो शायद बहुत से काम बन्द हो जायँ। बहुत से पेशे वालों को अपना अपना काम छोड़ना पड़ जाय। अस्तु, कहने का मतलब यह है कि उत्पत्ति और उपभोग में बहुत गहरा सम्बन्ध है, और हम किसी वस्तु का उपभोग इसलिए करते हैं कि हमें उस वस्तु के उपभोग की आवश्यकता मालूम पड़ती है और हम उस आवश्यकता को पूरा करना चाहते हैं। अतएव उपभोग की मूल आवश्यकताएँ हैं, और हमें इनके विषय में कुछ जरूरी बातें जान लेनी चाहिये।

आवश्यकता और इच्छा (Wants and Desire)

आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहते हैं जिसको पूरा करने के लिए वह मेहनत करता है। आवश्यकता और इच्छा में फर्क है। आदमी इच्छा

कलक्टर, जज और बादशाह बनने के लिए हो सकती है। आप सोच सकते हैं कि मैं जमींदार बनूँ और जो इस समय जमींदार हैं वे किसान बनें, और तब अच्छी तरह जमींदार की खबर लेवें। इच्छा करना और मन के लड्डू खाना बहुत कुछ एक ही बात है। लेकिन जब आप किसी इच्छा को कार्यरूप में कर दिखाने की कोशिश करते हैं तब इच्छा आवश्यकता मे पलट जाती है। आप कोट पहनने की इच्छा रखते है। जब आप कपड़ा मोल लाकर दर्जी से अपना कोट बनवा कर पहनते हैं तो कहा जायगा कि आपको कोट की आवश्यकता थी। इसी तरह बाजार मे कई एक वस्तुओं को देखकर उनको खरीदने और उपभोग करने की इच्छा होती है लेकिन अगर हम उन वस्तुओं को प्राप्त करने का प्रयत्न या उद्योग न करे तो वह केवल कोरी इच्छा ही रह जाती है। किसी आवश्यकता को पूरी करने के लिए उद्योग करना निहायत आवश्यकता वह इच्छा है जिसके लिए मनुष्य मेहनत या कुछ त्याग करने के लिए तैयार है।

आवश्यकता और उद्योग (Wants and Effort)

प्राचीन काल से ही मनुष्यों को अनेक वस्तुओं की आवश्यकता रही है। जिस समय लोग वन मे जगली जानवरो के समान रहते थे उस समय भी उन लोगों को अपने प्राण की रक्षा के लिए, पीने को पानी और पेट भरने के लिए अन्न की आवश्यकता थी। जैसे-जैसे आदमियों की सभ्यता बढ़ती गई, लागों की आवश्यकताएँ भी बढती गई। जब आग का आविष्कार हुआ तब मनुष्यों को नाना प्रकार के भोजनों की आवश्यकता हुई। उन्हे यह मालूम पड़ने लगा कि उबाले चावल खाना चाहिये, दाल पकानी चाहिए या मास को भून कर खाना चाहिये। इसी तरह एक के बाद दूसरो आवश्यकता प्रकट होती गई। जब भोजन की आवश्यकता पूरा हो गई तो वस्त्रों की आवश्यकता हुई। जब पहनने को कपडे मिलने लगे तो उनको पेड़ के नीचे या पेड़ के ऊपर डालों पर सोना अच्छा नहीं मालूम हुआ और रहने के लिए मकान की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इन सब की तृप्ति के बाद खास-खास तरह के भोजन जैसे रसगुल्ला, कचौड़ी, पकौड़ी, हलुआ आदि की जरूरत हुई। पहनने के लिए अब उत्तम-उत्तम वस्त्र, नेकटाई, कालरदार कमीज, कुरता, पैजामा वगैरह की आवश्यकता पड़ी। इसी तरह आदमियां ने अपने को पेड़ की पत्तियों और फूलों से सजाना

छोड़ दिया और सोने-चाँदी के गहने, कड़े, हँसली, जंजीर आदि बनाकर पहनने लगे। इसके बाद रथ या बैलगाड़ी की सवारी, बल्लम, भाला, तलवार आदि संगीन इत्यादि की आवश्यकतायें भी प्रकट हुई। कहने का मतलब यह कि जैसे जैसे सभ्यता बढ़ती गई और पुरानी आवश्यकताओं की तृप्ति होती गई, वैसे वैसे नई आवश्यकतायें उनके स्थान पर आती गई यहाँ तक कि अब संख्या गिनती से परे हो गई।

आवश्यकता और उद्योग का गहरा सम्बन्ध है। जैसे-जैसे आदमी की आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं, वह उनकी तृप्ति के लिए उद्योग करता रहता है।

मनुष्य एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए उद्योग करता है। वह पूरी होते ही उसे दूसरी आवश्यकता आ घेरती है। इस प्रकार आवश्यकताओं, उद्योग तथा पूर्ति का क्रम बँधा रहता है। यह क्रम इस प्रकार है :—

आवश्यकता—उद्योग—पूर्ति—नई आवश्यकता—उद्योग।

मनुष्य बहुत से उद्योग इसलिये भी करता है कि फलस्वरूप नई आवश्यकतायें पैदा हो जाएँगी। यथा मिल मालिक नई डिजाइन निकालता है ताकि ग्राहक इसको पसन्द करने लगे। कुछ वर्षों पहले आइसक्रीम बड़े लोगों को पसन्द थी अब उत्पादकों ने उसे गाँवों तक बेचने का बीड़ा उठाया है। इस प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति अधिक लाभ हेतु काम करने वाले करते हैं।

परन्तु बहुत से मनुष्य अपने मनोरंजन या हाबी स्वरूप विज्ञान, साहित्य इत्यादि के सम्बन्ध में अध्ययन व खोज करते है और नई नई बातें ढूँढ निकालते हैं। इन नए आविष्कारों की सहायता से नई-नई वस्तुएँ बनाई जाती हैं और मनुष्य को इन वस्तुओं की भी आवश्यकता मालूम होती है।

आवश्यकता के लक्षण

आवश्यकताएँ अपरिमित है। इनका कोई अन्त नहीं। आमतौर पर आदमी को भाँति-भाँति के भोजन, तरह-तरह के कपड़ो, नई-नई किताबों और दूसरी वस्तुओं की इच्छा बनी रहती है। कहा जाता है कि जिनके पास धन है वे अपनी सारी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते है। परन्तु जरा सोचा जाय तो मालूम पड़ता है कि कोई भी धनवान् मनुष्य यह नहीं कह सकता कि उसकी सब आवश्यकतायें पूरी हो गई हैं, क्योंकि ज्योंही एक आवश्यकता की

तृप्ति होती है त्योंहि दूसरी उसके स्थान पर आ खड़ी होती है। आवश्यकता की वृद्धि होने से ही सभ्यता की भी उन्नति होती है। मनुष्य की आवश्यकतायें अपरिमित तो हैं ही लेकिन यदि यथेष्ट साधन हों तो मनुष्य की प्रत्येक आवश्यकता किसी एक समय मे पूरी की जा सकती है, उदाहरण के लिये एक भूखे आदमी को लीजिए। उसको भोजन की आवश्यकता है लेकिन उसके भोजन की भी एक सीमा है। चार पाँच रोटियो मे उसका पेट भर जाता है और उसको उसके बाद फिर रोटियों की जरूरत नहीं रहती। इसी प्रकार किसी एक आवश्यकता को पूरी करने का सब सामान रहने से किसी खास समय में उसकी तृप्ति की जा सकती है। कहा जा सकता है कि कई इच्छाएँ ऐसी हैं जिनकी पूर्ति हो ही नहीं सकती। जैसे धन की इच्छा, अधिकार की इच्छा, बड़प्पन की इच्छा इत्यादि। यह सहसा कहा भी नहीं जा सकता कितने धन, सामग्री या गहने मे कोई आदमी या औरत सन्तुष्ट होगी लेकिन इनमे से हर एक इच्छा कई इच्छाओं से मिल कर बनती हैं। ये एक इच्छा नहीं है। उदाहरण के लिए धन की इच्छा को ले लीजिये? देखने में तो यह एक इच्छा है पर इसके पीछे उस धन से मिलने वाली अनेक वस्तुओं की इच्छायें छिपी रहती है।

न मनुष्य सब आवश्यकताओं को एक साथ पूरा कर सकता है और न उसे अपनी सब आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए एक सी जल्दी रहती है। कोई आवश्यकता सबसे अधिक जरूरी है तो कोई कम। साथ ही वही आवश्यकता सबके लिए एक सी जरूरी नहीं होती रामू के लिए जो आवश्यकता सबसे अधिक जरूरी है, श्याम के लिए वह जरूरी न हो। मान लो रामू पढता है और श्याम नहीं पढ़ता। रामू को तो किताब की जरूरत है लेकिन श्याम को इसकी कोई जरूरत नहीं पडेगी। लेकिन कोई आवश्यकता ऐसी भी हो सकती है जो कि तुम्हारे लिए अभी जरूरी हो, पर मेरे लिए नहीं। हाँ, कुछ देर के बाद वह मेरे लिए भी जरूरी बन सकती है? मान लो, मैं खा चुका हूँ और तुमने अभी खाना नहीं खाया है, इसलिए तुमको अभी खाना खाने के लिए भोजन चाहिए। कुछ घटों के बाद जब मुझे फिर से भूख लगेगी तब मुझे भी भोजन की जरूरत पडेगी। इससे यह भी स्पष्ट है कि कुछ

आवश्यकतायें जैसे भूख, प्यास, दस बजे स्कूल जाना आदि; बार-बार आती हैं। उनका समय के साथ चक्र सा बँधा है।

किसी आवश्यकता की तृप्ति के लिए एक से अधिक साधन होते हैं। गरीब लोग गेहूँ की रोटी के बदले चना, ज्वार, बाजरा इत्यादि की रोटी खाते हैं। इसी से ये चीजें एक दूसरे की जगह लेने की कोशिश करते हैं। इसी तरह आजकल किसी वस्तु को एक जगह से दूसरी जगह भेजने के लिए रेलगाड़ी और मोटर लारियों में लाग-डाँट चल रही है।

जब हम किसी आवश्यकता को कभी-कभी पूरी करते हैं तो वह आवश्यकता हमारे लिए अनिवार्य बनने की कोशिश करती है। जैसे कोई मनुष्य कभी चाय पीना शुरू करे फिर बाद को उसको चाय पीने की आदत ऐसी जबरदस्त हो जाती है कि वह आसानी से उस आदत को नहीं छोड़ सकता। इसी प्रकार और आवश्यकताओं की आदत पड़ जाती है।

अक्सर हमारी वर्तमान आवश्यकताएँ भावी आवश्यकताओं से अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं। उदाहरणार्थ जब हाथ में पैसा आता है तो उसको खर्च करने की अधिक इच्छा होती है। उसको भविष्य में स्कूल की फीस देने आदि काम के लिए बचाने की इच्छा कम होती है।

आवश्यकताओं के भेद (Classification of Wants)

यह तो हम जान गए कि आवश्यकता किसे कहते हैं और उसके लक्षण क्या हैं। अब यह जानना जरूरी है कि आवश्यकताएँ कितने प्रकार की होती हैं। यों तो हम आवश्यकता के लक्षणों के मुताबिक कह सकते हैं कि कुछ जरूरतों को शीघ्र पूरा करना पड़ता है, कुछ को देर में। जैसे पहनने के लिए कपड़ा चाहे न मिले लेकिन भूख लगने पर खाना अवश्य मिलना चाहिए। कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं कि उनको पूरा करने के लिए बहुत से साधन होते हैं, जैसे प्यास के लिए हम पानी, शरबत मठा या सोडा लेमन पी सकते हैं। ठीक. लेकिन इस तरह के तो शायद सैकड़ों विभाग बनाए जायँ तब भी काम न चलेगा। सबसे अच्छा तरीका वह है जिसमें आवश्यकताओं को तीन हिस्सों में बाँटते हैं; आवश्यक आराम हेतु और विलासिता हेतु। पहले में तो वे आवश्यकतायें आती हैं जिनको हम आवश्यक (Necessayr) समझते

हैं। अवा-अपाहिज कैसा भी मनुष्य क्यों न हो वह अपने शरीर को नाश होने से बचाने की हमेशा कोशिश करता है। पेट भरने के लिए सब को भोजन और पीने को पानी चाहिए। पहनने के लिए कपडे की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ पर एक बात नोट करने लायक है। राम साधारण भोजन करता है, फटा-पुराना कपड़ा पहनता है और टूटी-फूटी झोपड़ी मे रहता है। इसके विपरीत श्याम अच्छा अनाज, दूध, फल इत्यादि खाता है। वह साफ-सुथरे कपडे पहनता है और हवादार मकान में रहता है। एक तरह मे राम और श्याम दोनों ही जीवन रक्षा के लिए जरूरी वस्तुओं का उपभोग करते हैं, परन्तु कुछ वर्षों में राम कमजोर और रोगी बन जायगा और श्याम मजबूत व तगड़ा। कहने का मतलब यह है कि आवश्यक वस्तुओं मे से कुछ तो केवल मनुष्य को जिन्दा बनाये रखती हैं और कुछ आदमी की जीवन-रक्षा के अलावा तन्दुरुस्ती भी प्रदान करती हैं। अत आवश्यक वस्तुओं के दो वर्ग हो गये—जीवन रक्षा की वस्तुएँ (Necessaris for existence) और निपुणतादायक वस्तुएँ (Necessaries for efficiency) इनके अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग होता है कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुओं का। इसके अन्तर्गत उन चीजों का शुमार करते हैं जो मनुष्य की आदतवश जरूरी हो जाती हैं, जैसे किसान तम्बाकू पीते हैं और अब शहर में लोग चाय पीते हैं। इनके बिना वे जिन्दा रह सकते हैं परन्तु पीते-पीते आदत ऐसी हो गई है कि उनके बिना काम नहीं चलता। अत उन्हें कृत्रिम आवश्यकता की वस्तुओं मे गिनते हैं।

आराम की वस्तुएँ (Comforts)

जिन चीजों की मनुष्य को आराम करने के लिये जरूरत मालूम पड़ती है उन्हें आराम की वस्तुएँ कहते हैं। आराम इस प्रकार की कृत्रिम आवश्यकता को कहते हैं। आराम की वस्तुओं (Comforts) से शरीर को सुख मिलता है और काम करने की ताकत भी बढती है। लेकिन इन पर जितना खर्च किया जाता है उस हिसाब से कार्य-कुशलता नहीं बढती। जैसे किसी गरीब आदमी के लिये धोती, कुर्ता और चप्पल उसकी कार्य कुशलता बढाते हैं लेकिन अगर वह तिगुना व्यय करके बढिया महीन धोती, रेशमी कपडे की कमीज व उम्दा जूता पहने तो उसकी कार्य कुशलता तिगुनी न हो जायगी। ये तथा गरीब किसान के लिए साइ-

किल, घड़ी, पक्का मकान इत्यादि आराम की सामग्रियों में शामिल किये जाते हैं।

अन्त में उन आवश्यकताओं की बारी आती है जिनको पूरा करने के लिये मनुष्य **विलासिता की वस्तुओं** (Luxuries) का उपभोग करता है। इन चीजों पर जो रकम खर्च की जाती है उससे बहुत कम कार्य-कुशलता बढ़ने की जगह घटने लगती है। उदाहरणस्वरूप खूब बढ़िया आलीशान मकान, बहुत कीमती भड़कीली पोशाक व विलायती ह्विसकी और अंगूरी शराब इत्यादि गिनाई जा सकती हैं। विलासिता की वस्तुओं का सेवन करने से आदमी को आलस्य घेर लेता है और काम करने को जी नहीं चाहता। शराब इत्यादि के सेवन से तो आदमी बिलकुल कमजोर, नाकाम और रोगी बन जाता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आवश्यकताओं के ये भेद एक दूसरे से भिन्न हैं। दर असल इनका भेद आदमी की परिस्थिति के अनुसार समझा जाता है। मनुष्यों की प्रकृति आदत, फैशन, स्थिति आदि पर आवश्यकताओं के भेद में फर्क पड़ जाता है। एक डाक्टर के लिये मोटरकार आवश्यक मालूम पड़ती है क्योंकि उसकी सहायता से वह कम समय में बहुत से मरीजों को देख सकता है, लेकिन कालेज के प्रोफेसर के लिये मोटरकार आराम या विलासिता की ही वस्तु समझी जावेगी। अमीर के लिये महल, बिजली के लैम्प इत्यादि आराम की वस्तुएँ समझी जावेंगी। सायबेरिया में मोटे ऊनी कपड़े आवश्यक हैं परन्तु भारत में आराम देने वाले हैं।

आवश्यकता की पूर्ति (Satisfaction of Wants)

अब प्रश्न उठता है कि आवश्यकता पूरी किस प्रकार की जाती है। यह तो सब को मालूम है कि हर आदमी पहले अपने खाने पीने की वस्तुएँ खरीदता है। अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार भी यही नतीजा निकलता है कि मनुष्य अधिकतर जीवन-रक्षक वस्तुओं का उपभोग करें और आराम व विलासिता की चीजों का उपभोग करने में रुपया-पैसा की फिजूलखर्ची न करे। परन्तु इस बात पर हम बाद में विचार करेंगे, यहाँ पर पहले यह जानना आवश्यक है कि **बहुत सी आवश्यकताओं को तो आदमी सीधे-सीधे पूरा कर लेता है।** मान लिया आपको पानी पीना है, आप नदी या तालाब पर जाकर पानी पी लेते हैं। अगर आपको जाड़े के दिन में नहाने के लिये पानी गरम करना है

तो आप बटलोई मे पानी भर कर आग पर चढा देते है। जब कोई आवश्य-कता सीधे-सीधे पूरी की जा सकती है तो किसी सम्पत्ति का उपभोग सीधे-सीधे किया जाता है। जैसे यहाँ पर बटलोई मे काम लिया गया था। परन्तु अधि-कतर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये रुपये-पैसे कमाए जाते हैं और तब उन रुपयो से आवश्यक वस्तुएँ मोल ली जाती है। बढई हल, कुर्सी मेज आदि चीजे बनाकर बेचता है, लोहार फाल खुपा, फावड़ा वगैरह लोहे के सामान बनाता है। वस्तुओ को बेचने से जो पैसा बढई या लोहार को मिलते है उनसे वे अपनी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिये जरूरी वस्तुयें खरीदते है। कहने का मतलब यह है कि आवश्यकताओं को पूरा करने के प्रश्न की जगह हमे यह सोचनी चाहिये कि कोई मनुष्य अपनी आमदनी के रुपये पैसों को किस प्रकार खर्च करता है तथा खर्च करने का कौन सा तरीका सबसे उत्तम होगा।

आय-व्यय (Income and Expenditure)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जीवन रक्षक पदार्थ तो सब लोगों को सेवन करना चाहिये। इन पर किया गया खर्च हमेशा न्याययुक्त कहा जाता है। आराम की वस्तुओ पर किया गया खर्च भी बुरा नहीं है क्योंकि इनसे भी कार्य-कुशलता बढ़ती है। लेकिन ऐश आराम और विलासिता की वस्तुओं पर तथा मादक वस्तुओ पर किया गया खर्च अकसर फिजूलखर्ची मे समझा जाता है। लेकिन सबसे बडी कठिनाई तो यह है कि आमतौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन-सी वस्तु जीवन रक्षक है, कौन सी आराम की और कौन-सी चीज विलासिता की है। क्योंकि मनुष्य की प्रकृति, आदत, स्थिति, फैशन व समय के मुताबिक एक वस्तु आवश्यक भी हो सकती है और आराम व विला-सिता की सामग्री भी बन सकती है। अगर कोई किसान एक घड़ी खरीदे तो उसका यह खर्च फिजूलखर्ची में गिना जायगा। लेकिन यदि एक विद्यार्थी घड़ी खरीदता है तो शायद उसकी खरीद न्यायपूर्ण मानी जा सकती है। हमारा गरीब सीतल अगर अपने और बच्चों को भूखा रखकर या कर्ज लेकर घड़ी खरीदता है तो वह जरूर विलासिता की चीज खरीदता है। लेकिन अगर कोई अमीर मनुष्य ऐसा करे तो वह फिजूलखर्ची नहीं कहलायेगी। क्योंकि उसके पास इतना रुपया रहता है कि वह अपनी जरूरी आवश्यकताओ को अच्छी तरह पूरी कर सकता है।

कहा जाता है कि जीवन-रक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएँ गिनी गिनाई हैं, और यदि उन्हीं को पूरा करने पर अधिक जोर डाला जायगा तो मनुष्य को अधिक उद्योग नहीं करना पडेगा और मनुष्य जाति असभ्य बन जायगी। अधिक सभ्य बनाने के लिये यह आवश्यक है कि हम नई बातों का आविष्कार करे और नई नई वस्तुएँ बनावें जैसे रेडियो, टेलीफोन, हवाई जहाज। ठीक है, लेकिन हमारे गरीब भारत के लिये समय देखकर ही काम करना चाहिये। हमारे किसानो की क्या हालत है? क्या उन्हें जीवन रक्षा के पदार्थ प्राप्त हैं? अन्दाज लगाया गया है कि जेल के अन्दर कैदियों को जो भोजन मिलता है वह भी बाहर के अधिकाश मनुष्यों को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में विलासिता की वस्तुओं पर किया गया खर्च बिलकुल फिजूल है। इसके अलावा हम बता चुके हैं कि हमारे मजदूर और छोटे शिल्पकार अपनी आमदनी का अधिकाश भाग तम्बाकू, शराब, अफीम आदि मादक वस्तुओं के सेवन में उड़ा देते हैं। ऐसी हालत मे हमारे बच्चों को कहाँ से घी दूध मिल सकता है जिससे वे भविष्य में तन्दुरुस्त और कार्य-कुशल बनें। तो फिर धन को किस प्रकार से खर्च करना चाहिये? उत्तर है इस तरह से जिससे न केवल हमको अधिक से अधिक सुख मिले बल्कि जिससे देश में रहने वाले ज्यादा जनसमूह को जीवन-रक्षक वस्तुएँ मिलें। जब तक यह हालत न हो जाय तब तक आराम व विलासिता की वस्तुओ को खरीदना फिजूलखर्ची मे गिना जाना चाहिये। इसके बाद जब इन चीजों की भी बारी आवे तब ऐसी वस्तुओं का उपभोग न करना चाहिये जिससे थोड़ी देर के आनद के सिवा और कुछ न मिले, जैसे नाच, खेल, तमाशा, आतिशबाजी। इनमे तो जो सामग्री उसके बनाने मे लगाई जाती है वह मिनटो में जलकर खाक हो जाती है। अर्थात् देश का उतना धन नष्ट हो जाता है।

व्यय के सिद्धान्त

तो फिर धन को किस प्रकार व्यय करना चाहिए? उत्तर है, इस तरह कि न केवल हमको अधिक से अधिक सुख मिले बल्कि जिससे देश में रहने वाले ज्यादा से ज्यादा जन समूह को जीवन-रक्षक वस्तुएँ मिले। जब तक ऐसा न हो, आराम और विलासिता की वस्तुओं को खरीदना फिजूलखर्ची है। परन्तु किसी

समय भी ऐसी वस्तुओं का उपयोग वाञ्छनीय नहीं है जिनसे क्षणिक आनन्द मिले और देश का धन बर्बाद हो, जैसे आतिशबाजी।

उपयुक्त व्यय के लिए यह आवश्यक है कि अपनी आवश्यकताओं का पूरा ज्ञान हो तथा उनको तुलनात्मक दृष्टि से पहचानने की भी शक्ति हो। आवश्यकता पूर्ति के कई साधन (वस्तुएँ) होते हैं—कोई टिकाऊ, कोई देखने में भड़कीला, कोई दर असल उपयोगी। व्यय करने वाले को वस्तुओं के पहचानने की भी शक्ति होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे यह मालूम हो कि कौन वस्तु कहाँ अच्छी और सस्ते दाम में मिलती है।

बचत (Saving)

एक बात और है। क्या मनुष्य को अपनी आमदनी का एक भाग भविष्य के लिए निकाल कर अलग नहीं रख देना चाहिए? कौन जानता है कि जो मनुष्य आज सम्पन्नशाली है वह भविष्य मे भी वैसा बना रहेगा? कितनी बार अचानक ऐसे कारण आकर उपस्थित हो जाते है कि लखपती मनुष्य भी रोटियो को मोहताज हो जाता है। इसके अलावा जब आदमी बुड्ढा हो जाता है या चारपाई पकड़ लेता है तब अपनी जिन्दगी को पुराने ही तरीके से बिताने के लिये उसे पहले से रुपये बचाने पड़ते हैं। इसके अलावा बहुत से सज्जन अपने पुत्रों को पढाकर कमाने योग्य बनाना चाहते है और पढ़ाई के लिये उन्हे पैसा सञ्चय करना पड़ता है। बहुत से मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद लड़कों को कुछ धन-दौलत छोड़ जाना चाहते है। कुछ आदमी बाद में तीर्थ-यात्रा करना चाहते हैं। कितने तो दान-पुण्य के लिये धन इकट्ठा करना चाहते हैं। इन सब बातो के लिए धन इकट्ठा करना अर्थात् बचाना पड़ता है। बचाई हुई रकम बचत कहलाती है।

बचत कितनी करनी चाहिये और कैसे? इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य यह बात है कि भविष्य के महत्व के बारे मे आदमी-आदमी की राय मे फर्क रहता है। कोई भविष्य को मानते ही नही। उनका उद्देश्य खा-चाट सब बराबर कर देना रहता है, क्योंकि कौन जानता है कि कब यमदेव का बुलावा आ पहुँचे। ऐसे लोग अपनी आय का अधिकाश भाग थोडी देर तक मजा देने वाली चीजों पर खर्च करते हैं। लेकिन जो दूरदर्शी होते हैं वे ऐसे खर्च को ताक पर रखकर रुपये को भविष्य के लिए बचा लेते हैं, इसके अतिरिक्त हम

पहले ही बता चुके हैं कि बिना बचत किए पूँजी नहीं बनती। अगर स्वय या बच्चों को कोई व्यापार या रोजगार कराना है तो बचत करना अनिवार्य है।

परन्तु बचाना कैसे चाहिये? क्या यह सबसे अच्छा होगा कि रुपये को या उन रुपयों से सोना-चाँदी मोल लेकर उनको धरती में गाड़ देवें? हमारे भारत में गहनों के रूप में बहुत सा धन बेकार पड़ा है। और चूँकि यहाँ पर हर एक आदमी की इतनी भी आमदनी नहीं है कि वह जीवन रक्षक पदार्थ भी प्राप्त कर सके, इस बात की बड़ी जरूरत है कि बचत की रकम ऐसे काम में लगाई जाय, जिससे देश की पूँजी बढ़े। लेकिन वह तो बहुत दूर की बात है। आप यों ही देखिये। बचत के रुपयों को गहने के रूप में रखने से आपको उस रकम पर कोई सूद तक नहीं मिलता। इस तरह से रकम रखने और गाड़ कर रुपया-पैसा रखने में कोई अधिक फर्क नहीं मालूम पड़ता और यह साफ है कि यह तरीका ठीक नहीं। परन्तु अगर गहना बनवाने के नाम पर ही लोग बचत करने को तैयार हो तो यह तरीका अपनाना वाञ्छनीय होगा। परन्तु यह बचत पूँजी का रूप तभी लेगी जब सरकार सोना-चाँदी सप्लाई करे। अस्तु सब से अच्छा तरीका तो यह होगा कि जैसे-जैसे बचत होती जाय वह डाक-घर या किसी अच्छे बैंक के सेविंग बैंक के हिसाब में जमा कर दी जाय। इससे कुछ सूद मिलने के अलावा रुपया सुरक्षित रहता है। दूसरा तरीका जमीन खरीदना या मकान बनवाना है। इससे भी रकम सुरक्षित रहती है और आमदनी अच्छी होती है। कुछ मनुष्य अपने बुढापे के लिये अथवा अपने सहारे रहने वाले आदमियों को मदद करने के लिये जीवन बीमा करवा लेते हैं। इसके लिये कई कई साल तक हर साल एक निश्चित रकम बीमा कम्पनी को देनी पड़ती है। अवधि पर उसके आश्रितों को मिल जाती है।

कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जिसे अन्न और कपडे लत्ते का दुःख नहीं है अपनी आय में से कम से कम दसवाँ हिस्सा हर साल बचाने का दृढ प्रयत्न करना चाहिये। यदि वह ऐसा करने में सफल होगा तो इस बचत की वजह से मुसीबत के बुरे दिनों में कर्जदार होने से बच जायगा और हमेशा सुखी बना रहेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—उपभोग की परिभाषा लिखिये और उसका महत्व समझाइये।

२—आवश्यकताओं की विशेषताएँ लिखिए और उन पर नियन्त्रण की जरूरत समझाइये।

३—आवश्यक वस्तुओं के भेद भारतीय किसान के जीवन से लिए उदाहरण सहित समझाइये। (१९४२)

४—आवश्यकता और विलासिता की वस्तुओं के भेद बतलाइये। किसी किसान की विलासिता की वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये। (१९४७)

५—मादक वस्तुओं के उपभोग से क्या हानियाँ होती हैं?

६—गाँव में तम्बाकू का उपभोग बहुत होता है। क्या आप इसे अच्छा समझते हैं?

७—कुछ स्थानों में चाय का उपभोग बढ़ रहा है। क्या इसका प्रचार करना आवश्यक है?

८—विलासिता और कृत्रिम आवश्यकता में क्या भिन्नता है? उदाहरण सहित समझाइए। (१९४९)

९—सिद्ध कीजिये कि 'सादा जीवन और उच्च विचार' ही आर्थिक दृष्टि से भी सर्वोत्तम ध्येय है।

१०—ग्रामीणों की फिजूल खर्ची के कुछ उदाहरण दीजिए। इसको कैसे रोका जा सकता है? (१९५०)

११—खर्च में बचत की आवश्यकता समझाइये। साधारण परिस्थिति के व्यक्तियों को कम से कम प्रतिमास कितनी बचत करनी चाहिए?

१२—आर्थिक दृष्टि से दान-धर्म की सर्वोत्तम प्रणाली कौन सी है? भारत में इस प्रणाली के अनुसार दान कहाँ तक होता है?

१३—अपनी बचत के धन से सोने-चाँदी के गहना बनवा लेना कहाँ तक उचित है?

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

रहन-सहन का दर्जा (Standard of Living)

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित होती है। फिर भी आदमी अपनी आमदनी, अपनी दशा और परिस्थिति के अनुसार कुछ वस्तुओं का उपभोग करने में लगाता है। इन चीजों के उपभोग का जो ढर्रा पड़ जाता है वह बहुत कम बदलता है और यदि बदलता है तो बहुत धीरे-धीरे। जितनी आमदनी होगी उतना ही खर्च भी किया जा सकेगा। आमतौर पर एक-सी आमदनी वाले मनुष्य या परिवार करीब-करीब एक ही समान रहते हैं। अर्थात् उनके रहन-सहन का दर्जा एक-सा ही होता है, और जैसे-जैसे आमदनी में कमी बेशी होगी वैसे ही वैसे रहन सहन के दर्जों में भिन्नता पाई जाती है। यों तो एक तरह से प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक परिवार एक दूसरे से सभी बातों में कभी भी मिलता-जुलता नहीं है, इसलिये जितने परिवार हैं, उतने ही रहन-सहन के दर्जे हो सकते हैं। लेकिन साधारणतः रहन-सहन के दर्जे चार भागों में बाँटे जाते हैं। पहले दर्जे में वे लोग शामिल रहते हैं जिन्हें जीवन-रक्षक पदार्थ भी प्राप्त नहीं होते तथा जिन्हें कई-कई दिन तक उपवास करना पड़ता है। इस दर्जे के मनुष्य भीख माँगते हैं और कर्ज भी लेते हैं। इन्हें दरिद्र कहा जाय तो गलत न होगा। हमारे गरीब मजदूर व किसान इसी दर्जे में रक्खे जा सकते हैं। दूसरा दर्जा उन लोगों का है जिन्हें जीवन-रक्षा सम्बन्धी साधारण पदार्थ ही प्राप्त हो सकते हैं। दोनों वक्त रूखा-सूखा भोजन खाना, फटा-पुराना कपड़ा पहनना व टूटे-फूटे मकान में रहना ही इन लोगों का काम रहता है। तीसरे दर्जे वाले मनुष्यों को जीवन रक्षक वस्तुओं के अलावा आराम की भी वस्तुएँ मिल जाती हैं। दफ्तर में काम करने वाले हमारे हेड-

क्लर्क साहब खूब अच्छा खाना खाते हैं, साफ-सुथरा कपड़ा पहनते हैं तथा खुले हुए हवादार मकान में रहते हैं। ये आराम की वस्तुओं का भी सेवन करते हैं। चौथे दर्जे में रईस और अमीर आदमी आते हैं, जिनके पास धन की कमी नहीं रहती। जो वे चाहें खरीद सकते हैं। उनका जीवन पूरी तरह से विलासिता से पूर्ण होता है, परन्तु यह कोई जरूरी नहीं कि जो लखपती हैं उसके रहन-सहन का दर्जा सबसे ऊँचा हो। अगर रईस मनुष्य का स्वास्थ्य खराब रहता है और उसे कोई चीज नहीं पचती, तो उसका रहन-सहन सुख देने लायक नहीं होगा। इसी तरह के आदमियों को ऐसा रोग पकड़ लेता है कि उनका असर उनके रहन-सहन पर बहुत पड़ता है। मेवालाल की आँखें खराब हों, हीरा बहरा हो, प्रेम की आँतों में कीडे पड़ गये हों तो ये लोग उपभोग की चीजों से पूरा-पूरा सतोप और आनन्द नहीं उठा सकते। इस तरह बहुत से तन्दुरुस्त और तगड़े आदमी शराब, ताड़ी वगैरह पीकर या अनाप-शनाप खाकर या बुरी सोहबत में पड़ जाने के कारण अपने को बरबाद कर देते हैं। फलस्वरूप उनका रहन सहन का दर्जा गिर जाता है।

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

ऊपर बताई बातें हमारे भारत पर कुछ लागू होती हैं। यहाँ पर पहले तो आमदनी की कमी है। अन्दाजा लगाया गया है कि भारत के राजा-महाराजा, सेठ-साहुकार, रईस वगैरह को मिलाकर भी, हर एक भारतीय की दैनिक आमदनी का औसत आठ-दस आने ही पड़ता है। इसके अलावा उपभोग की भी कमी मालूम पड़ती है। बहुधा यह कहा जाता है कि भारतवासियों के रहन-सहन का दर्जा बढ़ता जा रहा है, क्योंकि पहले यहाँ आराम की जितनी सामग्री आती थी इनसे कहीं अधिक वस्तुएँ आजकल आती हैं। देहातों में पक्के मकान बनते जाते हैं। साइकिल का प्रचार बहुत अधिक हो गया है। चाय और सिगरेट की खपत अधिक हो गई है, इत्यादि। परन्तु इस तरह कहने वाले एक बात भूल जाते हैं कि यह मनुष्य की स्वाभाविक आदत है कि वह भोग-विलास के पदार्थ का सेवन करना चाहता है और यदि कोई मनुष्य जीवन-रक्षक वस्तुओं को खाने के बजाय शौकीनी करने लग जाय तो क्या इसके यह

मतलब होते हैं कि उनका रहन-सहन ऊँचा हो गया। यदि आप ख्याल करिये तो आपको अपने साथियों में ही कितने ऐसे मिल जायेंगे जिनके घर में भूँजी भाग न होगी पर स्कूल खूब ठाट-बाट से आते हैं। आप अपने घर के बूढे बाबा से पूछिये तो वे आपको बतलावेंगे कि भारत का पतन हो रहा है। इसका कारण पूछने पर वे शायद आपको यही जवाब देंगे कि जहाँ पहले पौष्टिक पदार्थ का सेवन करते थे और सदैव व्यायाम का ख्याल करते थे, वहाँ आज कल ऐसी बातों पर अधिक खर्च किया जाता है जिससे शरीर को भी नुकसान पहुँचता है और मानसिक हानि भी होती है।

रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने का उपाय

अतएव यह बहुत जरूरी है कि भारतवासियों का रहन-सहन का दर्जा ऊँचा किया जाय। परन्तु हमारा मतलब यह नहीं कि केवल भोग विलास की वस्तुओं के उपभोग में वृद्धि हो या आराम देने वाले पदार्थों का उपभोग बहुत अधिक बढ जाय। दस बीस फी सदी मनुष्यों के रहन-सहन के दर्जे के ऊँचा होने से देश के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की है कि पहले तो हर एक आदमी को जीवन-रक्षक वस्तुए तथा वे पदार्थ मिल जायें जिनसे वह कार्य-कुशल भी बना रहे। देश के सब आदमियों का जीवन सुखमय होना चाहिये। ऐसे मनुष्य बिल्कुल न बचें जो अपने जीवन रक्षक पदार्थों के लिए ही लालायित हों। हमारे गिरे हुये दर्जे को ऊँचा करने के लिए यह आवश्यक है कि हमें अच्छा तथा स्वास्थ्यप्रद भोजन भर पेट मिले। भोजन अच्छा होने के लिए यह जरूरी है कि खाना साफ बर्तनों में पकाया जाय। भोजन के बाद कपडे की बारी आती है। हम जानते हैं कि गरमी, जाड़ा बरसात इत्यादि का शरीर पर बहुत असर पड़ता है। अगर आप जाडे में रुई की मिर्जई न पहनेंगे अथवा कम्बल न ओढेंगे तो आपको ठंड लग जायगी। हर समय गन्दे कपडे पहने रहने से तरह-तरह की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। इसी प्रकार रहने के मकान साफ जगह पर बने होने चाहिये। उसके कमरों में रोशनी, सफाई, पानी इत्यादि का इन्तजाम होना चाहिये। एक परिवार के रहने के लिये मकान मे, जिसमें पाँच छः आदमी हों, कम से कम

चार पाँच कमरे होने चाहिये। तन्दुरुस्ती के लिए कसरत, खेल कूद, नींद भी बहुत आवश्यक है और थक जाने पर किसी प्रकार के मनोरञ्जन का इतजाम रहना चाहिये।

भारतवासियों के रहन-सहन के दर्जे का ऊँचा करने के लिये यह जरूरी है कि शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाय। शिक्षा प्राप्त मनुष्य अधिक कमा सकते हैं। इसके अलावा वे उपयोगी वस्तुओ का उपभोग इस प्रकार से करते हैं कि उनसे अधिक आराम मिलता है। इसके अलावा ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये जिससे भारत में सतान वृद्धि कम होवे। इस समय भारत की आबादी सैंतीस करोड़ के लगभग है। यदि जनसख्या घट जाय तो हमको उद्योग के लिए अधिक सामग्रियाँ मिलने लग जायँ। बहुधा देखा गया है कि दूसरों को देखकर आदमी उसी की तरह रहने का प्रयत्न करता है। इससे रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो जाता है। यात्रा करने से हमको बाहर का अनुभव होता है और हम अच्छी वस्तुओं का उपभोग करने लगते हैं। इन सब बातों के अलावा इस बात की कोशिश होनी चाहिये जिससे हमारे किसानों का कर्ज किसी प्रकार कम हो। हमारे किसान भाई कर्ज मे पैदा होते है, कर्ज मे पलते हैं और कर्ज को छोड़कर ही मर जाते हैं। परन्तु ये सब काम उस समय तक नहीं हो सकते जब तक कि हमारी सरकार हमारी मदद को न आवे। सरकार की ओर से स्कूल, लाइब्रेरी, दवाखाने, पार्क इत्यादि का प्रबन्ध होना चाहिये। गरीबो को मुफ्त में ही प्रारम्भिक शिक्षा देने का इन्तजाम आवश्यक है। सरकार चाहे तो किसानों का कर्ज घट जाये। इसके अलावा सरकार उद्योग-धधो की मदद दे सकती है। उद्योग-धंधों की उन्नति से बेकारी दूर हो सकती है और रहन सहन का दर्जा बढ सकता है। इसके सिवाय हर एक भारतीय को चिकित्सा सुलभ होनी चाहिए।

पारिवारिक बजट (Family Budget)

अब तक जो कुछ कहा गया है उसकी जड़ मनुष्य के रहन सहन के दर्जे मे है। उसको भली-भाँति समझने के लिए हमको यह पता लगाना चाहिये कि कौन व्यक्ति कितनी आमदनी करता है तथा वह उस धन को किस प्रकार खर्च करता है। रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए

मनुष्य के आय व्यय का अध्ययन करना अनिवार्य है। अंग्रेजी में आय व्यय सम्बन्धी लेखे को बजट कहते हैं। इस शब्द का अब हिन्दी में भी प्रयोग होने लग गया है। किसी मनुष्य के परिवार के बजट के अन्दर यह देखा जाता है कि उस परिवार में कितने मनुष्य हैं, कितने कमाई करते हैं, वे कैसे मकान में रहते हैं, उनकी उम्र, योग्यता, शिक्षा आदि क्या है? परिवार की होने वाली आय क्या है? यह किस प्रकार खर्च की जाती है? अन्त में कुछ बचत भी होती है अथवा परिवार वालों को कर्ज लेना पड़ता है? रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए व्यय सम्बन्धी आँकड़ों से बड़ी सहायता मिलती है।

पारिवारिक बजट का महत्त्व केवल यही नहीं है कि इससे रहन सहन का दर्जा निश्चित होता है। इसका अन्य महत्त्व भी है। उनमें से दो एक का उल्लेख किया जाता है। प्रथम, पारिवारिक बजट को ठीक से इकट्ठा करने पर यह मालूम किया जा सकता है कि पारिवारिक व्यय अनावश्यक कामों में तो नहीं हो रहा है। उदाहरणार्थ आजकल के जमाने में यह सम्भव है कि किसी परिवार में अच्छा भोजन न किया जाता हो और बीमारी पर अधिक खर्च होता हो। इन बात का पता लग जाने से सरकार शिक्षा द्वारा जनता की आदत सुधारने का प्रयत्न कर सकती है। द्वितीय, यदि पारिवारिक बजट ऐसा हो कि उससे मालूम पड़ जाय कि पारिवारिक आय किन-किन वस्तुओं की खरीद में खर्च की गई तो सरकार तथा उत्पादक उन वस्तुओं की उत्पत्ति करने का प्रयत्न करेंगे। भारत की आर्थिक उन्नति हो रही है। भाँति-भाँति के उद्योग-धन्धे खोले जा रहे हैं। यह प्रश्न उठता है कि कौन से उद्योग धन्धे खोले जायँ? किस वस्तु की उत्पत्ति कहाँ तक बढ़ाई जाय? यदि पारिवारिक बजट के उपयुक्त आँकडे प्राप्त हो तो इन प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।

एँजिल का नियम

विविध व्यय सम्बन्धी अंकों के अध्ययन करने से यह निश्चय हुआ है कि जिस दर से एक कुटुम्ब की आमदनी बढ़ती है, भोजन का व्यय उसी दर से नहीं बढ़ता। लेकिन वस्त्र, मकान-भाडे का खर्च उसी दर से बढ़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन की सामग्री के व्यय की वृद्धि आमदनी की वृद्धि की दर से अधिक बढ़ जाता है। जर्मन निवासी डाक्टर एँजिल हजारों

परिवार के बजट को देखकर इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि कम आमदनी वाले परिवार का अधिकांश भाग जीवन-निर्वाह में खर्च हो जाता है। लेकिन वस्त्र पर प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च लगभग बराबर होता है अर्थात् यदि पचास रुपये आमदनी वाले के वस्त्र में करीब आठ रुपये खर्च होते हैं तो सौ रुपये आमदनी वाले का सोलह, और हजार रुपये आमदनी वाले का करीब एक सौ आठ रुपया खर्च होता है। इसी तरह किराये में, रोशनी और ईंधन में भी प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च बराबर होता है। लेकिन यह बात जरूर है कि अधिक आमदनी वाले परिवार की शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा इत्यादि में प्रतिशत खर्च बढ़ जाता है।

किसान का खर्च

ऊपर कही बातों को और स्पष्ट करने के लिये दो तीन परिवार के बजट का विवेचन करना आवश्यक मालूम पड़ता है। और चूँकि भारत कृषि-प्रधान देश है इसलिये पहले किसानों की ओर ही दृष्टि डालना उचित जान पड़ता है। यों तो आप को सुखी किसान भी शायद कहीं-कहीं मिल जायँगे। हमको उनसे अधिक मतलब नहीं, क्योंकि उनकी संख्या बहुत कम है। अस्तु, भारतीय किसान के रहन-सहन का दर्जा बिल्कुल नीचा है। उसके कुटुम्ब की मासिक आमदनी पन्द्रह रुपये से कम ही रहती है। यह पता लगाया जाता है कि उत्तर प्रदेश में किसानों की वार्षिक आमदनी सत्तर से नब्बे रुपये के बीच रहती है। इसीसे हम इनके रहन सहन के दर्जे का अनुमान लगा सकते हैं। इन बेचारों को साल भर हमेशा दोनों वक्त रूखा-सूखा भोजन भी नहीं मिलता। पहनने का कपड़ा बहुत ही मामूली, फटा और मैला रहता है। अक्सर ये लोग एक साधारण छप्पर में ही गुजर करते हैं अधिकतर यह पाया गया है कि जो परिवार बहुत गरीब होता है, उसमें जनसंख्या बहुत अधिक होती है। इन गरीबों के बच्चे केवल एक कपड़ा पहिनते या कभी कभी नंगे ही घूमा करते हैं। इन बच्चों को दोनों वक्त दूध, घी या अच्छा खाना तक नहीं मिलता है। उनकी पढ़ाई लिखाई की तो कोई परवाह ही नहीं करता। भारत में शायद ही कोई किसान ऐसा होगा जो कर्जदार न हो। किसी का तो यह मत है कि वह कर्ज लेकर पृथ्वी पर आता है, जिन्दगी भर महाजन के यहाँ रुपया भरता है और अन्त में कर्ज छोड़ कर ही मर जाता है। बिना कर्ज के तो इनका काम

ही नहीं चलता। बीज, पशु, औजार या ब्याह शादी को तो छोड़ दीजिये, बेचारा किसान अपने रोज के खर्च के लिए भी कर्ज लेता है। उसको सरकारी लगान भी देना पड़ता है। इसी में उसकी आमदनी का काफी बड़ा हिस्सा निकल जाता है। फिर कर्ज की रक़म को कौन कहे, वह उसका ब्याज तक चुका नहीं पाता।

नीचे एक गरीब और एक मामूली किसान के गत महायुद्ध के पहिले के सालाना पारिवारिक खर्च का ब्योरा दिखाया गया है :—

	मामूली किसान का खर्च (रुपये में)	गरीब किसान का खर्च (रुपये में)	आजकल मामूली किसान का खर्च (रुपये मे)
भोजन	६८	४६	७७६
कपड़ा आदि	२१	१३	१२५
घर	१३	—	६
रोशनी व लकड़ी	५	५	४०
दवा	१	२	८
शिक्षा	४	—	४
यात्रा दानादि	१२	७	११६
	१२४	७३	१०८१*

गरीब किसान की वार्षिक आमदनी तिहत्तर रुपये थी। मामूली किसान की आमदनी एक सो चोबीस रुपये थी। गरीब किसान का दवा पर अधिक खर्च हुआ। मामूली किसान ने तो शिक्षा पर चार रुपये खर्च किये परन्तु गरीब किसान ने कुछ नहीं खर्च किया। गरीब किसान की आमदनी का ६०% अर्थात् लगभग ३/५ वाँ भाग भोजन पर खर्च हुआ, परन्तु मामूली किसान ने केवल लगभग आधी आमदनी भोजन पर खर्च की। दोनों परिवारों की आमदनी का लगभग १६% अर्थात् छठा भाग कपड़े पर खर्च हुआ। दान, धर्म, यात्रादि पर भी दोनों परिवारों ने अपनी आमदनी का लगभग वही भाग अर्थात् ६% खर्च किया। शिक्षा, दवा आदि की अपेक्षा दान, धर्म आदि पर अधिक खर्च हुआ। इससे भारतीय किसानों की धार्मिक प्रवृत्ति का ज्ञान होता है।

*भारत सरकार के नेशनल सेम्पिल सर्वे, ११४९-५० के आधार पर।

आजकल किसान के आय-व्यय बढ गए हैं परन्तु शिक्षा पर उसका व्यय पूर्ववत् बना है। उसका ७०% व्यय अब भोजन पर होता है।

गाँव के मजदूर और उनका खर्च

अतएव यह तो सिद्ध हो गया कि भारतीय किसान बड़े कष्ट और श्रम से अपना जीवन निर्वाह करता है। किसान का दूसरा भाई गाँव का मजदूर। कुछ सज्जनो का कहना है कि इनकी हालत तो किसानो से भी खराब है। किसान इन लोगों पर जमींदारी हुक्म चलाते हैं अर्थात् जैसे जमींदार किसानों से बेगार लेते हैं तथा उन्हे कष्ट पहुँचाते हैं वैसे ही किसान लोग इन मजदूरो के साथ व्यवहार करते हैं। लेकिन ध्यान देन की बात तो यह है कि इससे और मजदूर के पारिवारिक व्यय से विशेष सम्बन्ध नहीं है। पर यह जरूर है कि इससे मजदूरों की आय कम हो जाती है। मजदूरों और किसानों के बीच केवल एक फर्क पाया जाता है और वह यह कि किसानों की आय प्रकृति के ऊपर निर्भर रहती है। लेकिन मजदूरों की मजदूरी कुछ न कुछ नियमित होती है। परन्तु सोचने लायक बात तो यह है कि अक्सर मजदूरों का हिस्सा बाँध दिया जाता है। किसान के पास जो अनाज रहता है वह स्वयं उसके परिवार के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसी मे से उसको मजदूर की मजदूरी देनी पड़ती है। अतएव मजदूर की मजदूरी के रूप मे वह कम से कम अनाज देने का प्रयत्न करता है। ऐसी दशा मे मजदूर तो सचमुच किसानों से भी गये बीते बन जाते है, तब भी हम उन्हे बिना अधिक गलती किये किसानो के रहन-सहन के दर्जे मे रख सकते हैं।

गाँव के कारीगर का व्यय

भारतीय गाँवों मे यदि किसी की हालत किसानो और मजदूरो से अच्छी कही जा सकती है तो वह है गाँव के शिल्पी या कारीगर की हालत। उसे न तो प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है और न मजदूरों की तरह उनकी चुटिया किसानों के हाथ दबी रहती है। यदि यह कहा जाय कि गाँव के कारीगर की मासिक आमदनी पन्द्रह रुपये के ऊपर पहुँच जाती है तो कोई गलत बात न होगी। बहुत से परिवारों के बजट को देखने के बाद पता चलता है कि ये लोग भी खाने की चीजों पर आधी से अधिक रकम खर्च कर देते है। रोशनी और ईंधन पर इनकी आमदनी का बीसवाँ हिस्सा खर्च होता है और कपड़े लत्ते पर

लगभग दस प्रतिशत। मकान का किराया रोशनी और ईंधन का खर्च बराबर होता है। आमदनी का बचा हुआ पाँचवाँ भाग अन्य वस्तुओं पर खर्च कर दिया जाता है, हालाँकि घी दूध तो इन्हें भी नहीं के बराबर ही मिलता है। सफाई और रोशनी का भी इन्तजाम खराब रहता है और किसानों की तरह इनमें भी शराब या ताड़ी पीने की बुरी आदत पायी जाती है? यह बात भी नहीं है कि ये कर्ज न लेते हों और सूद की दर तो हमेशा की तरह पचहत्तर-अस्सी प्रतिशत सालाना से कम नहीं होती। शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ये लोग भी बहुत कम खर्च करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—रहन-सहन के दर्जे का अन्दाजा किन-किन बातों से लगाया जाता है?

२—अपने गाँव के साधारण किसान के रहन सहन के दर्जे की तुलना उसी गाँव के मजदूर के रहन-सहन के दर्जे से कीजिए।

३—अमीर लोग किन वस्तुओं पर अपना रुपया अधिक खर्च करते हैं?

४—अपने गाँव में कम से कम एक साधारण किसान, एक अमीर किसान और एक गरीब किसान के आय-व्यय का एक मास का हिसाब लगाइये और यह बतलाइये कि निम्नलिखित मदों पर कितना प्रतिशत खर्च प्रत्येक दर्जे के किसान ने किया —

(अ) भोजन (ब) कपड़ा, (स) मकान-भाड़ा, (द) शिक्षा (क) मुकदमेबाजी, (ख) मादक वस्तु, (ग) दान धर्म, (घ) अन्य खर्च।

५—किसी कुटुम्ब के मासिक आय-व्यय का हिसाब, देखकर हम यह किस प्रकार बता सकते हैं कि व्यय अच्छे तरीके से किया जा रहा है या नहीं?

६—अगर आपकी आय १०० रुपया मासिक है तो आप उसको किस तरह बाँटेंगे जिससे आपके पास थोड़ी सी बचत भी हो? (१९५१)

७—पारिवारिक आय-व्यय रखने की आवश्यकता समझाइये।

८—अपने कुटुम्ब के मासिक व्यय की आलोचना कीजिये।

९—यात्रा का रहन-सहन के दर्जे पर क्या प्रभाव पड़ता है?

१०—रहन-सहन का दर्जा बढ़ाने में शिक्षा का महत्व समझाइये।

११—रहन-सहन के दर्जे का अर्थ समझाइये। गाँव में रहन-सहन का दर्जा क्यों नीचा है? उसे किस प्रकार ऊँचा किया जा सकता है? (१६४४)

१२—ग्रामीण जनता की दीनता के कारण स्पष्ट कीजिये। उत्तर प्रदेश में उनकी दशा को उन्नत बनाने के लिए कौन से प्रयत्न किये गये हैं? (१६४६)

१३—श्रमिकों की दशा और रहन सहन का वर्णन कीजिए। उनके रहन-सहन के दर्जे को उठाने के उपाय क्या हैं (१६५०)

१४—ग्रामीण जनता की फिजूलखर्ची के उदाहरण दीजिए। उनकी फिजूलखर्ची को रोकने के लिए क्या प्रबन्ध किया जाए? (१६५३)

१५—रहन-सहन के व्यय से आप क्या समझते हैं? भारतीय किसान का व्यय बढा है या घटा? (१६५३)

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो?

भोजन की आवश्यकता

अब तुम जान गये होगे कि हमारे रहन सहन में भोजन बडे महत्व का स्थान रखता है। अतएव बहुत जरूरी है कि हम यह जान लें कि हमको कैसा भोजन करना चाहिये। पहले यही बतलाइये कि आप भोजन क्यों करते हैं। हम जो वस्तुयें खाते हैं उनमे क्या मतलब निकलता है? उत्तर मे कहा जा सकता है कि हमें दो बातो की आवश्यकता रहती है। एक तो गर्मी की और दूसरे बल की। आप अभी दिना दिन लम्बे-चौडे होते जा रहे हैं और आपका डीलडौल बढाने के लिए आवश्यक है कि आप खाना खाएँ। भोजन करने से करीब पचीस साल की उम्र तक हमारे शरीर और दिमाग की वृद्धि होती है ताकि वे मजबूत बन सकें। दूसरे काम से शरीर और दिमाग मे जो कमी होती है उसकी भी आहार से पूर्ति होती है। जो पदार्थ हम खाते हैं उनमें से कोई बदन को गर्म रखता है और किसी से गोश्त बनता है। बदन को चंगा रखने के लिए यह जरूरी है कि हम दोनो तरह की चीजें खाया करें। हमको

जितनी गोश्त बनाने वाली चीजों की जरूरत पड़ती है उससे चार गुना ज्यादा गर्म रखने वाली चीजों की है। अगर हम एक तरह का खाना जरूरत से ज्यादा खा लें और दूसरी तरह का जरूरत से कम, तो हमारा पेट भर जायगा लेकिन हमारी तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुँचेगा।

चर्बी, प्रोटीन (Protein) चीनी और विटामिन (Vitamin)

ऊपर बताई हुई बातों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमको खास-खास वस्तुएँ खानी चाहिये, परन्तु अब यह कैसे समझा जाय कि कौन-कौन सी चीजें अवश्य खानी चाहिये और कितनी। इसके पहले यह बताना जरूरी है कि प्रत्येक भोजन की वस्तु से हमको तीन पदार्थ मिलते हैं—चर्बी, प्रोटीन और चीनी। दही, घी, मक्खन तथा नारियल के तेल आदि में चर्बी की मात्रा अधिक होती है। प्रोटीन एक पदार्थ का अंग्रेजी नाम है। बादाम, मूँग-फली, दाल, सूजी, बिना कूटे वा पालिश किए हुए चावल और गोश्त में प्रोटीन काफी होती है। इसी तरह शक्कर, शहद, गन्ना, आटा चावल, जौ व मुरब्बे वगैरह में चीनी बहुत होती है। चर्बी, प्रोटीन और चीनी के अलावा हमको विटामिन नाम के एक तत्व की आवश्यकता पड़ती है। विटामिन कई तरह के होते हैं.—जैसे विटामिन A, विटामिन B, विटामिन C, विटामिन D इत्यादि। हमको इनकी भी आवश्यकता पड़ती है। दूध और फलों में पानी की मात्रा अधिक होती है, चर्बी, प्रोटीन व चीनी कम रहती है। लेकिन तब भी उनकी कदर इसीलिए की जाती है कि उनमें विटामिन होता है। गाय के दूध में ऊपर बताये चारों विटामिन होते हैं, लेकिन विटामिन A सबसे अधिक होता है। यह जरूरी नहीं कि हर एक चीज में ये सारे विटामिन हों जैसे—मिर्च, चाय, कहवा में विटामिन होता ही नहीं। गोभी, टमाटर आदि में पहले तीन-विटामिन खूब होते हैं। खट्टे फलों में विटामिन C की अधिकता रहती है।

भोजन के भेद

अस्तु, आजकल के प्रचलित भोजन तीन हिस्सों में बाँटे जा सकते हैं:—फल, अन्न और मांस। फल का आहार सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। फलों के ऊपर रहने वाले प्रकृति देवी के पशु पक्षी कितने सुन्दर, मनमोहक, रंग-बिरंगे और मधुर कंठ वाले होते हैं। यूरोप के विद्वानों ने यह ढूँढ निकाला है कि

फलों मे एक तरह की बिजली होती है जिससे शरीर अच्छी तरह गठ जाता है। फलों के बाद अन्न का नम्बर आता है रोटी, दाल, भात इन सब की गिनती अन्न में की जाती है। खाना जितना सादा होता है उतना ही अच्छा होता है। हमारे पूर्वजो का उद्देश्य रहता था—"सादा जीवन व ऊँचे विचार"। जो मजा तथा फायदा गेहूँ की बालियों में होता है वह गेहूँ मे नहीं होता। गेहूँ से उतर कर रोटी का गुण होता है, उससे उतर कर पूड़ी का और अन्त मे पकवानों का। आटा जितना मोटा हो उतना ही अच्छा होता है। आजकल चक्की में पिसने वाले आटे की बहुत सी चीनी गरमी के कारण जल जाती है। चावल के पकाने मे उसका पानी अर्थात् माँड़ नहीं फेंकना चाहिये। पके हुए चावल मे कुछ नहीं होता, सब गुण तो माँड़ मे उतर आते हैं। हम लोगों में कूटे हुए चावल खाने की आदत है? कूटने से चावल का बहुत सा अंश अलग हो जाता है। इसी तरह से दाल को उसके छिलके के साथ खाना चाहिये। मूँग की छिलकेदार दाल में जो गुण होता है वह धुली मूँग की दाल में बिलकुल नहीं रहता। तरकारियाँ खून व पेट को साफ करती हैं, इसलिए हमारे भोजन में तरकारियों का होना जरूरी है। उनसे पेट का हाजमा कभी बिगड़ने नहीं पाता। इसके अलावा इसमें विटामिन A, B, C खूब होते हैं। डाक्टर लोग अन्नाहार में दूध को आवश्यक बताते हैं और थोड़ा सा घी भी। मांस खाने वाले के शरीर में अक्सर एक तरह का विष पैदा हो जाता है तथा मांसाहारी का मन उतना वश मे नहीं रहता। यूरोप तथा पश्चिम के अन्य देशों में मांसाहारियों का नम्बर घटता जाता है और फलाहार और अन्नाहार करनेवाले मनुष्य सख्या में बढते जा रहे हैं।

उपयुक्त भोजन की मात्रा

हमारे पुरखे पहले जो खाना खाते थे अथवा उन्होंने रोटी, दाल भात, तरकारी, घी, दूध का जो सादा खाना ठीक किया था उसमे हमें सब चीजें मिल जाती हैं। रोटी और भात मे चीनी की भरमार है दाल और दूध से प्रोटीन मिलता है और अन्य पाचक पदार्थ मिल जाते हैं। आप कहेंगे कि यह तो पुराने जमाने की बातें हैं। आप का साथी राम पूछ सकता है कि क्या रोटी ज्याद खाई जाय और दूसरी वस्तुएँ कम। श्याम कह सकता है कि मैं दूध तो खूब

पीऊँगा परन्तु और चीजें केवल नाम करने को खा लूँगा। इसलिए यह जानना जरूरी है कि कौन सी वस्तु कितनी खानी चाहिये। रोटी या दूध से हमको जितनी गर्मी मिलेगा उतनी गोश्त बनाने वाली चीजों मे नहीं मिल सकती और शक्कर, चावल, घी, मक्खन तो हमको सिर्फ गर्म रख सकते हैं। जो लोग गोश्त खाते हैं उनको तो गर्मी पैदा करने वाली और गोश्त बनाने वाली चीजें उसी से मिल जाती हैं। किन्तु बहुत से लोग ऐसे हैं जो गोश्त नही खाते। हिन्दुओं मे तो गोश्त खाने का रिवाज कम है। उनको इसके बदले क्या खाना चाहिये? मूँग, मटर, अरहर और इसी तरह की जितनी दालें हैं उन सब में गर्मी पैदा करने वाली और गोश्त बनाने वाली दोनों तरह की चीजें होती हैं। सेर भर मास में गोश्त बनाने वाली जितनी चीजें होती हैं उससे कहीं ज्यादा सेर भर दाल में होती हैं।

किसी ने सच कहा है कि हमारे आहार में मास, मछली और अडे रहने की बिलकुल जरूरत नहीं है। हमे पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन दूध, दही, मट्ठा मिलना चाहिए। इसके अलावा हमारे भोजन मे रोज कुछ न कुछ कच्चे (बिना आँच पर पकाये हुए) पदार्थों का रहना बहुत जरूरी है। इसके लिए हरा मटर, हरा चना, टमाटर, मूली, गाजर, ताजे फल, बेर, ककड़ी, खरबूजा, खट्टे व मीठे नीबू का रोज सेवन करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य बनने के अलावा हमारी आयु भी बढ जाती है। हमारे भोजन में गुड़ और शक्कर का रहना बिल कुल आवश्यक नहीं है। इन्हे यदि थोड़ा सा खाया जाय तो कोई हानि नही होती, पर ज्यादा खाने से ये नुकसान पहुँचाते हैं। बाजार की मिठाइयाँ तो भूल कर भी नहीं खानी चाहिये। अस्तु, हिसाब लगाकर निश्चित किया गया है कि स्वस्थ रहने के लिये एक युवा पुरुष को २४ घटों में निम्नलिखित भोजन करना चाहिए —

घर का पिसा आटा ६ छटाँक, दाल १ छटाँक, चावल २ छटाँक, घी आधी छटाँक, तरकारी ६ छटाँक, फल ४ छटाँक, दूध आधा सेर और थोड़ा सा नमक, जो कि खाना पचाने के लिए बहुत जरूरी है।

भोजन उसी समय करना चाहिए जब खूब भूख लगी हो। यह न होना चाहिए कि बकरी की तरह हर समय मुँह चलता रहे। यह उसी समय हो सकता है जब कि समय से खाना खाया जाय। खाने के अलावा पानी पीना भी बहुत

जरूरी है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि पानी हमेशा खाना खाने के आधा घंटा बाद पिया जाय। यदि पानी पीने की इच्छा बहुत तेज हो तो खाने के साथ दो-चार घूँट पानी पी लें। चौबीस, घंटे में दो सेर के लगभग पानी जरूर पीना चाहिए। गर्मी के दिनों मे पानी की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

१—एक युवा मनुष्य के लिए प्रतिदिन कितना भोजन स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है ?

२—साधारण विद्यार्थी के भोजन में किन पदार्थों की कमी होती है ? बिना खर्च बढाए उसे कहाँ तक दूर किया जा सकता है ? (१९४९)

३—किसानों और मजदूरों के भोजन में किन बातों की कमी रहती है और यह बिना खर्च बढाये कैसे दूर की जा सकती है ?

४—शहर मे रहने वालों और गाँवों में रहने वालों के भोजन में क्या अन्तर रहता है ?

५—जैसे-जैसे आमदनी बढने लगती है, भोजन में किस प्रकार का अन्तर होने लगता है ?

६—प्रोटीन, चर्बी और विटामिन किन पदार्थों मे अधिक होते हैं ?

७—भोजन में दूध, फल, हरी तरकारी का महत्व समझाइये।

८—सात्विक भोजन के लिए किन वस्तुओं का उपभोग कितने परिमाण में करना चाहिए ?

९—तामसिक भोजन के पदार्थों की सूची दीजिए।

१०—मानसिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों को अपने भोजन में किन वस्तुओं का अधिक परिमाण में उपभोग करना चाहिये ?

११—भारत में भोजन की वर्तमान कमी के कारण क्या हैं ? इसे दूर करने के क्या उपाय हैं ? (१९४८)

१२—संतुलित भोजन किसे कहते हैं ? इसके मुख्य अंश क्या हैं। कठिन

परिश्रम करने वाले किसान के सतुलित भोजन का एक उदाहरण दीजिए।
(१९४७, ५२)

नवाँ अध्याय

विनिमय (Exchange)

वस्तुओं की अदला बदली (Barter)

लकड़ी का काम करने वाले बढई को बिना मोल लिए खाने को अनाज नहीं मिल सकता। वह कुर्सी मेज. खिडकी, हल, गाड़ी आदि बनाकर बेचता है। बेचाने से जो दाम आता है उससे मडी मे जाकर वह अनाज खरीदता है। परन्तु क्या यह जरूरी है कि बढई माल को रुपये-पैसे के बदले बेचे? हमारे गॉव मे अधिकतर यह होता है कि किसान अनाज देकर अपने मतलब की वस्तु दूसरे से ले लेते हैं। अगर रामू को एक जोड़ा धोती लेनी होती है तो वह पन्द्रह-बीस सेर अनाज देकर बजाज से उस धोती को ले लेता है। लोहार को जब अनाज की जरूरत पडती है तो वह किसी किसान को जिसे फावडे आदि की जरूरत होती है, औजार देकर अनाज ले लेता है। पुराने समय मे रुपया पैसा तो चलता नहीं था। उस समय इसी तरह की अदला-बदली होती थी। हमारे गॉवो की तरह ही अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि देशों के असभ्य जंगली लोग अब भी हाथी दॉत, गोंद, मोम, शुतुर्मुर्ग के पर वगैरह देकर उनके बदले मे हथियार, औजार और खाने पीने की चीजें लेते है।

बदले के लिए कम से कम दो चीजों की आवश्यकता होती है। जब हम यह कहते हैं कि किसी चीज का बदला हो सकता है, तो हमारा मतलब यह रहता है कि उस चीज का बदला किसी और चीज से हो सकता है। लेकिन एक बात है। मान लो किसी बढई ने एक हल तैयार किया और वह उसके बदले अनाज लेना चाहता है। पर अनाज पैदा करने वाले किसान को उस समय हल की दरकार नहीं है या अगर उसे हल की जरूरत है तो हो सकता है कि उसके पास बदले मे देने के लिए काफी अनाज न हो। यह भी हो सकता

है कि किसान हल की जगह अनाज को ज्यादा काम की वस्तु समझता हो और इसलिए हल की जगह अनाज न देना चाहता हो। ऐसी हालत में बेचारे बढ़ई को किसी ऐसे किसान का ढूँढ़ना पड़ेगा जिसे हल की जरूरत हो, जिसके पास अनाज भी काफी मात्रा मे हो और जो हल को अनाज से अधिक उपयोगी समझता हो। अदला बदली हो जाने से दोनों को लाभ होता है। किसान को अनाज की अपेक्षा अधिक काम की चीज मिल जाती है, इसी तरह बढ़ई को भी हल के बदले अनाज मिल जाने से लाभ होता है। अगर बढ़ई को ऐसा कोई किसान नहीं मिलेगा तो वह भूखों मरने लगेगा। और फिर खाली अनाज से बढ़ई का काम नहीं चलता। उसे नमक, मिर्च, तेल, खटाई आदि भी चाहिये। मान लो उसे हल के बदले अनाज मिल भी गया तो उसे ऐसे आदमियों की तलाश करनी पड़ेगी जो नमक, मिर्च मसाला आदि देकर अनाज ले ले। इसी तरह दूसरे पेशे वालों को भी तङ्ग होना पड़ेगा क्योंकि सब को चीजें बदलने की जरूरत होती है। लेकिन अगर इसी तरह सब लोग अपनी चीजें लेने वालों का पता लगाने लगें तो बहुत बखेड़ा पैदा हो जाय। इन सब कठिनाइयों को दूर करने के लिए रुपये पैसे चलाये गये और आजकल हमें जब किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है तो हम बाजार जाकर उसे मोल ले लेते हैं। अर्थात् जिस मनुष्य के पास वह वस्तु रहती है उसे कुछ पैसे या रुपये देकर बदले में उस वस्तु को ले लेते हैं। किसी [illegible] की बिक्री से खरीदने और बेचने वालों को लाभ ही होता है, नुकसान नहीं। खरीदार रुपये की जगह उस वस्तु को ज्यादा काम की समझता है और बेचने वाले को रुपये की जरूरत रहती है।

माल की खरीद और बिक्री (Sale and Purchase)

हम जिस मनुष्य के पास से चीज मोल लेते हैं, वह सौदागर या व्यापारी कहलाता है, लेकिन सौदागर और व्यापारी में एक फर्क रहता है। व्यापारी थोक माल खरीदता है और जरूरत के मुताबिक बेचता है। सौदागर व्यापारियों से माल खरीद कर खाने या उपभोग करने वालों के हाथ बेचता है। व्यापारी एक फसल को एक जगह इकट्ठा करता है, फिर उसको साफ कराकर फुटकर

बेचने वालों के हाथ बेच देता है। व्यापारी कम से कम दामों मे अनाज को मोल लेकर अधिक दाम पर बेचता है। किसान फसल तैयार होते ही बेच देते हैं। उस समय अनाज का भाव सस्ता रहता है। किसानों को यह विचार नहीं होता कि अगर अनाज रक्खा रहेगा तो आगे चलकर उससे काफी लाभ होगा। लेकिन दरअसल बात तो यह है कि हमारे किसानों की हालत ऐसी बुरी है और वे इतने कर्जदार रहते हैं कि वे अनाज को घर मे रख नहीं सकते। व्यापारी सस्ते मे अनाज को मोल ले लेकर भर लेता ह और जब भाव खूब तेज होता है तब उसे बेचता है,

फसल तैयार होने के समय तो किसान प्राय सब अनाज बेच देते हैं पर थोडे दिन बाद उनकी रसद चुक जाती है। तब वे बनिये की सरण जाते हैं। बनिया उस समय अनाज किसानों को बॉटता है और उनसे वादा करा लेता है कि फसल पर वे उसका सवाया देंगे। इसी तरह बोनी के समय वह किसानों को तेज भाव पर अनाज देता है। आप हिसाब लगा सकते हैं कि बनिये को क्या लाभ होता है। मान लो फसल पर वह एक रुपये का चार सेर गेहूँ खरीदता है और बाद में आवश्यकता पडने पर वह तीन सेर का अनाज बेचता है और वादा करा लेता है कि दूसरी फसल पर व्याज सहित इन रुपयों का अनाज लेगा। फसल पर छै सात महीने में व्याज सहित रुपये का फिर चार सेर के भाव से गेहूँ ले लेता है। इस तरह एक ही साल में दो गुना फायदा उठाता है। फसल की बिक्री मे लाभ हानि, देर सबेर, तेजी-मन्दी का ध्यान रखने से यही लाभ होता है।

इस खरीद और बिक्री से बनिसे-व्यापारी को ही फायदा होता है। बेचारे किसान को तो नुकसान ही रहता है। अगर उपज कम होती है तो किसानों को अधिक दाम तो मिलते नहीं। हाँ, बनिया राम जरूरी माल को अधिक ऊँचे भाव पर बेचकर खरीदारों से ज्यादा फायदा उठा लेते हैं। किसान को लाभ पहुँचाने के लिए, उन्हे इन बनियों के हथकडे से बचाने तथा उनकी हालत को अच्छी बनाने के लिए गाँवों में माल बेचने तथा किसानों के लिए उनकी जरूरत की वस्तु खरीदने वाली कमेटियाँ (समितियाँ) बन गई हैं। इन कमेटियों को क्रय-वक्रय सहकारी समितियाँ कहते हैं। उन समितियों का काम यह होता है कि वे

अपने सदस्यों की उपज अच्छे से अच्छे दामों पर बेचने की कोशिश करती है। इसके अलावा समिति किसानों के लिए अच्छे-अच्छे एक तरह के बीज इकट्ठा करती है, अच्छी खाद का इन्तजाम करती है इत्यादि। आगे के किसी अध्याय में तुम्हें इन समितियों के बारे में खुलकर हाल बताया जायगा।

बाजार (Market)

अब प्रश्न उठता है कि माल कहाँ बेचा और खरीदा जाता है? तुम जवाब दोगे—"बाजार में"। लेकिन बाजार से क्या समझा जाता है? आम तौर पर जहाँ पर तरकारी-भाजी मोल लेते हैं अथवा जहाँ अपनी जरूरत की वस्तु या वस्तुएँ खरीदते हैं उस जगह को बाजार या मन्डी कहते हैं। गाँव में जानते हैं कि दूसरे-तीसरे दिन या हर हफ्ते बाजार लगता है। जगह-जगह म्युनिस्पैल्टी पक्की इमारत या घेरा बनवा देती है जिसमें तरह-तरह के सामान बेचने के लिए दुकानें लगाई जाती हैं। पर साधारण तौर पर हम बाजार या मन्डी से जिस स्थान को समझते हैं यह अर्थशास्त्र के अन्दर बाजार नहीं कहलाता। **अर्थशास्त्र में किसी पदार्थ के बाजार से उस सारे क्षेत्र से हमारा मतलब होता है जिसमे बेचने और खरीदने वाले आपस में इस तरह से सम्बन्ध रखते हैं कि उस बाजार मे वस्तु का लगभग एक सा दाम रहता है।** यदि गेहूँ का व्यापार दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों में आसानी से और कम खर्च से होता है तो तमाम दुनिया गेहूँ का बाजार कही जायगी। यह जरूरी नहीं है कि बेचने और खरीदने वाले एक ही स्थान में इकट्ठे हों। वे दूर दूर रह सकते है।

उदाहरण के लिए उस बाजार को लीजिए जिसमे कम्पनियों के हिस्से बिकते हैं। आप जानते है कि अक्सर बड़ी कम्पनियों और बैंकों में केवल एक ही व्यक्ति का रुपया तो लगा नहीं रहता। बल्कि कम्पनी में पाँच-पाँच, दस-दस या सौ-सौ रुपये के हिस्से होते है। शुरू में हर हिस्से के खरीदार को हिस्से के दाम देने पड़ते है। जब कम्पनी चल निकलती है और कम्पनी को खूब मुनाफा होने लगता है तो हर हिस्से पर प्राप्त होने वाले मुनाफे की रकम बढ़ जाती है। इससे हिस्सों का दाम बढ़ जाता है अर्थात् यदि कोई अपने एक सौ

के हिस्से को वेचे तो लोग उसे सौ मे अधिक दाम पर खरीद लेंगे चूँकि आदमी घर बैठे इन हिस्सों की खरीद-फरोख्त कर सकता है अतएव हिस्से का बाजार बहुत विस्तृत होता है।

हमने ऊपर कहा है कि बाजार में वस्तु की कीमत लगभग एक सी रहती है। आप पूछ सकते हैं क्यों? उत्तर है लाग-डाट के कारण। एक छोटा सा उदाहरण अपने अनाज की मडी का ले लीजिए। उसमे बहुत से चावल, दाल, गेहूँ, बेचने वाले बैठते हैं। मान लो गेहूँ का भाव चार सेर फी रुपये का है। अब अगर मेवालाल एक रुपये मे तीन ही सेर गेहूँ देना चाहेगा तो खरीदने वाले उसे छोड़कर औरों से गेहूँ माल लेंगे। इसी तरह अगर रामचन्द्र सवा चार सेर का गेहूँ वेचने लगे तो खरीदने वाले और दूसरे बनिए जल्दी उसका सारा गेहूँ मोल ले लेंगे और भाव फिर चार सेर का हो जायगा। इस तरह गेहूँ का भाव चार सेर का ही बना रहेगा। जिन पदार्थों का बाजार फैला हुआ होता है उनके साथ भी यही होता है। अगर बाजार के किसी कोने में भाव महँगा है तो दूसरी जगह वाले माल वेचने के लिए वहाँ पहुँच जायेंगे। और जहाँ पर माल सस्ता होता है वहाँ का माल दूसरी जगह वाले जल्दी से खरीद लेते हैं और वहाँ भी फिर भाव बढ जाता है।

बाजार का क्षेत्र (Extent of the Market)

किसी वस्तु की कीमत जितने क्षेत्र में समान हो उतना ही अच्छा होता है। डाक, तार, टेलीफोन इत्यादि की सहायता से वस्तुओं के मूल्य में घट-बढ़ का समाचार आसानी से किसी स्थान मे तुरन्त भेजा जा सकता है और रेल, नहर, सड़कें मोटर आदि से माल एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँचाया जाता है। इससे समय और धन दोनों में किफायत होती है और बाजार का क्षेत्र बढता है। यों तो बाजार बढ़ाने के लिए पाँच बातों का होना जरूरी है। पहले तो वस्तु ऐसी होनी चाहिये जो आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाई जा सके। मकान आदि की तरह बड़ी व स्थिर न होनी चाहिये। छोटी होने के अलावा वस्तु जल्दी न बिगड़ती हो अर्थात् टिकाऊ हो। फल और मछली की कीमत एक सी नहीं रह सकती। लेकिन सोना, चाँदी वगैरह की कीमत बाजार मे एक सी रहती है। दूसरी बात

यह है कि पदार्थ को ले जाने में समय कम लगे। साथ ही खर्च भी कम पड़ना चाहिये अर्थात् मूल्य की तुलना मे वह अधिक भारी न हो। जैसे—पत्थर, लकड़ी इत्यादि। फल वगैरह ऐसी चीजे है कि जब तक उन्हे सावधानी से रक्खा जाय तब तक ये दूर नहीं भेजे जा सकते। पत्थर की नक्काशी की चीजों के टूट-फूट जाने का बड़ा डर रहता है और उन्हें दूर भेजने के लिए बड़ी होशियारी से उनका पार्सल बनाना पड़ता है। इसका व्यय तथा मार्ग मे उनके टूट जाने का डर, उनकी कीमत और खर्च बढ़ा देता है। तीसरी बात यह है कि वस्तु की माँग काफी और चारों ओर होनी चाहिए। इसी तरह पदार्थ ऐसे होने चाहिये कि लोगों को उनके बारे मे सारा हाल अच्छी तरह बताया जा सके तथा दूर-दूर रहने वाले खरीदार अच्छी तरह जान सके कि वे किस तरह का माल मँगा रहे है। खेती करने से जो अनाज आदि चीजें पैदा की जाती हैं वे कई प्रकार की होती है। गेहूँ भी कई प्रकार का होता है। इनका दूर-दूर रहने वाले आदमियों को ठीक-ठीक परिचय देना बड़ा कठिन होता है। इससे कीमत के विचार से गेहूँ, चना आदि चीजें सोना-चाँदी की बनिस्बत बहुत ज्यादा जगह घेरती है। इसी कारण गेहूँ, चना आदि का बाजार बहुत विस्तृत नहीं होता। इस तरह जमीन का बाजार बहुत कम विस्तृत होता है क्योंकि वह बिलकुल स्थिर होती है। मकानों और अपने-अपने मन के पसन्द की चीजों की भी यही हालत है।

वस्तु की कीमत किस प्रकार निश्चित होती है

किसी वस्तु के बाजार के सम्बन्ध मे बताते समय हमने कहा है कि बाजार मे कीमत एक सी रहती है। सवाल उठता है कि बाजार मे कौन सी कीमत निश्चित की जाती है? विनिमय के सम्बन्ध मे हमने कहा था कि किसी वस्तु की बिक्री उसी समय हो सकती है जब कि वह आसानी से प्राप्त हो तथा खरीदार को उसकी आवश्यकता हो। जब किसी वस्तु के उपरोक्त दोनों गुण होते हैं तब उसकी माँग तथा पूर्ति के अनुसार कीमत निश्चित होती है। माँग से हमारा मतलब वस्तु की उस मात्रा या वजन से है जिसे कुल खरीदार मोल लेने को तैयार रहते हैं, और पूर्ति वस्तु की उस मात्रा के बराबर है जिसे व्यापारी बेचने को तैयार रहता है। यदि माँग अधिक है तो खरीदार

आपस में चढा-चढी करते हैं और बेचने वाले को अधिक दाम मिलता है। यदि पूर्ति ज्यादा है व खरीद कम, तो कम दाम पर ही चीजें बिकेंगी। परन्तु यदि किसी वस्तु के सब व्यापारी आपस म किसी तरह का समझौता करके यह निश्चित कर लें कि हम अमुक कीमत से कम पर माल नहीं बेचेंगे तो खरीदार को शायद उतनी ही कीमत देनी पडे। खरीदार क्यों उस निश्चित कीमत को देगा? क्योंकि उसे उस चीज की आवश्यकता है और जैसे-जैसे समय बीतेगा वैसे ही वैसे वह उस वस्तु की जरूरत को और अधिक महसूस करता जायगा। यह तो सब कोई जानता है कि गरज बावली होती है। अगर अपनी गरज (स्वार्थ या आवश्यकता) है तो हम उतने ही दाम देकर उस चीज को खरीदेंगे। मान लो घर मे आटा नहीं है और बाजार में पिसा हुआ आटा नहीं मिल सकता तब तुमको मडी जाकर अनाज मोल लेना पडेगा। उस समय यदि मंडी वाले चार सेर की जगह तीन सेर फी रुपये की दर से ही गेहूँ आदि देने का निश्चय कर लें तो तुम क्या करोगे? बिना अनाज लिये तुम्हारा पेट का काम चल नहीं सकता। अगर तुम इतना दाम न देना चाहोगे, तो जैसे-जैसे समय बीतेगा वैसे-वैसे तुम्हें अनाज की जरूरत ज्यादा महसूस होती जायगी और तुम अधिक दाम देने को तैयार होते जाओगे, यहाँ तक कि अन्त में तुम व्यापारी को मुँह माँगा दाम देकर उस पदार्थ को खरीद लोगे।

यदि सोचकर देखा जाय तो मालूम होगा कि ऊपर दिये हुए उदाहरण में पूर्ति तो कम थी और खरीदार की माँग बहुत अधिक। माँग और पूर्ति का किसी वस्तु की कीमत पर क्या असर पडता है इसका एक और उदाहरण लीजिए। मान लीजिये आपको अनार लेना है। फल की मण्डी मे जाने पर आपने कई फलवालों के पास अनार देखा, मगर भाव पूछने पर सब ने एक रुपया सेर बताया। अगर आपको अनार लेना बहुत जरूरी है तो आप फल वालो के इर्द-गिर्द इस प्रकार चक्कर लगायेंगे जैसे दूध के चारों ओर बिल्ली। फलवाले इससे आपकी आवश्यकता की थाह पा लेंगे और फिर तो आप उनसे कभी भी रुपये सेर से कम पर अनार न ले सकेंगे। मान लीजिये आपके ले चुकने पर एक सज्जन और आ पहुँचे। उन्हें अनार का भाव मालूम पडा तो वे बोले कि तेरह आने सेर दोगे? अनार वाला बोला कि देखिये बाबू साहब

खड़े हैं, पूछ लीजिए। उन महोदय को अनार की आवश्यकता है इसलिए उन्होंने चौदह आने सेर पर अनार माँगा। भाव कुछ बढ़ते देखकर अनार वाले टेढ़े पड़ने लगे। उस पर खरीदार जाने लगे। इस पर अनार वाला सोचता है कि शायद इससे ज्यादा दाम नहीं देना चाहते। साथ ही वह इस बात पर ध्यान देता है कि रुपये में उसे चार आने का फायदा होता है। चार आने न सही ढाई या तीन आने सही। तब वह आवाज लगाता है, "बाबू जी यहाँ तो आइये, आखिर क्या भाव लेना चाहते हैं, कुछ और दीजिए, आपके खातिर दो पैसा घटा दूँगा" होते-होते आखिर पन्द्रह आने पर सौदा तय हो गया। देखा आपने, दूसरे सज्जन की माँग इतनी अधिक नहीं थी कि वे रुपये सेर का दाम देने को तैयार हो जाते। उन्होंने देखा कि इन अनार वालों का गुट्ट अधिक दाम माँग रहा है तो वे जाने लगे। अनार के रहते माँग कम हो गई और इसीलिये गुट्ट में से एक को कम दाम पर अनार बेचना पड़ा। यदि दूसरे सज्जन के सामने और लोग भी आने लगते हैं तो अनार का भाव पन्द्रह आने पर ही बना रहता है।

यदि माँग बिलकुल ही कम हो तो कीमत और भी गिर जाती है। अनार जल्दी बिगड़ने वाला फल है। मान लो रात हो गई और बाजार में सन्नाटा छाने लगा अर्थात् ग्राहकों का आना कम हो गया। उसी समय एक मनचला जवान आ पहुँचा। भाव पूछ कर बोला कि चौदह आने सेर दो तो दो सेर दे दो। अनार वाला मन में सोचता है कि क्या पता दो सेर अनार बेचने के लिए मुझे कल कब तक ठहरना पड़े, फिर रात को कुछ अनार बिगड़ने लगेंगे। इसके अलावा तुरन्त नफे के चार आने मिल जायेंगे, यह सोचकर वह चौदह आने सेर पर ही अनार बेच देता है।

किसी चीज के भाव के निश्चित होने पर उस चीज की मात्रा या वजन का असर जरूर पड़ता है। तीसरे सौदे में अनार वाले ने इसका ख्याल किया था। यही क्या, आप कहीं भी थोक मे अधिक माल लीजिये तो आपको कम कीमत देनी पड़ेगी। बाजार में आप आम खरीदने जाइये, अगर पैसे में एक आम मिलता है तो शायद दस मे एक दर्जन और अठारह आने में सौ आम मिल जायँगे। इसके अलावा अनार वाले ने भविष्य का भी ख्याल किया था।

यदि अनाज वालों को यह पता चल जाय कि वर्षा की कमी के कारण अबकी बार खेती खराब हो रही है तो वे अभी से भाव तेज कर देंगे। वे जानते हैं कि यदि आज कोई तेज भाव पर अनाज नहीं खरीदेंगे तो कल आवश्यकता बढ़ जाने पर लोग अवश्य ही अनाज खरीदेंगे। व्यापार मे भविष्य कितना खेल खेलता है इसका अन्दाजा लगाना कठिन है। कितने सेठ साहूकारों ने इसी की बदौलत कोठियाँ खड़ी कर लीं और इसी कारण से अपनी आजीविका पैदा कर रहे हैं। समय के साथ भी कीमत घटती बढ़ती है। यदि आज गेहूँ चार सेर का बिकता है तो हो सकता है कल सवा चार सेर का बिकने लगे। क्यों? मान लीजिए कल सुबह गाँव से गेहूँ की बीस गाड़ियाँ आ गईं। इससे गेहूँ की पूर्ति के विचार से माँग के कम पड़ जाने से भाव गिर गया और गेहूँ सवा चार सेर का बिकने लगा। ख्याल कीजिये कि किसी वर्ष खेत में खूब अनाज पैदा हुआ। परन्तु इसी समय योरुप में लड़ाई छिड़ जाने से वहाँ अनाज की माँग बहुत बढ गई। किसानों और व्यापारियों ने अच्छे दाम पर अनाज बाहर भेजना प्रारम्भ कर दिया। इस समय देश में अच्छी फसल होने पर भी अनाज की कीमत बढ़ जायगी।

यदि हम अनार वाला उदाहरण फिर से ले लें तो क्या अनार बेचने वाला बारह आने सेर का दाम ले लेगा? कदापि नहीं। बारह आने तो उसका लागत खर्च है। मुनाफा व मेहनत के दाम कहाँ गये? बारह आने छोड़ वह तेरह आने पर भी अनार बेचने को तैयार नहीं होगा? लेकिन वस्तु की हालत खराब हो जाने पर कीमत अवश्य गिर जाती है। मान लो, कोई जलेबी वाला है। रात हो जाने पर जलेबी सूख कर बासी हो जाती है। वह जानता है कि दूसरे दिन ताजी जलेबियाँ बनेंगी उस समय बासी जलेबियों को कोई नहीं पूछेगा। इसलिए रात को भाव और कम कर देगा या अंत मे जलेबियों को स्वयं खा लेगा।

किसी वस्तु की उत्पत्ति मे जो खर्च बैठता है उस वस्तु की कीमत उस खर्च के आस-पास ही रहती है। यदि आशा, निराशा, रुपये की तंगी इत्यादि का विचार न किया जाय तो उस वस्तु की कीमत हमेशा चीज को उत्पन्न करने के व्यय से थोड़ी-सी अधिक ही रहती है। इस अधिकता मे

बेचने वाले का मुनाफा शामिल रहता है। एक किसान को अन्न उपजाने में खेतों को जोतना, बोना व सींचना पड़ता है। इसके अलावा अनाज की कटाई, मँड़ाई करके बाजार में लाने में खर्च होता है। यह सब खर्च तथा उसकी मजदूरी, मुनाफा और खेत का लगान, उत्पादन व्यय में शामिल रहता है। तुमको मालूम है कि कई मिलें एक ही तरह का माल तैयार करती हैं। परन्तु सब का लागत खर्च भिन्न होता है, किसी का कम किसी का ज्यादा। ऐसी हालत में क्या तुम बता सकते हो कि बाजार में उस वस्तु का मूल्य सबसे कम लागत के हिसाब से निश्चित होगा या सबसे अधिक लागत के अनुसार? इन दशाओं में हमेशा किसी चीज की कीमत सबसे अधिक लागत का ध्यान रखकर निश्चित होती है। हाँ, यदि लाग डाट हो तो सबसे कम लागत वाली मिल कम कीमत पर माल बेचेगी। परन्तु यदि ऐसा हुआ तो दूसरी मिलें बन्द हो जायँगी।

कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि उनकी मात्रा कभी बढ़ाई नहीं जा सकती। जैसे पुराने चित्र, सिक्के इत्यादि। इनकी कीमत माँग और पूर्ति के हिसाब से ही तय की जाती है। उत्पादन-व्यय का उस पर कोई असर नहीं पड़ता।

खेती से उत्पादित पदार्थों की कीमत

ऊपर कीमत निश्चित होने के सम्बन्ध में जो बातें बतलाई गई हैं वे हमारे गाँव में बिकने वाली वस्तु के ऊपर नहीं लागू होती। इसका एक विशेष कारण है। हमारे किसान कर्जदार रहते हैं। गाँव के महाजन किसानों को खाने के लिए अनाज उधार देते हैं। परन्तु ये खाते में अनाज का वजन लिखकर बाजार-भाव से सेर आधा-सेर कम अनाज का दाम लगाकर खाते में लिख लेते हैं। फसल पर ये लोग रुपये के बदले में अनाज लेते हैं। परन्तु किस भाव पर? इस बार अनाज बाजार से सेर आधा-सेर अधिक भाव पर लिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि चार सेर का भाव है तो उधार देने के समय अनाज का भाव पौने चार सेर का लगाया जाता है और फसल पर लेते समय पाँच सेर का भाव लगाया जाता है। बेचारे किसानों को इससे काफी घाटा सहना पड़ता है।

इसके अलावा बहुत सी उपज को किसान व्यापारी के हाथ बेचता है।

व्यापारी फसल के समय तो सस्ते दामों में अनाज खरीदता है, फिर कुछ दिनों बाद उसी अनाज को किसानों के हाथ महँगे दामों में बेचता है। आप कह सकते हैं कि किसान अपने लिए अनाज बचाकर क्यों नहीं रख लेता। ठीक है, परन्तु हमारे किसान की ऐसी हालत है कि वह फसल को अपने पास रख तो सकता ही नहीं। किसान जितना अनाज पैदा करता है उसका एक बड़ा भाग तो नाई, धोबी, लोहार वगैरह के पास चला जाता है। कर्ज पाटने व लगान देने के लिए रुपये की जरूरत पड़ती है, इसलिये बाकी भाग भी फौरन बेचना पड़ता है। किसान जब मन्डी में अनाज बेचने जाता है तो उसके और व्यापारी के बीच में दलाल आ पड़ता है। फिर उसे अनाज उतारने वाले को, तौलने वाले को, रसोइया को, भिश्ती और मेहतर का कुछ न कुछ देना पड़ता है। इसके अलावा मन्डी के कुएँ के लिए गंगाजली के नाम पर व धर्मखाते के नाम अनाज वसूल किया जाता है। फिर जिस बाट से तौल कर व्यापारी अनाज लेता है वे गड़बड़ होते हैं। इन सब बातों से किसान जिस भाव से अनाज बेचता है वह और सस्ता हो जाता है। बल्कि यह कहा जाय कि हमारे किसान की हालत ऐसी गिरी हुई है कि माल बेचते समय किसान लूटा जाता है। किसानों की बिगड़ी हुई हालत के अलावा अनाज को बेचने के लिए उसे अच्छे तरीके नहीं प्राप्त हैं। हमारे किसानों की पहुँच अच्छे बाजारों तक नहीं होती। खेती से उत्पन्न पदार्थों का बाजार में बेचने के प्रश्न के ऊपर हम अगले किसी अध्याय में अच्छी तरह विचार करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अदला बदली की कठिनाइयाँ क्या हैं? इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है? (१९५१)

२—किसी वस्तु को बिक्री में बेचने वाले और खरीदने वाले दोनों को लाभ होता है, उदाहरणों सहित समझाइये।

३—अदला बदली क्या है? क्या यह आपके गाँव में पाई जाती है? क्रय विक्रय ने इसका स्थान क्यों ले लिया है? (१९४३)

४—फसल बेचते समय भारतीय किसानों को किस प्रकार हानि उठानी पड़ती है?

५—अपने गाँव के किसी किसान के साथ मडी जाकर यह पता लगाइये कि अपना अनाज बेचते समय तौलने वाले को, नौकरों को तथा धर्म के नाम पर कितना अनाज देना पड़ा।

६—यदि किसी वर्ष वर्षा कम हो जाय तो उसका असर अनाज की कीमतों और अन्य वस्तुओं की कीमतों पर कैसा पड़ेगा?

७—यदि किसी वर्ष वर्षा बहुत अच्छी हो और फसल अच्छी आवे परन्तु विदेश से अनाज की माँग बढ जाय तो अनाज की कीमत पर तथा अन्य वस्तुओं की कीमत पर क्या प्रभाव पडेगा?

८—स्वदेशी आन्दोलन का गाधी टोपी की कीमत पर क्या प्रभाव पड़ा? इसका प्रभाव विदेशी टोपियों की कीमत पर क्या हुआ?

९—वस्तु की कीमत का उसके लागत खर्च से क्या सम्बन्ध रहता है?

१०—लागत-खर्चे में जो खर्च शामिल किये जाते है उनकी सूची किसी एक वस्तु का उदाहरण लेकर तैयार कीजिए।

११—सूती कपड़ा भारत मे सैकड़ों मिलों मे तैयार किया जाता है और प्रत्येक का औसत लागत-खर्च भिन्न भिन्न है। ऐसी दशा मे सूती कपडे का मूल्य किस मिल के लागत-खर्च के बराबर होगा?

१२—लागत-खर्च से कम कीमत पर वस्तु किन दशाओं मे बेची जाती हैं?

१३—आप 'बाजार के क्षेत्र' से क्या समझते हैं? किसी वस्तु के बाजार का क्षेत्र किन बातों पर निर्भर रहता है? विस्तृत बाजार वाली कम से कम दस वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये। (१९४२)

१४—निम्नलिखित वस्तुओं का बाजार किन दिशाओं में विस्तृत हो सकता है:—
कलमी आम, लकड़ी, कम्पनी का हिस्सा (शेयर), पुस्तक, नयी मशीन।

१५—किसी वस्तु की कारखाने की कीमत और फुटकर बिक्री की कीमत के पारस्परिक सम्बन्ध उदाहरणों सहित समझाइये।

१६—सफल दूकानदार में किन गुणों की आवश्यकता है?

दसवाँ अध्याय

ग्रामीण फसल की बिक्री

प्राक्कथन

पिछले अध्याय में हमने फसल की बिक्री के बारे में थोड़ा सा हाल बताया था। हम यह बता चुके हैं कि किसानों को ज्यादातर अपना माल उन महाजनों के हाथ बेचना पड़ता है जिससे वे रुपया उधार लिए रहते हैं। यह कहने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती कि वे माल लेते समय बाजार से बहुत सस्ता दाम लगाते हैं। परन्तु कुछ किसान ऐसे भी हैं जो स्वयं मंडी में जाकर अनाज बेचते हैं। आप पूछ सकते हैं कि किसान किस मंडी में अपना अनाज बेचता है और किस प्रकार बेचता है।

इसके पहले कि हम मंडी और बिक्री के ढङ्ग के बारे में कुछ बतायें, यह कहना गलत न होगा कि किसान और खरीदार के बीच में व्यापारी का होना जरूरी है। सब खरीदार फसल तैयार होते ही साल भर के लिए अनाज या अन्य उपज यों खरीद नहीं सकते। उन्हें जब जरूरत होती है तथा जब जेब में पैसे होते हैं तब अनाज खरीद लेते हैं। परन्तु हमारे किसान के लिए यह सख्त जरूरी है कि फसल तैयार होने के बाद जितनी जल्दी हो सके वह बिक जाय। वह साल छः महीने तक अनाज को लिए बैठा नहीं रह सकता। पहले तो उसके पास इतनी जगह ही नहीं होती कि वह उपज को रक्खे। आप जानते ही हैं कि फसल काट कर वह खलिहान में रखता है। दूसरी बात यह है कि किसान को लगान, सूद, मजदूरी आदि देनी पड़ती है। सरकार लगान अधिकतर रुपये में माँगती है। कुछ मजदूरी भी पैसों में देनी पड़ती है। अतएव यह जरूरी हो जाता है कि किसान फसल रखे नहीं। इसलिए इन दोनों के बीच व्यापारी का होना जरूरी है। इन व्यापारियों से बड़ा काम निकलता है। वह एक फसल को एक स्थान में इकट्ठा करते हैं। फिर इन्हें साफ कराकर तथा उनकी किस्मों को अलग-अलग करके बाजारों में भेज देते हैं। वहाँ छोटे दूकानदार अनाज को खरीद कर फुटकर खरीदारों के हाथ बेच देते हैं।

बिक्री की बातें

अस्तु, उपज को मुनाफे के साथ बेचने के लिए यह अत्यन्त जरूरी है कि बेचने वालों को बाजार भाव व बाजार की दशा का पूरा ज्ञान हो। कौन चीज कहाँ सस्ती बिकती है, कहा ले जाने से महँगी बिकेगी, किस रास्ते तथा किस तरह ले जाने से भाड़ा कम पड़ेगा, इन सब बातों का पूरा ज्ञान होना जरूरी है। उन्हें यह भी मालूम होना चाहिये कि उपज को किस समय अथवा कितने दिनों के अन्दर बेच देना चाहिए। परन्तु हमारे किसान तो अशिक्षित और निर्धन हैं। व भाव ताव के बारे मे कुछ नहीं जानते। प्राय. उन्हें बाहर की मडियो का भाव मालूम नही रहता और न उन्हे बाहर जाकर बेचने का सुभीता ही रहता है। इसलिए उन्हें गाव म या पास की किसी मडी मे जो दाम मिलता है उसी मे सतोष करना पड़ता है।

मन्डी मे फसल की बिक्री

प्रथम तो किसान को यही नहीं मालूम पड़ता कि उसका माल उचित भाव से बिक रहा है या नहीं, और उसे ठीक-ठीक दाम मिल रहे हैं या नहीं। फिर म्युनिसिपल टेक्स (चुगी) के अलावा किसान को मडी मे गाड़ी ठहराने का शुल्क, दलाल की दलाली देनी पड़ती है। फिर अनाज उतारने वाले पल्लेदार को, माल तौलने वाले को, भूसा निकालने वाले को तथा गोशाला, मन्दिर, प्याऊ आदि न जाने उससे किस-किस के लिए दान लिया जाता है। तम्बाकू खरीदने वाला तोलाई की गिनती के लिए मन पीछे तम्बाकू का एक पूड़ा लेता है, गङ्गा जी के नाम पर दूसरा पूड़ा लिया जाता है। तौलने वाला अपने काम के लिए एक पूड़ा लेता है। फिर तोलाई और दलाली अलग लगती है। इस तरह मे बेचने वाले की काफी रकम निकल जाती है। इसके अलावा अनाज जिस बाट म तोला जाता है वह अक्सर बनावटी होता है। व्यापारी सरकारी पन्सेरी की जगह पत्थर के बाट काम में लाते हैं। बेचारे किसान इस बाबत भी कुछ नही कह सकते। यही नहीं, कभी तौलने वाला डडी मारता है, तराजू मे पसगा रखता है इत्यादि।

गाँव मे बनी वस्तुओं की बिक्री

इसी प्रकार की हालत हमारे गाँवो के शिल्पी और कारीगरों की भी है।

गाँव में अधिकतर जुलाहे, बढ़ई, रस्सी बटने वाले, तेली, मोची आदि कारीगर और दस्तकार रहते हैं। इनको भी बाजार भाव का ज्ञान नहीं होता। जुलाहा बुनकर कपड़ा तैयार करता है। बढ़ई बिना माँग के हल को बना लेता है। रामू किसान फ़ुरसत के वक्त सन का बटकर रस्सी तैयार करता है। बालादीन टोकरी बना डालता है। शङ्कर तेली अलसी और सरसों का तेल तैयार करता है। इनको बेचने के लिए वे पहले गाँव मे ही खरीदार ढूँढते हैं। अपने तैयार माल को गाँव के महाजन या साहूकार के पास ले जाते हैं। उससे पूछते हैं कि क्या उसे कपड़े, रस्सी आदि की जरूरत है। परन्तु एक बात है। इन महाजनों और साहूकारों के हाथ माल बेचने से उन बेचारो को पूरा दाम कभी नहीं मिलता। गाँव के ये कारीगर अपने माल को गाँव के हाट में ही बेचते हैं। यदि गाँव के पास कहीं मेला होता है तो बेचने की गरज से माल को वहाँ ले जाते हैं।

ग्रामीण सड़क

माल को बेचने की प्रथा में जो बुराइयाँ हैं उनको दूर करने के लिए देश की सरकार कोशिश करती रहती है। माल को अच्छी मण्डी में पहुँचाने के लिए पहले तो इस बात की आवश्यकता है कि गाँवों का मंडियों से सम्बन्ध हो। अर्थात् मंडियों को मिलाने के लिए अच्छी सड़कें हों। आप यदि गाँव की ओर जाने का कष्ट करें तो आपको मालूम होगा कि प्रथम तो गाँव में जाने के लिए रास्ता ही नहीं होता, यदि होता भी है तो कच्चा, धूल और गड्ढों से भरा हुआ, जिसमें से बैलगाड़ी को निकाल ले जाना कठिन जान पड़ता है। फिर बैलगाड़ी, ऊँट तथा घोड़े-गदहे होते ही कितने किसानो के पास हैं। गाँव में मुश्किल से दो-तीन बैलगाड़ियाँ निकल सकती हैं। ऐसी हालत मे यह बड़ा जरूरी है कि गाँव में पक्की सड़कें बनाई जावें। बीसवीं शताब्दी के नये जमाने मे बैलगाड़ी का काम नहीं। यदि मोटर, लारी का इन्तजाम हो सके तो बड़ा अच्छा हो जिससे किसान अपने माल को अच्छी मंडी में कम खर्च से पहुँचा सकें द्वितीय महायुद्ध खतम हो जाने के कारण फौज की मोटर लारियों से पदार्थों की ढुलाई का काम लिया जा सकता है।

यह संताप ी बात है कि भारत सरकार और प्रादेशिक सरकार यातायात

की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं और इस हेतु योजनाएँ बना ली हैं। इन योजनाओं मे लारी रेल की लाग-डाट बिलकुल घट जायेगी।

सहकारी संस्थाएँ और बिक्री

(Co-operative Marketing Societies)

लेकिन किसानों की तो अवस्था ऐसी है कि माल को मडी में पहुँचाने का इन्तजाम हो जाने से भी उनकी हालत अधिक नहीं सुधर सकती। हर एक किसान के पास शायद इतनी अधिक फसल नहीं होती कि वह उसे मोटर पर लादकर मडी ले जाय। इससे भी अधिक मर्के की बात तो यह है कि किसान यह नहीं जानता कि फसल को किस मडी मे ले जायॅ। फिर भाव-ताव और मडी मे लिए जाने वाली तरह-तरह की उगाही का सवाल तो बाकी रह जाता है। यह देखा गया है कि सहकारी सस्थाएँ किसानो को इस दुःख से उबार सकती हैं। सहकारी सस्था वह सस्था है जो सरकार के सहकारी विभाग की ओर से खोली जाती है। इसमे गॉव वाले सदस्य बनाए जाते हैं। सस्था का मैनेजर, जिसकी नियुक्ति सरकार की ओर से होती है, किसानो की उपज को खरीद कर उसे मॅहगी से मॅहगी मडी मे बेचता है। इस प्रकार से सस्था को जो लाभ होता है उससे मैनेजर वगैरह की तनख्वाह काटने के बाद जो बचता है वह तो मेम्बरों को ही बॉट दिया जाता है। यही नहीं, बाजार सबधी अन्य बातों की जानकारी प्राप्त करने के बाद सहकारी समिति माल को अन्तिम खरीदार के हाथ भी बेच सकती है। ऐसा करने से बीच के कई दलालों की दलाली तथा नाना प्रकार के शुल्क आदि से सहज ही में छुटकारा मिल जाता है और किसान को भी अधिक से अधिक दाम मिल जाता है।

विदेशों में तो इन सस्थाओं को काफी सफलता मिली है। इगलैंड, अमरीका आदि देशों में हजारों ऐसी समितियॉ काम कर रही हैं। हमारे देश में भी ऐसी समितियॉ खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है। जब प्रदेशों का इन्तजाम कांग्रेस के हाथ में आया तब ये समितियॉ खूब जोर-शोर से खोली गईं। प्रादेशिक सरकारों ने अब इन समितियों की अधिक सख्या से व्यवस्था और उन्नति करने की योजना बनाई हैं। इन समितिया को माल रखने की और सुविधा देने के लिए सरकारी व्यय से छोटी-बड़ी सीमेंट की खत्तियॉ (जमीन के

अन्दर गोदाम) बनाई जायेंगी। परन्तु भारत में एक और विशेष बात यह है कि हमारे किसान बहुत ऋणी हैं। यह बात किसी से छिपी नहीं है। पहले तो इस कर्ज के मारे कितनों को अपना माल महाजन के हाथों में ही बेचना पड़ता है। दूसरे, कर्ज अधिक होने से महाजन किसी प्रकार किसान से अपना रुपया निकालना चाहता है। महाजन भी समिति के मेम्बर बन तो सकते ही हैं। बस वे उस समिति से किसान को रुपया कर्ज दिला देते हैं। यह रुपया वे किसानों से खुद दिये हुए कर्ज की अदायगी मे वसूल कर लेते हैं। और फिर महाजन साहब समिति की मेम्बरी छोड़ देते हैं। बाद में किसान के रुपया चुका न सकने के कारण समिति का काम रुक जाता है और फिर सब चौपट हो जाता है। परन्तु समिति के इन गुण-दोषों के बारे में बताने की यह जगह नहीं है। आगे चलकर साख के सम्बन्ध में बताते समय इन संस्थाओं के बारे में और खुल-कर बतायेंगे।

हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि हमको अपने अपढ और मूर्ख किसान समूह को पढ़ा-लिखाकर एक ऐसे व्यापारी मंडल में बदल देना है कि वे आजकल के व्यापारी मंडल का सफलतापूर्वक सामना कर सकें। इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि किसानों की पुश्तैनी आलस्य और असमर्थता को उनसे भगा दिया जाय। व्यापारियों के दिमाग में यह बात अच्छी तरह बुधा देने की जरूरत है कि वे उचित लाभ लेते हुए किसानों से मिलकर काम करें। अब तो व्यापारियों को कन्ट्रोल में लाने के लिये तथा बड़ी मन्डियों में सुप्रबन्ध के लिये कमेटियाँ बनाई जाएँगी। ये कमेटियाँ उन सब बेईमानी और दिक्कतों को दूर करने तथा किसान को ठहरने की सुविधा देंगी।

ग्रामीण बाजार

प्रतिदिन के काम के लिये गाँव में कुछ दूकानें तो रहती ही हैं जैसे तेली की दूकान, मोची की दूकान, बढ़ई की दूकान, भुँजवा की दूकान, इत्यादि। परन्तु बात यह है कि गाँव का बढ़ई, चमार; तेली वगैरह हर समय लकड़ी, चमड़े और तेल का ही काम नहीं करते। अधिकतर इनके पास खेत होते हैं और ये अपना अधिक समय खेती करने में लगाते हैं। बिहारी चमार के पास चमड़े की कटाई, सिलाई आदि करने के औजार रहते हैं, परन्तु वह उनको तभी निका-

लता है जब गाँव का कोई मनुष्य उसे अपना जूता मरम्मत करने को दे जाता है। या जब कुएँ से पानी निकालने वाले चमडे का डोल फट जाता है और उसका मालिक उस डोल को ठीक कराने के लिए बिहारी के पास लाता है। बिहारी बाजार के महादेव चमार की तरह दूकान खोलकर दिन भर नहीं बैठा रहता। इसी प्रकार बाजार में दूकान कर शीतल बढ़ई लकड़ी का कोई न कोई काम करता ही रहता है, उसका मुख्य पेशा लकड़ी का काम करना है। जब उसके पास मरम्मत के लिए कोई काम नहीं रहता तब वह अपने मन से कुर्सी, मेज, खाट आदि चीजें बनाया करता है। जब कही पर चमार, बढ़ई, तेली, कुम्हार आदि दूकान खोल कर काम करते हैं, तब हम कहते हैं कि उस जगह पर बाजार है। अधिकतर गाँवों में बाजार नहीं होता। गाँव में कुछ ऐसे आदमी होते हैं जो खेती करने के अलावा बढई, चमार, कुम्हार आदि का काम भी जानते हैं। अतएव जब रामू को चारपाई की जरूरत पड़ती है तो गोपाल बढई फ़ुरसत के समय में लकड़ी को काट-छील कर रामू के लिए चारपाई बना देता है। इसी तरह जूता फट जाने पर हामिद चमार अपने कामों से फ़ुरसत पाकर जब बैठता है तो औजार निकाल कर जूते को सी देता है। यह जरूरी नहीं कि प्रत्येक गाँव में एक बाजार हो। शहरों में तो बाजारों का होना अनिवार्य है क्योंकि वहाँ तो हर समय कोई न कोई व्यक्ति माल खरीदने अथवा कोई वस्तु बनवाने के लिये तैयार रहता है। बढई, चमार, लोहार वगैरह को सुबह से शाम तक करने के लिए काफी काम रहता है। लेकिन गाँवों मे इतना काम कहाँ से आये? अतएव कुछ बडे-बड़े गाँवों में ही बाजार रहते हैं बाकी में नहीं। और जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, बाजारों की जरूरत भी वहाँ नहीं रहती है।

हाट

यदि गाँवो में बाजार हो तब भी गाँव वालों को हर एक आवश्यक चीज वहाँ नहीं मिल सकती। मान लीजिये कोई वस्तु गाँव में नहीं बनती और रामू किसान को उसकी बड़ी जरूरत है। एक दूसरे गाँव मे वह वस्तु बनाई जाती है। परन्तु उस वस्तु के बनाने वाले को क्या गरज पड़ी है कि वह रोज रामू के गाँव में उस वस्तु को बेचने आया करे। इसलिए हफ्ते मे कहीं एक बार

कहीं दो बार बाजार लगता है। उसे हाट कहते हैं। ग्राम समूह के बीच के किसी एक गाँव को हाट के लिए चुन लिया जाता है। हाट के दिन उस गाँव के चारों ओर स्थित गावों से लोग अपने-अपने वस्तुओं को लेकर आते हैं। कोई तरकारी-भाजी बेचने लाता है, कोई टोकरी, कोई रस्सी, कोई कपड़ा। इसी तरह से जो जिसके पास होता है, वह उसे बेचने के लिए लाता है। तेली तेल लाता है, लोहार फावड़ा-कुदाली लाता है, और चमार जूता, चमड़े का ढोल आदि चीजें लाता है। बेचने वालों के अलावा गाँवों से माल खरीदने वाले भी आते हैं। जिसको जिस वस्तु की जरूरत होती है वह उस वस्तु को खरीद लेता है। अधिकतर हाट दोपहर के बाद लगता है और रात होते-होते उठ जाता है।

गाँव का मेला

हाट के अलावा त्योहारों पर मेला लगता है। चूँकि त्योहार साल भर मे एक बार आते हैं इसलिये मेला साल में एक बार लगता है। मेला किसी कस्बे या बड़े गाँवों में लगता है। उसमें बड़ी भीड़ होती है। मेले मे दूर-दूर के गाँवों से लोग आते हैं। जब मेला लगता है तो गाँव में सब लोगों के घर पर मेहमान आते हैं। झुन्ड के झुन्ड लोग देखने आते हैं। मेले मे जो भीड़ होती है, उसमें यदि कोई छूट जाय तो बड़ी मुश्किल से मिलता है। इसलिये मेले में सब लोग इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहीं कोई भटक न जाय। ऊपर बताई बात से यह मालूम पड़ जाता है कि मेले में सैकड़ों आदमी इकट्ठे होते हैं। मेले में तरह तरह की दूकानें आती हैं। कहीं खिलौने बिकते हैं, कोई कागज के फूल, चिड़ियाँ और बाँसुरी बेच रहा है। कहीं फल बिकते हैं, कहीं मिठाई और कहीं बरतनों के ढेर लगे रहते हैं। मेले मे खेल भी बहुत होते हैं। मेले में हिंडोले भी गड़ते हैं। लड़के और बड़े लोग उन पर झूलते है। कहीं-कहीं बड़े मेले लगते हैं। जो चीजें गाँव के हाट व बाजारो मे बिकने नहीं आती वे मेलो मे बिकने आती हैं। बड़े-बड़े मेलों में गाय, बैल, घोड़े आदि भी बिकने आते हैं।

हाट और मेले का महत्व

गाँव और गाँव के रहने वालो का ख्याल रखते हुए यदि हाट और मेलों के बारे में सोचा जाय तो वे काफी महत्व रखते हैं। हाटों में अधिकतर अनाज

आदि की बिक्री अधिक होती है। इसके विपरीत मेलो में खेल-खिलौने और मिठाई के अलावा दस्तकारी की वस्तुओ और जानवरों की खरीद-फरोख्त होती है। अतएव हाट तो किसानो के लिए उपयोगी होते हैं और मेले कारीगरों और दस्तकारो के लिए। इसके अलावा यदि गॉव भर का ख्याल किया जाय तो हाट मेलो से वढकर स्थान रखते हैं। क्योंकि हाट में अनाज, तरकारी व हाथ की बनी हुई चीजें बिकने आती हैं। व्यापारी लोग अक्सर हाटों से अनाज खरीद ले जाते हैं।

हाट और मेले का संगठन

परन्तु कुछ गॉव से हाट व मेले का स्थान पास नहीं पड़ता। यह बहुत जरूरी है कि हाट लगाने के स्थान इस प्रकार चुने जायॅ कि आस-पास के गॉव के निवासियो को उसमें पहुँचने का मौका मिले। इसके अलावा किसान के ठगे जाने से बचाने के लिए बाजार भाव का ज्ञान कराना बड़ा आवश्यक है और आजकल न तो हाट ही व्यवस्थित रूप में लगते हैं और न मेले ही। हलॉकि इनके जरिये किसान व गॉव के कारीगर अपना बहुत कुछ माल बेच सकते हैं, परन्तु देखा जाता है कि इनमें और खास कर मेले में, मजा उड़ाने तमाशा देखने आदि की गरज से लोग ज्यादा आते हैं। हलवाइयों, खिलौने बेचने वालों, चटपटे बेचने वालों और झूला झुलाने वालों को तो काफी आमदनी होती है, परन्तु औरों की बिक्री बहुत कम होती है। इस बात की बड़ी जरूरत है कि इनका इस प्रकार से संगठन किया जाय कि हाट और मेलों में बड़ी तादाद में बेचने और खरीदने वाले आयें और खूब खरीद-फरोख्त होवे, लेकिन इस तरह से कि किसानों को धोखा न खाना पड़े।

अभ्यास के प्रश्न

१—उन व्यापारियों की सूची तैयार कीजिये जो आपके गॉव से अनाज खरीदकर मण्डी मे ले जाते हैं। यह भी पता लगाइये कि किस व्यापारी ने अनाज आपके गॉव मे किस भाव में खरीदा और उस समय पास की मण्डी में उसका क्या भाव था।

२—तैयार होते ही किसानों को फसल क्यों बेच देनी पड़ती है? इससे उनको क्या हानियाँ होती हैं? ये हानियॉ कैसे रोकी जा सकती हैं?

३—आपके जिले में खेती की उपज की बिक्री का क्या ढंग है ? किसान को अपने माल की उचित कीमत क्यों नहीं मिलती ?

४—क्या आपके गाँव के पास से पक्की सड़क गई है ? यदि नहीं, तो उनके न होने से आपके ग्रामवासियों को क्या असुविधाएँ होती हैं ?

५—यदि आपको अपने जिले में नई सड़कों के बनवाने का कार्य सौंपा जाय तो आप किस प्रकार की सड़कें कौन से स्थान से कहाँ तक बनवावेंगे ?

६—बनिये से किसानों को क्या लाभ है ? क्या यह जरूरी है कि उनको हटाने के लिए सहकारी बिक्री समितियाँ बनाई जायँ ?

७—सहकारी बिक्री समिति का संगठन समझाइये और उसके द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों का दिग्दर्शन कीजिये।

८—आपके गाँव के आस-पास किन-किन स्थानों में किस किस दिन हाट लगते हैं ? इन हाटों में कौन-कौन सी वस्तुएँ बिकने को आती हैं ? इन हाटों से किसानों को क्या लाभ होते हैं ? इन हाटों की व्यवस्था में किन सुधारों की आवश्यकता है ?

९—हाट और मेले से किसानों को क्या लाभ होते हैं ? जिस हाट को देखा हो उसका वर्णन कीजिए। (१९५१)

१०—साप्ताहिक हाट और मेलों का ग्रामीणों के लिए क्या महत्व है ? गाँव का बनिया कौन सी आर्थिक सेवा करता है ? (१९४३)

११—गाँव के कारीगरों को अपनी बनी हुई वस्तुएँ बेचने में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और वे किस प्रकार दूर की जा सकती हैं ?

१२—आपके गाँव में ग्वालों की संख्या कितनी है ? प्रतिदिन उनके यहाँ कितना दूध होता है और इसके बेचने का क्या प्रबन्ध है ? शेष दूध का क्या उपयोग किया जाता है ?

१३—यदि आपको अपने गाँव में सहकारी बिक्री समिति स्थापित करने को कहा जाय तो आप अपना कार्य किस प्रकार आरम्भ करेंगे ?

१४—आपकी प्रादेशिक सरकार किस प्रकार किसानों की बिक्री सम्बन्धी दिक्कतें दूर करने की कोशिश कर रही है ?

१५—आपके जिले मे कृषि पदार्थों की बिक्री कैसी होती है? इसमे क्या दोष है? बिक्री के ढंग मे सुधार कैसे किया जा सकता है? (१६४४, ५२)

१६—किसान को माल के बिक्री मे क्या कठिनाइयाँ होती हैं? (१६४७)

१७—वर्तमान भारत मे वस्तुओं के भाव क्यो अधिक हैं? उत्पादकों और व्यापारियों द्वारा अत्यधिक मुनाफा का लेना कहाँ तक इसका कारण है? (१६४८)

१८—खाद्यान्न के अधिक मूल्यो से किसानो को कहाँ तक लाभ पहुँचा है? (१६४६)

१६—ग्रामीण किसान तथा कारीगर अपने माल को किस ढग पर बेचते है? उनके विक्रय के ढङ्ग मे क्या उन्नति की जाए? (१६५३)

ग्यारहवाँ अध्याय

वितरण (Distribution)

वितरण क्या है?

अभी तक हमने केवल इस बात पर विचार किया है कि धन किस प्रकार उत्पन्न किया जाता है, परन्तु यह हमने अब तक नहीं बताया है कि उत्पत्ति के कार्य मे हाथ बँटाने वालों को उत्पन्न किये धन का हिस्सा किस प्रकार मिलता है। इसके पहले कि यह बताया जाय कि प्रत्येक का किस प्रकार हिस्सा लगाया जाता है, यह याद दिलाना जरूरी मालूम पड़ता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति के साधन क्या-क्या हैं? तुम जानते हो कि भूमि का होना अनिवार्य है। जमीन के अलावा मेहनत करना जरूरी है। इसके अलावा धन भी लगाना पड़ता है और साथ ही साथ इन्तजाम की भी जरूरत है। जो इन्तजाम करता है, अधिकतर वही साहसी भी होता है। किसी काम के लिए जोखिम उठाने वाला भी होता है। मिलों में इन्तजाम करने वाले को मैनेजर कहते हैं और जोखिम उठाने वाले को साहसी कहते हैं।

अतः प्रत्येक तैयार या पैदा की हुई वस्तु मे पाँच अश होते है। प्रथम,

प्रकृति-दत्त भूमि जिसमें वह सब वस्तुएँ शामिल हैं जो तैयार रूप में निहित हैं । द्वितीय, मजदूर का श्रम । तृतीय, पूँजीपति की पूँजी का उपयोग । चतुर्थ, मैनेजर की व्यवस्था और पञ्चम, साहसी का साहस । अत: वस्तु की प्राप्त कीमत में से भूमि के अंश को छोड़ कर शेष में से भूमि के मालिक, श्रमिक, पूँजीपति मैनेजर और साहसी का अपना-अपना अंश दे देना चाहिये । यही होता है और इसी को वितरण कहते हैं ।

वितरण कैसा होता है

जमीन जिसकी होती है वह कुछ रुपये लेकर अपनी जमीन दूसरों को लगान पर देता है । किसान जमींदारों से लगान पर खेत ले लेते हैं । मेहनत करने वाले मजदूर को अपने श्रम के बदले में मजदूरी मिलती है । रुपया कर्ज देने वाला महाजन कर्जदार से सूद वसूल करता है । इन्तजाम करने वाले को वेतन मिलता है । वितरण के अन्तर्गत यह अध्ययन करते हैं कि विभिन्न साधनों को क्या हिस्सा मिले और कैसे । और इन सब के बाद जो कुछ बचा रहता है वह साहस करने वाले का मुनाफा कहलाता है । इस प्रकार उत्पन्न किये धन में से पाँच हिस्से किये जाते हैं जिनको लगान, मजदूरी, सूद, वेतन और मुनाफा कहते हैं ।

खेती में वितरण

हमारे देश के बहुत किसान ऐसे हैं जिनके पास निज की जमीन नहीं रहती और न पूँजी या रकम ही होती है । जमीन तो वे दूसरों से लेते हैं और पूँजी महाजन से । वे तो केवल मेहनत ही करते हैं । फिर मेहनत करने के लिए भी वो किसान कभी-कभी मजदूरों को लगा लेता है । अक्सर खेत सींचने, काटने इत्यादि के लिए मजदूर नौकर रक्खे जाते हैं । फसल काटने पर जब उपज तैयार होती है तब पहले तो उन्हें लगान चुकाना पड़ता है । इसके बाद जिस महाजन से किसान कर्ज लेकर बीज आदि मोल लाता है और अनाज पैदा होने तक खाता-पीता है, उसे सूद व कर्ज का रुपया अदा करना पड़ता है । यह कोई जरूरी नहीं कि वह कर्ज का सारा रुपया लौटा दे । महाजन तो सूद चाहता है । जब तक उसे सूद का रुपया मिलता जाता है वह कुछ नहीं कहता । इसके सिवा मजदूरों की मजदूरी भी तो किसान ही देते हैं । ज्यादातर फसल तैयार

होने के पहले ही वह दे दी जाती है, जहाँ नहीं दी जाती वहाँ फसल में से हिस्सा दिया जाता है। बाकी जो कुछ रह जाता है वह किसान के हाथ लगता है। कहीं कहीं लगान, सूद और मजदूरी एक ही मनुष्य को मिलती है और कहीं-कहीं भिन्न भिन्न आदमियों को। जिसकी जमीन है वही यदि पूँजी भी लगाये और मेहनत भी करे तो सब हिस्से उसे ही मिल जायँगे। लेकिन भारत में ऐसा हाल बहुत कम है। यहाँ तक कि जमीन का मालिक सरकार ही समझी जाती है। अतएव यदि कोई आदमी अपनी ओर से पूँजी व मेहनत दोनों ही लगाये तब भी उसे सरकार को लगान या मालगुजारी देना पड़ता है। और जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, यहाँ के किसानों को पूँजी भी महाजन से उधार लेनी पड़ती है। इससे उन्हें जमीन से पैदा होने वाली सम्पत्ति का केवल मजदूरी और मुनाफे वाला अंश मिलता है। चूँकि उन्हें मजदूरी भी लोगों से करानी पड़ती है, इसलिए उन्हें मजदूरी में से भी कुछ हिस्सा औरों को बाँट देना पड़ता है।

यह सब करने के बाद शायद ही कुछ बचता हो, फिर मुनाफे की कौन कहे। सरकार लगान का बन्दोबस्त हर बार बीस तीस साल में करती है। लगान इतना बढ़ गया है कि हर साल हजारों किसानों को लोटा-थाली बेचकर भीख माँगने की नौबत आ जाती है। जब लगान चुकाने में तो बेचारे किसानों की यह हालत होती है तो कैसे कहा जा सकता है कि आजकल किसानों को खेती में मुनाफा मिलता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से मुनाफा होना अवश्य चाहिए, लेकिन जिस दशा में हमारे किसान खेती करते हैं उसमें यदि मुनाफा और पूरी मजदूरी न मिले तो कोई ताज्जुब नहीं है।

लगान (Rent)

अस्तु, तुम पूछ सकते हो कि लगान शुरू कब से हुआ और वह किस सिद्धान्त के अनुसार लगाया जाता है। **जमीन, खेत, जंगल, खान आदि को व्यवहार में लाने के लिये उसके स्वामी को दी जाने वाली रकम को लगान कहते हैं।** जमीन पर कब और किसका अधिकार हुआ और कैसे? शुरू में आदमियों की संख्या कम थी और उनको देखते हुए जमीन बहुत अधिक थी। अतएव जो जहाँ चाहते खेती करते थे। जितनी जमीन जोतना

चाहते थे, जितनी लकड़ी काटना चाहते थे, जितनी धातु खान से खोदना चाहते थे, सब स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकते थे। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं था। उस समय 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला मामला सब जगह चलता था। इसके बाद जनसंख्या जैसे-जैसे बढ़ती गई वैसे ही वैसे भूमि की माँग भी बढ़ती गई। भूमि का क्षेत्र परिमित होने के कारण जिसके अधिकार में जो जमीन आ गई वही उसका मालिक बनने लगा। अब अगर किसी के पास जरूरत से ज्यादा जमीन है तो वह उसके उपयोग करने का अधिकार दूसरे को देकर उसके बदले में उत्पत्ति का कुछ हिस्सा लेना शुरू कर दिया। इस हिस्से का नाम ही लगान है।

प्राचीन काल में जमीन का मालिक राजा नहीं होता था लेकिन राजा खेती करने वालों से उपज का छठा हिस्सा लिया करता था। बस राजा का सिर्फ इतना ही हक था। यह एक तरह का टैक्स (कर) कहा जा सकता है।

लगान दो तरह से निश्चित होते हैं—एक तो रिवाज के अनुसार दूसरा चढ़ा ऊपरी से। भारत में कहीं कहीं रीति रिवाज के मुताबिक पैदावार का आधा, तिहाई, चौथाई, या पाँचवा भाग के बराबर लगान लिया जाता है। भारत में चढ़ा ऊपरी वाली रीति भी प्रचलित है अर्थात् जो सब से अधिक लगान देता है वही जमीन पाता है। इसके अलावा लगान दो तरह के होते हैं। एक तो कुल लगान होता है। जिसे बोलचाल में लगान ही कहते हैं। दूसरा आर्थिक लगान होता है। आर्थिक लगान का हिसाब इस प्रकार लगाया जाता है कि पूरी उपज के मूल्य में से उसकी खेती का सब प्रकार का लागत खर्च निकाल दिया जाता है। बची हुई सारी रकम आर्थिक लगान कहलाती है। कुल लगान में आर्थिक लगान के अलावा जमीन में लगे हुए धन का सूद और जमीन के मालिक का मुनाफा भी शामिल रहता है। अब तक भारत में लगान दो प्रकार से वसूल की जाती थी। कुछ प्रदेशों में किसान से सरकार सीधे लगान वसूल करती थी। इस प्रथा को रैयतवारी कहते थे। अन्य जगहों में जमींदारी प्रथा चालू थी। अब सभी प्रदेशों में, जैसे—उत्तर प्रदेश, मद्रास, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्य भारत आदि में जमींदारी प्रथा का कानून द्वारा अन्त कर दिया गया है। जमींदारी प्रथा में सरकार की

ओर से जमीन का इन्तजाम जमींदारो के हाथ मे रहता था। निश्चित दर के लगान पर किसानो को खेत जोतने का अधिकार दे देते थे। ऐसी हालत मे किसान जमींदार को आर्थिक लगान नही देता। उसके बजाय वह किस दर से लगान देता है, यह सरकार पहले से ही निश्चित कर देती है। जमीदार भी किसान से वसूल होने वाली सारी रकम सरकारी खजाने मे नही जमा करता। उसे जो रकम सरकार को देनी पड़ती है वह मालगुजारी कहलाती है और वह भी सरकार द्वारा पहले से निश्चित कर दी जाती है। यह रकम प्राय किसानों से मिलने वाले लगान का ४०% या ५०% होता है।

यह जरूरी नहीं कि दो बराबर क्षेत्र वाले जमीन के टुकड़ों का लगान बराबर हो। उन टुकडो के गुण भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, अतएव उनके लगान मे भी फर्क होगा। जब आबादी के बढने के कारण अथवा पास से रेल निकल जाने के कारण जमीन की माँग बढ़ जाती है तो लगान भी बढ जाता है। जैसा कि पहिले बताया गया है, भारत मे पहले रीति रिवाज के मुताबिक ही लगान लिया जाता था। जब तक किसान नियम के मुताबिक लगान देता रहता था तब तक उसे बेदखल नहीं कराया जा सकता था। लेकिन फिर आबादी की वृद्धि और उपज के बाजार का क्षेत्र बढने के कारण भूमि की माँग बढ गई। इससे लगान सम्बन्धी नियम टूट गया और अब अधिकाश किसानो का लगान बन्दोबस्त के समय सरकार निश्चित करती है।

मजदूरी (Wages)

भारतीय किसान साधारणतया यदि अपनी ओर से कोई चीज लगाता है, तो वह उसकी मेहनत है। इसके बदले मे उसे मजदूरी मिलना चाहिए। लेकिन उसे मजदूरी देने वाला तो कोई होता नहीं, वह स्वय जो उपज पैदा करता है उसी मे उसकी मजदूरी शामिल रहती है। बढ़ई, लोहार आदि जो अपने औजारों से अपनी ही भूमि पर काम करते है, उन्हे जो मजदूरी मिलती है उसमे उनकी मजदूरी ही नहीं बल्कि जमीन का लगान और औजार मे लगे धन का सूद भी मिला रहता है।

अस्तु, आजकल वस्तु बनाने वाले मजदूरो को उनकी बनवाई वस्तु नहीं दी जाती। यदि दी जाय तो बड़ी मुश्किल आ पडे। यदि मेहनत के बदले

मजदूरी के रूप में खान के मजदूर को कोयला, सिगरेट के श्रमिक को सिगरेट, मोटर के पहिये बनाने वाले को मोटर के पहिये, किताब छापने वाले को किताब ही दी जायँ तो इन वस्तुओं का वह क्या करे? मजदूर को तो अपना पेट पालने के लिये आटा दाल और पहनने को कपड़ा मिलना चाहिए। मजदूरी के बदले कोयला मिलने से उसे हर वक्त और हर जगह पर कोयले के बदले उसकी आवश्यकता की वस्तुएँ तो मिल नहीं सकती हैं। इसलिए आजकल मजदूरों की मजदूरी रुपये पैसे में चुकाई जाती है। इस प्रकार की मजदूरी को नगद मजदूरी कहते हैं।

असली मजदूरी और नकद मजदूरी में बहुत अन्तर होता है। मजदूर अपनी मजदूरी के पैसों से खाने पीने की वस्तुएँ, कपड़ा आदि मोल लेता है। यदि मजदूरी के पैसों से वह उन वस्तुओं को अधिक मात्रा में खरीद सकता है तब तो असली मजदूरी अधिक कही जायगी; परन्तु यदि वह उनसे कम सामान खरीद सकता है तब हम कहेंगे कि उसकी असली मजदूरी घट गई। अतः यह कोई जरूरी नहीं है कि नगद मजदूरी बढ़ने से असली मजदूरी भी बढ़ जाय। आजकल मध्यम श्रेणी की आय ड्योढ़ी दुगुनी हो गई है, परन्तु वस्तुओं के भाव चौगुने हैं। अतः उनकी असली मजदूरी घट गई है।

मजदूरों को नगद मजदूरी तो अधिकतर कारखानों में ही मिलती है और यह जोर डाला जाता है कि मजदूरी की रकम इतनी हो कि मजदूर अपना भरण-पोषण कर सकें। भारत में दिन पर दिन जनसंख्या बढ़ती ही जाती है। इसलिए मजदूरों की तादाद बढ़ती जाती है। फलतः आपस में काम पाने के लिए लाग-डाट चलती है। काम देने वाले इसका फायदा उठाकर मजदूरी कम कर देते हैं। मजदूरी की पूर्ति के सम्बन्ध में जानने योग्य बात यह है कि यह जल्दी घटती बढ़ती नहीं। नये कारखानों के खुलने पर ज्यादातर मजदूरी और जगह की अपेक्षा चढ़ी हुई ही रहती है। एक बात और है। कारखानों या किसी व्यापारी के दफ्तर में काम करने के लिए मजदूर का पढ़ा लिखा होशियार और विश्वासपात्र होना बहुत जरूरी है। हमारे मजदूर अधिकतर पढ़े लिखे नहीं होते। अतएव वे नहीं जानते कि कहाँ अधिक मजदूरी मिलती है। मजदूरी बाँटने वाले तथा अन्य लोग उन्हें खूब धोखा देते हैं। खेतों में काम करने

वाले मजदूरों को, जो कि अधिकतर जिन्स में मजदूरी पाते हैं, बहुत कम मजदूरी मिलती है। फसल काटने के समय उन्हे कुछ ज्यादा मजदूरी मिलती है और उसमे भी उनका पेट नहीं भर सकता, फिर और दिनों की तो बात ही क्या। अधिकतर बीमारी तथा विवाह के लिए मजदूर उधार लेता है और जब तक ऋण अदा न हो जाय तब तक वह ऋणदाता के यहाँ मुफ्त मे या चवैनी पर काम करता है। पुश्त-दर पुश्त गुजर जाते हैं परन्तु ऋण अदा नहीं होता और ऋणी मजदूर नहीं, गुलाम बना रहता है। इसे दूर करना चाहिये। अस्तु, जैसा योरप वगैरह मे होता है वैसे ही भारत मे यह बड़ा जरूरी है कि मजदूरों को इतनी मजदूरी मिले जिसमें उन्हे जीवन की आवश्यक वस्तुए प्राप्त हो सकें। भारत सरकार ने एक नया राजनियम बना दिया है जिसके अतर्गत प्रत्येक मजदूर की निम्नतम मजदूरी निश्चित की जायगी।

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि **"मजदूरी की माँग और पूर्ति पर मजदूरी निर्धारित होती है"** अगर काम धन्धा बढे, कारखाने बहुत खुलें तो मजदूरों की माँग बढ जावेगी और मजदूरी भी बढ जावेगी। और अगर किसी कारण मजदूरों की माँग कम हो गई तो मजदूरी भी कम हो जावेगी। इसी प्रकार यदि माँग के मुकाबले मे मजदूरों की सख्या अधिक हुई तो मजदूरी कम होगी और यदि मजदूरों की कमी हुई तो मजदूरी अधिक होगी। लेकिन यह ध्यान में रखने की बात है कि जितनी मजदूरी मजदूरों के रहन सहन के दर्जे को बनाए रखने के लिए जरूरी है उतनी मजदूरी तो मजदूरों को देनी होगी, नहीं, तो नहीं रह सकेंगे।

सूद (Interest)

पूँजी का व्यवहार करने के बदले पूँजीपति को जो कुछ दिया जाता है उसे सूद या व्याज कहते हैं। सूद के कारण धन बढ़ता है।

सूद के दो भेद हैं—**कुल सूद** और **वास्तविक सूद**। साधारण भाषा मे जिसे सूद कहते है उसी को अर्थशास्त्र मे कुल सूद कहते है। अगर श्याम ने बारह रुपये सैकडे सालाना पर एक सौ रुपया उधार लिया तो वर्ष भर का "कुल सूद" बारह रुपया हुआ। इस रुपये को उधार देने में ऋणदाता का कुछ हिसाब-किताब रखने का व्यय होगा, कुछ रुपया वापिस न मिलने का जोखिम है। अगर इन दोनों बातों का अश निकाल दिया जाय तो **वास्तविक**

सूद बच जाएगा। हम कह सकते हैं कि वास्तविक सूद केवल पूँजी के व्यवहार का प्रतिफल है।

सूद की दर का निश्चय पूँजी की माँग और पूर्ति से होता है। अगर पूँजी की माँग अधिक है तो सूद की दर अधिक होगी। अगर पूँजी की माँग कम है और पूर्ति अधिक है तो सूद की दर कम होगी। लेकिन अधिकतर उधार देने वालों की कमी रहती है या यों कह लें कि किसान मजदूर आदि केवल दो-एक महाजनों को जानते हैं। अतः उनकी अज्ञानता के कारण उन्हें सूद की दर अधिक देनी पड़ती है। गाँव का महाजन और मिल के पास रहने वाला बनिया महाजन तो अधिकतर सूद की दर दो पैसे से लेकर एक आने की रुपया प्रति मास तक आसानी से ले लेते हैं। परन्तु जब काबुली उधार देते हैं तो वे दो आने की रुपया तक सूद लेते हैं क्योंकि वे ज्यादातर अधिक गरीब और गैर जमानत को बिना अधिक पूछ-ताछ के रुपया देते हैं और रुपया न मिलने पर अदालत में जाने की जगह अपने डंडे का भरोसा रखते हैं। सहकारी साख समितियाँ १२-१८ प्रतिशत वार्षिक पर उधार देती हैं क्योंकि उन्हें सस्ते दर पर रुपया मिलता है। इस सम्बन्ध में हम विशेष हाल आगे बताएँगे। प्रादेशिक सरकार भी रुपया उधार देती है और उसकी दर समिति से भी कम होती है। व्यापारी बैंक और इम्पीरियल बैंक ६ प्रतिशत सालाना सूद पर दे देती हैं। उन्हें सहकारी समिति से भी सस्ते पर रुपया प्राप्त होता है। दूसरे व्यापारी बैंक ज्यादातर रुपये वाले व्यापारी को तथा मिल वालों को पूँजी उधार देते हैं। अतः उनके रुपये वापस न मिलने का जोखिम कम रहता है। यह भी बात है कि शहरों में उधार देने वाले बैंकों की कमी नहीं रहती। पूँजी की पूर्ति काफी होने से सूद की दर घट जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सूद की दर माँग और पूर्ति पर निर्भर रहती है।

हमारे किसानों की हालत इतनी खराब रहती है कि उन्हें अपने श्रम का पूरी तौर से बदला भी नहीं मिलता। फसल तैयार होने नहीं पाती कि जमींदार का कारिन्दा, मजदूर, महाजन सब उसे लूटने आ पहुँचते हैं। महाजन उसे बीज खरीदने, बैल, मोल लेने आदि कार्यों को रुपया उधार देता है। हमारे महाजन गाँव के अपढ़ किसानों को खूब लूटते हैं। तीस-चालीस रुपये,

देकर पचास के रुक्के पर अँगूठा लगवा लेना तो आसान काम है। सूद की दर पैसे दो पैसे रुपये से लेकर आना-दो आना रुपया माहवार तक होती है। छोटे किसानों का रुपया उधार लिये बगैर काम नहीं चल सकता।

शहरों में सेठ साहूकार जायदाद रेहन करके या गहना गिरवी रखकर रुपया कर्ज देते हैं। परन्तु यह जरूरी नहीं कि रुपया उधार देने के लिए कोई वस्तु गिरवी रक्खी जाय। अक्सर महाजन विश्वासपात्र सज्जनों को हाथ का रुक्का लिखा कर ही रुपया उधार दे देते हैं। कभी कभी रुक्के में फेर पड़ने से या उसके खो जाने पर महाजन को असल में भी हाथ धोना पड़ता है। आजकल यदि देखा जाय तो रुपया के लेन-देन के बगैर कुछ काम ही नहीं चल सकता। विदेशों से करोड़ों रुपये का माल आता है और वहाँ जाता है। व्यापार में उन्नति करने के लिए यह बड़ा जरूरी है कि उनमें रकम लगाई जाय। व्यापारी के पास पर्याप्त रकम तो होती नहीं। उसे बैंकों से रुपया उधार लेकर लगाना पड़ता है। कहाँ तक बतायें, सरकार को भी कर्ज लेना पड़ता है। कर्ज में कोई बुराई नहीं समझी जाती। लेकिन यह बात उसी वक्त तक लागू होती है जब कर्ज से होने वाली उन्नति से सूद से अधिक फायदा होता रहता है। लेकिन भारतीय किसान और मजदूर तो फिजूल खर्ची और अनुत्पादक कार्य के लिए भी कर्ज लेते हैं। विवाह-शादी या जन्म मरण सम्बन्धी रिवाज में बहुत खर्च कर दिया जाता है। फिर अपने रोजाना खर्च के लिए भी किसान रुपया उधार लेते हैं। यह अनुत्पादक होता है। उनमें सूद का मिलना तो अलग रहा असल का भी खातमा हो जाता है। इसके अलावा किसानों की साख और हैसियत कम होने से उनसे अधिक दर से सूद लिया जाता है। अधिक सूद की दर का यह भी कारण है कि कृषि अनिश्चित है। अतः यह निश्चय नहीं है कि रबी या खरीफ की फसल के बाद रुपया अवश्य वापस मिल जायगा। गिरी अवस्था के कारण हमारा किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में पलता है और कर्ज में मर जाता है।

वेतन

व्यवस्था कार्य के लिए मैनेजर को वेतन मिलता है। आजकल व्यवस्था कार्य करना विशेषज्ञ का काम हो गया है। फलतः अगर मन्दी और

सुस्ती आने पर कारखानों का काम बन्द प्राय होता है तब भी मैनेजर मोटी-मोटी तनख्वाह डकारते रहते हैं अमेरिका में ऐसा अक्सर देखा गया है कि जब मजदूर निकाले जाते हैं और उनकी मजदूरी कम की जाती है तब भी मैनेजर अछूता बचा रहता है। जहाँ तक गाँवों का प्रश्न है, किसान के खाने का व्यय ही नहीं चलता, उसके वेतन और मुनाफे की तो बात ही नहीं उठती।

मुनाफा या लाभ (Profit)

साहस का प्रतिफल मुनाफा या लाभ है। बिना लाभ कोई काम नहीं होता। हमारा किसान ही इसमें परे है। कारण यह कि वह दूसरा धंधा ढूँढता नहीं वह कृषि को व्यापार नहीं वरन् अपना जीवन-क्रम समझता है। तथा वह बाप-दादों की भूमि और पेशे को छोड़ उनकी आत्मा दुखी नहीं करना चाहता। अन्यथा हर व्यापार उत्पादन कार्य आदि के लिए लाभ अनिवार्य है।

मुनाफे के दो भेद है—कुल मुनाफा और वास्तविक मुनाफा। एक व्यापारी सौ रुपये की वस्तु ११० रु० में बेचता है। हम कहेंगे कि उसे १०% का कुल मुनाफा हुआ। परन्तु इस दस रुपए में उसकी पूँजी का सूद, जमीन, किराया बीमे की रकम तथा अप्रत्याशित वृद्धि शामिल है। अप्रत्याशित वृद्धि से हमारा मतलब उस वृद्धि से है जिसका व्यापारी को बिल्कुल ध्यान नहीं था तथा जिसकी उसको पहले से कोई आशा नहीं थी। कुल मुनाफे में उपर्युक्त अंश निकाल देने पर वास्तविक मुनाफा बच रहता है।

मुनाफा भी साहस की माँग और पूर्ति पर निर्भर है और उन्हीं के द्वारा निश्चित होता है। अगर चीनी के उद्योग खोलने के लिए साहसियों की कमी न हो तो बहुत से चीनी के कारखाने खुल जाएँगे और प्रत्येक साहसी को कम मुनाफा होगा। जहाँ केवल एक दो साहसी होंगे वहाँ वे अधिक लाभ कर सकते हैं। उदाहरणार्थ भारतीय लोहे के उद्योग में अधिक लाभ है। यह वास्तविक मुनाफे की बात हुई। अगर हम कुल मुनाफे की दृष्टि से विचार करें तो हम कह सकते हैं कि उत्पादन-व्यय कम होने तथा अधिक दाम वसूल करने से लाभ बढता है। अत मिल मालिक उसी मजदूरी में अधिक काम कराना चाहता है और मजदूरी भी कम करना चाहता है। माल जितनी जल्दी बिकता है उतनी ही बिक्री अधिक होती है और

मुनाफा भी बढ जाता है । अगर बाजार में प्रतियोगिता हुई तो क़ीमत और लाभ घट जायगा । अधिक जमीन तथा मन्डी के पास होने से मुनाफा अधिक होता है । बुद्धिमानी और दूरदेशी से प्रबन्ध करने पर भी मुनाफा बढ जाता है ।

कुल मुनाफे की दृष्टि से ही हम यह भी कह सकते हैं कि प्रदेश और नगर में कुछ ऐसे बड़े सौदागर होते हैं जो देश के अन्दर और बाहर के भाव का हर वक्त पता लगाये रखते हैं और वे एक ओर से माल खरीद कर दूसरी ओर बेच लेते हैं । बीच का मुनाफा वे खुद खा जाते हैं । कुछ सौदागर जिन्हें आढ़तिया कहते हैं, बनियों या किसानों से माल खरीदकर बड़ी-बड़ी मन्डियों में या बन्दरगाहों में भेज देते हैं । ये लोग अपने काम में बड़े चतुर होते हैं और किसानों तथा बनियों की अज्ञानता से खूब लाभ उठाते हैं । दूकानदारी में मुनाफे का एक विचित्र ही ढङ्ग रहता है । वहाँ पर तो दूकानदार हर एक ग्राहक से मोल करता है, दाम बँधे तो होते नहीं । एक वस्तु का दाम किसी से चार आना, किसी से साढे चार आना या पाँच आना लिया जाता है । ग्राहक जितना ही अबोध होता है उतना ही दूकानदार को अधिक मुनाफा होता है ।

आजकल अधिक मुनाफा लेना व्यापार-कुशलता का चिन्ह माना जाता है । जिस मनुष्य को सबसे अधिक मुनाफा होता है लोग उसकी ही नकल करने की कोशिश करते हैं । मुनाफा बढ़ाने के लिए कम्पनियाँ अपने नौकरों से कह देती हैं कि यदि किसी निश्चित सीमा से अधिक लाभ हुआ तो इस अधिक लाभ का एक हिस्सा तुमको भी दिया जायगा । इससे मजदूर और दिल लगाकर काम करते हैं, परन्तु याद रखना चाहिए कि अधिक मुनाफा करने से कुछ थोडे से ही मनुष्यों के पास द्रव्य और रुपया इकट्ठा हो जाता है । इसके विपरीत हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि हम सबकी आवश्यकताओं को पूरा करें । मनुष्य का उद्देश्य सुख शान्ति प्राप्त करना रहता है । केवल रुपया पैसा से ही आदमी को सुख शान्ति नहीं मिल सकती । अलग किसी अध्याय में हम जमींदारी प्रथा, किसान का जमींदार से क्या सम्बन्ध रहता है इत्यादि के बारे में तुम्हें कुछ हाल बताएँगे ।

अभ्यास के प्रश्न

१—वितरण का अर्थ उदाहरणों सहित समझाइये।

२—लगान का सिद्धान्त समझाइये। अत्यधिक लगान किन दशाओं में लिया जा सकता है?

३—उत्तर प्रदेश में लगान और मालगुजारी का क्या सम्बन्ध है?

४—जमीन कितने प्रकार की होती है? उनके गुणों का लगान से क्या सम्बन्ध है? जमीन की स्थिति का लगान से क्या सम्बन्ध है?

५—नई सड़कों के बनने, नई रेल की लाइन खुलने, मनुष्य की सख्या-वृद्धि इत्यादि का लगान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

६—अनाज की मूल्य-वृद्धि का लगान पर क्या प्रभाव पड़ता है?

७—मजदूरी किस सिद्धान्त के अनुसार निश्चित होती है? भारत में मजदूरी कम होने के प्रधान कारण क्या हैं?

८—असली मजदूरी और नकद मजदूरी के भेद उदाहरणों सहित समझाइये?

६—उत्तर-प्रदेश में मजदूरों को कम से कम कितनी मजदूरी मिलनी चाहिये?

१०—सूद की दर किस प्रकार निर्धारित होती है? गाँवों में सूद की दर अधिक होने के प्रधान कारण क्या हैं?

११—किस कर्ज के लिए सूद की दर अधिक होती है—उत्पादक कर्ज के लिए अथवा अनुत्पादक कर्ज के लिए?

१२—अपने गाँव के पाँच किसानों के आय-व्यय का (कम से कम एक फसल का) पूरा हिसाब रखिए और यह पता लगाइये कि प्रत्येक को कितना मुनाफा हुआ? यदि किसी किसान का कुछ भी मुनाफा न हुआ तो उसके न होने के कारणों का पता भी लगाइये।

१३—लागत खर्च में कौन कौन सी मदें सम्मिलित की जाती हैं?

१४—किन उद्योग-धन्धों में अधिक मुनाफा होता है और क्यों?

१५—भारतीय गाँवों में सूद की दर अधिक क्यों है? उसे घटाने के लिए आप क्या उपाय करिएगा? (१६४३)

१६—विभिन्न प्रकार के ग्रामीण मजदूरों को किस प्रकार मजदूरी दी जाती है ? उसका उनकी क्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (१६४४, १६५०)

१७—गाँव के विभिन्न काम करने वालों को किस प्रकार मजदूरी मिलती है ? मजदूरी के इस ढङ्ग का उनकी कार्यक्षमता पर क्या प्रभाव पड़ता है ? (१६४४)

१८—लगान का अर्थ समझाइये । गाँव में लगान किस प्रकार निश्चित होता है ? हाल में किसान को अत्यधिक लगान से बचने के लिए क्या उपाय किए गए हैं ? (१६४५)

१६—(अ) सूद क्यों दिया जाता है ?

(ब) (i) काबुली ३६% सूद पर रुपया उधार देता है ?

(ii) सहकारी समिति १२% सूद लेती है ।

(iii) बैङ्क व्यापारियों को ६% सूद पर देती है ।

सक्षेप में समझाइए कि उपर्युक्त सूद की दरों में अन्तर क्या है ? (१६४६)

२०—मजदूरी' की व्याख्या कीजिए । गाँव का मजदूर कानपुर जाकर अढाई रुपये रोज पर काम नहीं करता और अपने ही गाँव में बारह आने रोज पर मजदूरी करना पसद करता है । इसका क्या कारण है ? (१६४६)

२१—(अ) विभिन्न कृषि मजदूर को भिन्न मजदूरी क्यों मिलती है ?

(ब) यदि कृषि-मजदूर प्रत्येक कृषि कार्य के लिए एक समान योग्य हों, क्या तब भी मजदूरी भिन्न होगी ? (१६४८)

२२—कृषि मजदूरी में विभिन्नता क्यों होती है ? क्या हर एक खेतिहर मजदूर हर एक कार्य के लिए उपयुक्त है ? (१६५१)

बारहवाँ अध्याय

औद्योगिक मजदूर

गन्दी बस्तियाँ

कारखानों और मिलों में काम करने वाले तीस-चालीस लाख मजदूरों की जिन्दगी मनुष्य की जिन्दगी नहीं कही जा सकती । मजदूर को अपनी आय का

चौथाई से छठवां भाग किराये पर व्यय करना पड़ता है। तब भी उसे एक गन्दी सी कोठरी मिलती है। इस निवास-स्थान में हवा की गुजर नहीं होती। यहाँ पाखाने और स्नान का कोई प्रबन्ध नहीं होता। गन्दा पानी निकलने और बहने के लिए उपयुक्त नालियाँ नहीं होतीं। सफाई नहीं की जाती। जो मजदूर अपने कुटुम्बियों के साथ रहते हैं उन्हें उसी कमरे में रहना, सोना, उठना, बैठना, खाना, पकाना आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। प्रति छोटी कोठरी में पांच छः प्राणी रहते हैं। देखरेख के कारण मजदूर अधिकतर अकेले रहते हैं। अतः वे जुए, शराब, वेश्यावृत्ति के शिकार बन जाते हैं। रहने वाले सांस के रोग के तथा तपेदिक के रोगों के मरीज बन जाते हैं। बालमृत्यु और मृत्यु संख्या अधिक होती है। इन सब बातों का मजदूर की कार्यक्षमता पर प्रभाव पड़ता है। उत्पादन कम होता है। वे जल्दी-जल्दी देहात भागते हैं ताकि अपने बाल बच्चों से मिल आएँ और स्वास्थ्य भी सुधार लें।

औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों को नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। बम्बई में जो जांच हुई है उससे प्रतीत होता है कि वहां ९७ प्रतिशत मजदूर एक कोठरी में रहते हैं और प्रत्येक कोठरी में ६ से ९ प्राणी तक रहते हैं। अहमदाबाद में ७५ प्रतिशत मजदूर एक कोठरी में रहते हैं। लगभग यही दशा कानपुर, मद्रास तथा कलकत्ता की है। रहने के स्थान की इस कमी का मजदूरों के स्वास्थ्य पर भयङ्कर प्रभाव पड़ता है। सच तो यह है कि केन्द्र बीमारियों के स्थायी अड्डे बन गये हैं और मजदूरों को उनमें नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। वास्तव में जिस प्रकार के मकानों में भारतीय मजदूर रहता है वे मनुष्य के लिए तो क्या पशुओं के लिए भी उपयुक्त नहीं हैं। हम नीचे कुछ विशेष किस्म के निवास-स्थानों का हाल बताते हैं।

बम्बई

बम्बई में अधिकांश मजदूर "चालों" में रहते हैं। चाल कोठरियों की एक लम्बी पंक्ति को कहते हैं जिसके सामने एक पतला बरामदा होता है। यह कई मञ्जिल की होती है और एक दूसरे से सटी होती है। दो चालों के बीच में एक गज से अधिक जगह नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि नीचे की मञ्जिल तथा ऊपर की मञ्जिलों के बीच की कोठरियों में हवा और रोशनी नहीं

पहुँचती। इन चालों में शौचगृह नहीं होते। दो चालों के बीच मे जो पतली सी गली होती है वही शौचगृह का काम देती है। इसका परिणाम यह होता है कि चालों में तेज दुर्गन्ध सदैव बनी रहती है। कोठरियों की खिड़कियाँ उस गली की ओर ही खुलती हैं जिन्हें दुर्गन्ध के कारण मजदूर बन्द रखते हैं इस कारण कोठरिया में हवा का प्रवेश नहीं हो पाता। इन चालों का कूड़ा भी इसी गली मे फेंक दिया जाता है। मल-मूत्र और कचरे की सड़ाँद भयङ्कर दुर्गन्ध उत्पन्न करती है और सारे वायुमण्डल को दूषित कर देती है।

कलकत्ता

कलकत्ते के समीप मजदूर "बस्तियों" मे रहते हैं। कलकत्ते की ये बस्तियाँ इतनी गन्दी होती हैं कि जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वे गन्दे रोगग्रस्त बिल हैं जहाँ मानवता सड़ती है। ये बस्तियाँ झोपड़ों की होती हैं। बस्ती का मालिक मजदूर को जमीन दे देता है और बाँस और फूस दे देता है तथा मजदूर स्वय झोपड़ा खड़ा कर लेता है। इने झोपड़ो में हवा और रोशनी के लिये खिडकी या रोशनदान नहीं होते तथा धुआँ निकलने के लिये कोई मार्ग नहीं होता। बस्तियो के आस-पास अनेक पोखरे और तालाब होते हैं जिनमे वर्षा का जल सड़ता है और वे रोगो के कीटाणुओ के जन्म स्थान बन जाते हैं। इन बस्तियों में स्वच्छ जल की कमी रहती है। दो बस्तियों के बीच मे ३ फीट चौड़ी गली होती है और उसमें ही बस्ती की गन्दी नाली बहती है और इन्हीं गन्दी बस्तियों मे मजदूर नारकीय जीवन व्यतीत करता है।

मद्रास

मद्रास मे अधिकाश मजदूर "चैरियो" में रहते हैं। मजदूर खाली स्थान पर स्वय अस्थायी झोपड़े या कच्ची पक्की कोठरियाँ बना लेते हैं और इन्हीं को चैरी कहते हैं। जमीन के मालिक उनसे बहुत अधिक किराया लेते हैं। इनमें नालियाँ नहीं होतीं और पानी तथा रोशनी का कोई प्रबन्ध नहीं होता। ये शहर के अत्यन्त गन्दे भाग मे होती हैं। ये कोठरियाँ या झोपडे छोटे होते हैं। उनकी दीवारें कच्ची होती हैं और तेल के पीपे को टीन से छाई जाती हैं। यह अत्यधिक गन्दी होती हैं। शौचगृहों का कोई प्रबन्ध नहीं होता इस कारण गन्दगी और भयकर रूप धारण कर लेती हैं।

कानपुर

कानपुर में अधिकांश मजदूर "अहातों" में रहते हैं। इन अहातों में एक कोठरी और उसके सामने एक बरान्डे वाले बहुत से मकान होते हैं। प्रत्येक कोठरी में एक दरवाजा होता है, कोई खिड़की नहीं होती। इनमें हवा और रोशनी का भी समुचित प्रबन्ध नहीं होता तथा गन्दगी तो हद दर्जे की होती है।

अहमदाबाद

अहमदाबाद में भी मजदूर मानों नरक में रहता है। कई-कई मजदूर मिल-कर एक कोठरी में रहते हैं जिसमें हवा और रोशनी सुलभ नहीं होती है। गन्दगी तो यहाँ इतनी होती है कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। पानी और शौचगृहों की व्यवस्था बहुत खराब होती है।

कोयले के खानों के केन्द्र

रानीगज, झरिया तथा अन्य कोयले की खानों के केन्द्रों में मजदूर "धोरो" में रहते हैं। जिन कोठरियों में मजदूर रहते हैं उन्हीं में वे खाना पकाते हैं। इनकी छतें वर्षा में चूती हैं। इनमें खिड़की या रोशनदान नहीं होते और न वहाँ सफाई रहती है। अधिकांश मजदूर गन्दे तालों के पानी को काम में लाते हैं।

ऊपर के विवरण से वह तो स्पष्ट हो गया होगा कि भारतीय कारखानों के मजदूरों को कैसी गन्दी बस्तियों में रहना पड़ता है। कुछ स्थानों पर कुछ मिल मालिकों ने सुधरी हुई बस्तियाँ बनाई हैं किन्तु वे बहुत कम हैं। हर्ष की बात है कि सरकार का इस ओर ध्यान गया है और मजदूरों के लिए अच्छे मकान बनाए जा रहे हैं।

हमारे कारखाने के मजदूरों की बढ़ती हुई बीमारियों के इलाज का भी तो कोई प्रबन्ध नहीं है। न कोई यह शिक्षा देता है कि उन्हें किस प्रकार का भोजन करना चाहिए, न उसके खेल-कूद का प्रबन्ध है, न मनोरंजन या क्लब की व्य-वस्था है। परन्तु अब मजदूरों के दिन पलट रहे हैं। इन गन्दी बस्तियों का शीघ्र ही रूप बदल जाएगा।

एक जमाना था जब मिलों और कारखानों में काम करने वालों की दशा

की कोई परवाह नहीं की जाती थी। न काम करने के घन्टे का नियन्त्रण था, न वेतन का। मुसीबत के दिनों में पैसों का कोई सिलसिला नहीं रह जाता था। उनकी शिक्षा और उनके स्वास्थ्य की किसी को चिन्ता नही थी। वह कहाँ काम करते हैं किस प्रकार के वातावरण मे काम करते है, किस प्रकार का काम करते और कैसा जीवन व्यतीत करते हैं इन सब बातों का किसी को ध्यान नहीं था।

सरकारी प्रयत्न

परन्तु अब भारत सरकार कारखानो के मजदूरों के लिये उचित सुविधाएँ और वेतनादि प्राप्त करने के लिये वचनबद्ध है। भारत सरकार **ने सामाजिक बीमे का कानून** बनाया है। मिल मालिक से और एक रुपये प्रति दिन से अधिक वेतन पाने वाले मजदूरों से चन्दा लेकर एक कोष स्थापित किया जायगा। जब कोई मजदूर बीमार पडेगा तो उसे इस कोष से डाक्टरी सहायता पहुँचाई जायेगी। उसे ५६ दिन तक अपनी मजदूरी भी दी जायगी और अशक्त होने पर सहायता भी की जायगी। नौकरी पर किसी मजदूर की मृत्यु हो जाने पर उसके आश्रितों को पेन्शन दी जायगी। स्त्रियों को मातृत्व काल में १२ सप्ताह की छुट्टी मिलेगी और उस काल में इसी कोष से बारह आने प्रतिदिन सहायता मिलेगी।

इसी प्रकार **कारखाना-कानून में सशोधन** किया गया है। अब मजदूरों को अधिक स्वास्थ्यप्रद, साफ सुथरा और अधिक **सुरक्षित परिस्थिति** में काम करने को मिलेगा। उन्हे **सवेतन छुट्टी** भी मिलेगा। अब तक मिलों मे मजदूर को ठेकेदारों के द्वारा नौकरी मिलती थी। यह ठेकेदार उन्हे लूटता था। अब सरकार **नौकरी दिलाऊ केन्द्रों** को स्थापित कर रही है। ये केन्द्र बिना किसी से फीस लिये मजदूरों को नौकरी दिलाते हैं। मजदूरों के लिए **प्रावीडेट फन्ड** की व्यवस्था की जा रही है।

भारत सरकार ने मजदूरों के वेतन के सम्बन्ध में भी एक **न्यूनतम वेतन** कानून बनाया है। इसके अन्तर्गत सरकार यह निश्चित कर देगी कि किस काम के लिये कम से कम कितनी मजदूरी दी जाय। इसी कानून में खेती मे काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी निश्चित करने की भी व्यवस्था है।

औद्योगिक सुख-सुविधा

मजदूरों के सुख के लिए मिल फैक्टरी और कार्य स्थान के बाहर जो कार्य किए जाते हैं वे **औद्योगिक सुख-सुविधा-कार्य** अथवा **श्रम-हितकारी-कार्य** कहलाते हैं। मालिक, मजदूर तथा सरकार तीनो इस कार्य को करने मे योग दे सकते हैं। सरकार इस ओर दो प्रकार से विशेष प्रयत्न कर रही है :—

(१) **श्रम हितकारी केन्द्र** खोलकर वहाँ मजदूरो को चिकित्सा, पुस्तकालय, मनोरजन, सिलाई-कढाई की शिक्षा प्रबन्ध किया जाता है। फुटबाल, वालीबाल, बैडमिटन आदि बाहरी तथा कैरम, शतरज आदि भीतरी खेलो की सुविधा दी जाती है। मनोविनोद के साधन रेडियो, हारमोनियम तथा तबला होते हैं। उत्तर प्रदेश में ४२ ऐसे केन्द्र हैं।

एक तिहाई केन्द्रों मे एलोपैथी, एक-तिहाई मे होमियोपैथी तथा शेष मे आयुर्वेदिक चिकित्सा का प्रबन्ध है। अभी होमियोपैथिक चिकित्सा का प्रचलन कम है।

पुस्तकालय मे हिन्दी अँग्रेजी दैनिक पत्रो तथा पुस्तको का प्रबध रहता है परन्तु शिक्षा के प्रबन्ध किये बिना मजदूर इससे लाभ नहीं उठा पाते हैं।

कैरम, वालीबाल तथा रेडियो प्रिय साधन हैं।

इन केन्द्रों में स्त्री तथा बच्चों का भी विभाग रहता है। ट्रेनिंग प्राप्त दाई तथा परिचारिका का भी प्रबन्ध रहता है। बच्चों को नहलाने धुलाने, तेल कघी करने तथा कमजोर बच्चों को दूध देने की सुविधा दी जाती है।

(२) मजदूरों के लिए उपयुक्त **मकानों की व्यवस्था** करने के लिए भी सरकार कानून बना रही है। इस समय भारत सरकार दस लाख मजदूर गृहों को बनाने की एक योजना चला रही है। कोयले की खान में काम करने वाले मजदूरों के लिए पचास हजार मकान बनाना आरम्भ हो गया है। उत्तर प्रदेश में २५ लाख रुपये की सहायता आगरा, कानपुर, फिरोजाबाद आदि स्थानों में मजदूरों के लिए मकान बनाने हेतु दी जायगी इसी काम के लिये उत्तर प्रदेश को भारत सरकार से कई करोड़ रुपये मिलेंगे। इस तरह सन् १९५४-५५ मे लगभग तीन करोड़ रुपये मजदूरों के मकान निर्माण मे लगेंगे जिनमें फ्लश के पाखाने नल तथा बिजली का प्रबन्ध है।

मिल मालिकों के प्रयत्न

अब मिल मालिक भी मजदूरों की सुख-सुविधा का कुछ ध्यान रखने लगे हैं। कुछ मिलें मजदूरों के लिए मकान बनवाती है जिसमे मजदूर अपने बाल-बच्चों के साथ रहता भी है और गैरहाजिर भी कम रहता है। कहीं-कहीं बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध है और मजदूरों के लिए रात्रि पाठशालाएँ, मनोरंजन और व्यायाम के लिए अखाड़े, व्यायामशाला आदि का इन्तजाम करते हैं। कुछ मिलों में दवा भी मुफ्त बाँटी जाती है।

अन्य संस्थाओं के प्रयत्न

अन्य संस्थाओं मे मजदूर संघ मुख्य है। हम उनके बारे मे नीचे बतायेंगे। इन्हें छोड़कर कुछ स्थानों में समाज सेवा संघ, सरवेण्ट आफ इंडिया सोसायटी, बाल सुख संघ आदि शिक्षा, औषधि, जच्चा-बच्चा की सेवा का प्रबन्ध करती हैं। वे प्रचार द्वारा शराबखोरी, जुआ आदि बुराइयों को दूर करने के लिए भी प्रयत्न करते हैं। कहीं-कहीं बनियों और महाजनों से बचाने के लिये सस्ते अन्न, चाय आदि की दूकानें भी खोली गई हैं।

ट्रेड यूनियन

भारतीय ट्रेड यूनियन कानून के द्वारा मजदूरों को यह अधिकार दिया गया है कि वे अपने संघ (ट्रेड यूनियन) बनाएँ। ये इन संघों के द्वारा कारखानेदारों से सामूहिक ढंग पर सौदा कर सकते हैं।

भारत में अभी तक ट्रेड यूनियनों की संख्या कम है। लगभग तीन चौथाई ट्रेड यूनियन छोटी छोटी हैं। रेल, कपड़े की मिलों और मल्लाही सम्बन्धी काम करने वाले मजदूरों की ट्रेड यूनियन सबसे अधिक है। ट्रेड-यूनियन के लगभग दो तिहाई सदस्य इन्हीं तीन क्षेत्रों मे काम करते हैं। अन्य उद्योग-धन्धों में मजदूरों के जो संघ बनते थे उन्हे अधिकतर मिल मालिक नहीं मानते थे। सरकार भी इस ओर से चुप रहती थी। परन्तु जैसा ऊपर बताया जा चुका है, अब सरकार ने इन संघों को कानूनी रूप देने का निश्चय कर लिया है।

परन्तु हमारी ट्रेड यूनियनों में अक्षमता भरी पड़ी है। हमारे मजदूरों की शिक्षा-दीक्षा तो नहीं के बराबर रहती है। अतः ट्रेड यूनियन की नेतागिरी

कुछ पढे-लिखे लोगों के हाथ में होती हैं। मजदूर उन्हीं के इशारे पर नाचते हैं। शीघ्र प्रसिद्धि प्राप्ति के लालच में ये नेतागण मजदूरों को तरहातरह के लालच दे देते हैं और फिर उसकी पूर्ति के लिये वे उन्हें हडताल करने के लिए उकसाते हैं, हड़तालों के कारण उत्पादन घट जाता है और वस्तुओं की उत्पत्ति कम होती है। आजकल हमारे आजाद देश मे मिल के तैयार माल की जो कमी है उसका एक महत्वपूर्ण कारण हमारी ट्रेड यूनियनें कही जा सकती हैं। उनके कारण ही मजदूरो मे अधिक वेतन मॉगने और धीरे-धीरे काम करने की प्रवृत्ति बढ रही है। इस समय तो यह जरूरी है कि मजदूर नेता मजदूरों को समझाकर हड़तालें रोकें और उन्हें अधिक उत्पत्ति के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित करें।

ट्रेड यूनियनें मजदूरों को नकारात्मक ढग से तो सहायता करने का प्रयत्न करती हैं परन्तु रचनात्मक ढङ्ग से कोई काम नहीं करतीं। उदाहरणार्थ मजदूरी की कमाई ऋण चुकाने और बनिये को दाम देने में उड जाती है। ट्रेड यूनियनों का कर्तव्य है कि वे मजदूरों की अपनी दुकानें खोलें ताकि ये बनियों के चंगुल मे बच सकें। मजदूरों को वर्तमान व्यय में अधिक सामान दिलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। इसी प्रकार मजदूरों की ओर से ट्रेड यूनियनों को मकान मालिकों से मोर्चा लेना चाहिये। जो अधिक किराया लेकर तङ्ग और गन्दी बस्तियों में रहने पर बाध्य करते हैं। परन्तु ट्रेड यूनियनें ऐसे काम नहीं करतीं। कहा जाता है कि यदि उनके नेता इस प्रकार मजदूरों की कठिनाइयाँ हल कर दे तो उनकी पूछ कम होगी। उनकी नामवरी नहीं होगी। उनके काम और उनके वक्तव्य समाचार पत्रों में स्थान नहीं पायेंगे। यदि ऐसा है तो उनका ख्याल गलत है। देश में सच्चे चुपचाप कार्य करने वाले व्यक्ति का नाम धीरे-धीरे फैल जाता है। सब उनको जानने लगते हैं। यह प्रसिद्धि अधिक टिकाऊ होती है। कम से कम देश को इसी प्रकार के काम करने वालों की आवश्यकता है।

हमारी ट्रेड यूनियनों में धन की भी कमी रहती है। आय-व्यय का कोई हिसाब नहीं रक्खा जाता। मेम्बरों की कोई पूरी सूची नहीं रहती। अत हडताल

के दर्मियान मजदूरों को अधिक सहायता नहीं पहुँचाई जा सकती और अधिकतर हड़तालें असफल साबित होती हैं।

भारतीय ट्रेड यूनियनों की निर्बलता के कारण

मजदूर आन्दोलन की निर्बलता के मुख्य कारण नीचे लिखे हैं :—

१—मजदूरों का अशिक्षित होना, वे मजदर सगठन से होने वाले लाभ को नहीं समझते।

२—औद्योगिक केन्द्रों मे मजदूर एक भाषा नहीं बोलते। उनकी भाषा भिन्न होती है क्योंकि भिन्न भिन्न प्रदेशों से आते है। इस कारण उनका सगठन अच्छा नहीं हो पाता।

३—मजदूर अत्यन्त निर्धन होते हैं। वे चन्दा इत्यादि देने में रुचि नहीं दिखाते।

४—भारत मे औद्योगिक केन्द्र बिखरे हुए हैं वे एक दूसरे से बहुत दूर हैं इस कारण उनको सगठित करने की उतनी सुविधा नहीं है।

५—भारतीय मजदूर स्थायी रूप से औद्योगिक केन्द्रों मे काम नहीं करते। वे कुछ समय करके फिर अपने गाँवो को लौट जाते हैं, इस कारण वे मजदूर आन्दोलन मे अधिक दिलचस्पी नहीं लेते।

६—मजदूर आन्दोलन का योग्य हाथों में न होना।

आज भारतीय मजदूर आन्दोलन राजनैतिक नेताओं के हाथ में है। कुछ मजदूर यूनियनें कम्यूनिस्टों के हाथ मे हैं। कुछ समाजवादियों के हाथ मे और कुछ कांग्रेस के हाथ मे हैं। ये मजदूर नेता अपने दल के स्वार्थ से मजदूरों मे कार्य करते हैं, उनके हितों का इतना ध्यान नहीं रखते।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारतीय मजदूर किस दशा मे रहता है? उसका सक्षिप्त विवरण दीजिए।

२—भारत के किन्हीं दो औद्योगिक केन्द्रों मे मजदूर के रहने के स्थान का वर्णन कीजिये और बतलाइए कि उसका उनके स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है?

३—भारतीय मजदूर के लिए सरकार ने कानून बनाकर कौन सी सुविधायें प्रदान की हैं ?

४—भारतीय ट्रेड यूनियनों (मजदूर सभाओं) का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

५—भारतीय ट्रेड यूनियनें सुसगठित क्या नहीं है ? उनकी निर्बलता के क्या कारण हैं, लिखिए ?

६—गदी बस्तियों में मजदूरों की दशा बताइए। उनकी दशा सुधारने का क्या प्रयत्न किया जा रहा है ? (१६५०)

तेरहवाँ अध्याय

बटाई प्रथा

पिछले अध्याय में तुमको धन के वितरण के बारे मे बताया गया था। लगान का जिक्र करते समय जमींदारी प्रथा, स्थायी बन्दोबस्त आदि का थोड़ा-सा हाल लिखा गया था। लगान के इन विभिन्न बन्दोबस्तों तथा जमीदारों और किसान के सम्बन्ध के बारे में हम अगले अध्याय में खुल कर हाल लिखेंगे। सरकार जमीन जमींदार को सुपुर्द कर देती है। इसके बदले मे जमींदार सरकार को मालगुजारी देने के लिए बाध्य हो जाते हैं। सरकार को अधिकतर मालगुजारी से ही मतलब रहता है। जमींदार को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह जिस प्रकार चाहे उस प्रकार उन खेतों को काम में लावे। चाहे वह स्वय मजदूर लगा करके जमीन जोते-बोये और फसल पैदा करे, चाहे वह लगान के ऊपर उस जमीन को किसान को उठा दे। जमीन को लगान पर देने से जमींदार को किसान से एक निश्चित दर से रुपया मिलता है। यह दर खेत के क्षेत्र के हिसाब से होती है, जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया था। सरकार द्वारा यह निश्चित कर दिया जाता है कि जमींदार किसी खेत से किसी निश्चित रकम से (जो भी ठीक हो जाय) अधिक लगान नहीं ले सकता। किसान जमींदार को यही लगान देकर रह जाता है। लगान पर दी गई जमीन के जोतने-बोने का सारा खर्च किसान के ऊपर रहता है। जमींदार

को उससे कोई मतलब नहीं रहता। किसान अपना हल-बैल लावे, अपनी ओर से मेहनत, धन तथा बीज आदि लगावे। चूँकि जमींदार को केवल लगान से मतलब रहता है, अतएव उसको इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि किसान के खेत में कितना अनाज पैदा होता है।

बटाई प्रथा क्या है?

ऊपर बताई गई प्रथा के अलावा एक और रीति है। जमींदार या मौरूसी किसान अक्सर अपनी जमीन किसान को इस शर्त पर जोतने-बोने के लिए दे देते हैं कि वे उनसे नकद लगान नहीं लेंगे, परन्तु पैदा होने वाली उपज का एक हिस्सा ले लेंगे। इसको बटाई प्रथा कहते हैं। अधिकतर जमींदार कुछ जमीन तो स्वयं जोतते-बोते हैं, कुछ बटाई पर किसानों को दे देते हैं। लेकिन आमतौर पर जमींदार जमीन को बटाई पर देना पसन्द नहीं करते। इसका कारण हम आगे चलकर बतावेंगे। बटाई पर जमीन देने से पहले जमींदार और किसान आपस में तय कर लेते हैं कि हल, बैल बीज आदि कौन देगा? यदि ये सब चीजें किसान लगाता है तो जहाँ तक होता है, आधा आधा हिस्सा तय होता है अर्थात् यदि दो सौ मन अनाज पैदा होगा तो सौ मन अनाज जमींदार ले लेगा। कहीं-कहीं जमींदार किसान को बीज दे देता है। कभी हल-बैल भी मिल जाते हैं। ऐसी हालत में जमींदार पैदावार का दो तिहाई हिस्सा ले सकता है।

बटाई की दर

वैसे तो बटाई प्रथा के अन्तर्गत किसान को मालगुजारी नहीं देनी पड़ती। लेकिन कुछ जगहों में ऐसी भी शर्त रक्खी जाती है कि मालगुजारी कौन देगा। यदि किसान मालगुजारी भी देता है तो जमींदार का हिस्सा केवल चौथाई भी रह सकता है। बटाई प्रथा के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में अधिकतर आधा हिस्सा कर लिया जाता था। लेकिन जैसा कि पहले भी बताया गया है, यह जरूरी नहीं है कि आधा हिस्सा ही लिया जाय। जमीन की हालत के ऊपर भी हिस्सा निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए, जमींदार के पास पड़ी हुई बेकार जमीन को ले लीजिए। कुछ जमीन परती पड़ी रहती है, कुछ ऊसर होती है। किसी जमीन के साथ उससे लगा हुआ ताल तलैया भी दे दिया

जाता है। इसके अलावा जिस जमीन में खेती होती है उसके किनारे कुछ बेकार जमीन पड़ी रहती है। जमींदार अक्सर ऐसी जमीन बहुत कम बटाई पर किसानों को देते हैं। जब ऊसर या बेकार पड़ी जमीन किसान को दे दी जाती है तब लगान लिया जाता है। वह जमीन उसे मुफ्त में जोतने-बोने को मिल जाती है। किसान मेहनत-मजदूरी लगा कर उस जमीन में खेती करता है और जो कुछ पैदा होता है उसे अपने काम में लाता है। लेकिन सालन्द साल के बाद जमींदार अपना हक जाहिर करता है। जमीन तो अब उपजाऊ बन गई और दूसरे लोग उपज का कुछ हिस्सा देकर उस जमीन को लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। अतएव जिस किसान ने उस जमीन में पहले पहल खेती की है वह जमींदार को उपज का एक हिस्सा देने पर मजबूर हो जाता है, हालांकि यह बात जरूर है कि आरम्भ में यह भाग बहुत छोटा रहता है। किसान जमींदार को चौथाई या तिहाई भाग देने लगता है।

यों तो मामूली जमीन और बेकार जमीन ही अधिकतर बटाई पर दी जाती है। परन्तु कभी-कभी उपजाऊ भूमि भी बटाई पर उठाई जाती है। आमतौर पर अच्छी व उपजाऊ जमीन लगान तय हो जाने पर बटाई के ऊपर उठाई जाती है। ऐसी हालत में बटाई का हिस्सा आधे से कभी कम नहीं होती। किसान भी कभी-कभी इस प्रकार से अपने खेत दूसरों को जोतने के लिए दे देते हैं। मान लीजिये किसान के पास सत्तर-अस्सी बीघा खेत है। लेकिन घर में बीमारी फैल जाने से या घर के किसी कामकाजी आदमी की अचानक मृत्यु अथवा अन्य किसी कारण से रामू किसान सारी जमीन को अपने काम में नहीं ला सकता। ऐसी हालत में कुछ जमीन उसके पास बेकार हो जाती है। अतएव वह बीस-तीस बीघा खेत किसी दूसरे किसान शङ्कर को इस शर्त पर दे देता है कि शङ्कर उतने खेत में जो पैदा करेगा उसका आधा हिस्सा रामू ले लेगा। मान लीजिये रामू ने सोहनसिंह से स्वयं भी यह जमीन बटाई पर ले रक्खी है, और रामू व सोहनसिंह के बीच यह तय हुआ कि रामू अपने खेत में होने वाली उपज का आधा हिस्सा सोहनसिंह को देगा। ऐसी हालत में रामू कभी भी शङ्कर को आधे हिस्से पर खेत न देगा। उसकी नियत यही रहेगी कि वह शङ्कर से अधिक से अधिक हिस्से पर मामला तय करे। परन्तु जैसा

कि पहले बता आये हैं, मामले तय होने मे माँग और पूर्ति का हाथ रहेगा। यदि शङ्कर को खेती करने की गरज है तो वह रामू को शायद दो-तिहाई तक दे देगा। परन्तु इसके विपरीत यदि फसल के बीच किसी कारण रामू अपना खेत किसी दूसरे को देना चाहता है तो शायद रामू को आधा हिस्सा भी मिलना मुश्किल हो जाय।

बटाई प्रथा के गुण-दोष

जैसे और बातों में गुण दोष होते है वैसे ही बटाई प्रथा में कुछ अच्छाइयाँ भी हैं और बुराइयाँ भी। यदि किसान की दृष्टि से देखा जाय तो बटाई-प्रथा लगान प्रथा से कहीं बेहतर है। लगान पर ली हुई जमीन में उपज हो या न हो किसान को लगान तो देना ही पड़ता है। किसान यदि बहुत रोया-गाया तो कुछ माफी मिल जाती है। परन्तु बटाई पर दी हुई जमीन मे तो किसान और जमींदार दोनों ही आपस मे पहले से तय किये हिस्से में उपज बाँटते हैं। यदि अनावृष्टि या अन्य किसी कारण से किसी साल फसल मारी जाती है तो किसान जमींदार को बाकी फसल का हिस्सा देता है। इसी तरह यदि फसल बहुत अच्छी है तो किसान के साथ जमींदार को अधिक मात्रा मे फसल मिल जाती है। परन्तु इसके अलावा कुछ ऐसे फायदे भी हैं जिन्हे किसान उठा सकता है। जैसे यदि किसान के पास हल-बीज न हो तो वे जमींदार से मिल सकते हैं। इस प्रथा में जमींदार को अलग नुकसान ही नुकसान दिखलाई पड़ता है। फसल खराब होने पर उसे किसान से ज्यादा दाम तो मिलता नहीं है। अतएव उस समय उसे अपनी गाँठ से मालगुजारी देनी पड़ती है।

इसके अलावा बटाई प्रथा के अन्तर्गत जमींदार को रुपये तो मिलते नहीं, उसे अनाज मिलता है। यहाँ पर भी किसान को फायदा ही फायदा रहता है। मान लो खेत मे सौ मन अनाज पैदा हुआ और किसान अपने खाने-पीने के लिए दस मन अनाज रख कर नब्बे मन बेच देता है, फिर जमींदार को लगान के रुपये दे देता है। परन्तु यदि किसान ने खेत आधे हिस्से की बटाई पर लिया होता तो किसान को पचास मन अनाज मिलता। इस पचास में से उसे अब केवल चालीस मन अनाज बेचने की तकलीफ उठानी पड़ती और जमींदार को पचास मन अनाज बेचना पड़ता।

ऐसी दशा मे एक बात और होती है। यदि कहीं फसल के बाद अनाज का बाजार भाव गिर जाय अर्थात् सस्ता बिकने लग जाय तो जमींदार को और घाटा होता है क्योंकि चढे हुए भाव से बेचने पर उसे जो रुपये मिलते हैं उतने रुपये अब नहीं मिल सकते। इसके अलावा किसान कुछ नाजायज फायदे उठा सकता है। जैसे कुछ बेईमान किसान रात में जमींदार की गैरहाजिरी में अनाज काट लेते हैं या काटा हुआ अनाज खलिहान से अपने घर उठा ले जाते हैं। इसके अलावा यह तो मामूली बात है कि बँटवारा होते समय यदि जमींदार या उसका आदमी नहीं पहुँचता तो किसान अपने घर को अधिक माल उठवा देता है।

बटाई प्रथा विधवाओं, नाबालिगों व उन व्यक्तियों की दृष्टि से भी अच्छी है जो विशेष कारणवश स्वयं खेती नहीं कर सकते और जो अधिकतर मजदूर रखकर खेती नहीं करा सकते।

परन्तु बटाई-प्रथा के तीन मुख्य दोष हैं। प्रथम बटाई वाले किसानों को अधिकतर खेत मे कोई हक नहीं प्राप्त होता। यह जरूरी है कि जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में लगभग प्रत्येक खेतिहर को कम से कम लगातार पाँच साल तक खेती करने का हक मिल गया है वैसे ही हक दूसरी जगह भी दिये जायँ। सन् १९४० के बगाल कमीशन ने बगाल प्रान्त के बटाई पर खेती करने वाले बरगादार किसानों के लिए ऐसी ही सिफारिश की थी।

द्वितीय, बटाई प्रथा मे किसान अपनी मेहनत द्वारा उपज में जो वृद्धि करता है उसका केवल एक भाग उसे मिलता है। किसान को उपज बढाने में उत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी वृद्धि में जमींदार का हिस्सा न हो।

तृतीय, कहीं-कहीं लगान पर खेती करने वाले किसानों की अपेक्षा बटाई पर खेती करने वाले किसानों की हालत अच्छी नहीं है। उदाहरण के लिए बङ्गाल में बटाई की दर आधी उपज है। यदि यह घटाकर एक तिहाई भी कर दी जाय तब भी उन्हें इस प्रकार जितना लगान देना पडेगा वह खेतों के मालिक की देन का साढे पाँच गुना होगा। अतः यह आवश्यक है कि बटाई की दर घटाकर उपज का चौथाई या पाँचवाँ हिस्सा कर दिया जाय। अत इस समय

बटाई प्रथा के कारण देश की उर्वरता नहीं बढ़ पाती। इसलिए अनुपयुक्तरूप मे होने के कारण बटाई प्रथा देश के हित में रुकावट पैदा करती है।

मजदूरी सम्बन्धी बटाई

अब तक हमने जिस बटाई का हाल बताया है उसके आलावा गॉव मे एक और बटाई होती है। यह बड़ा जरूरी है कि दूसरी बटाई को भी स्पष्ट कर दिया जाय। यह दूसरी बटाई भी खलिहान में ही होती है, परन्तु इसके हिस्सेदार बनिये, ब्राह्मण, नाई, चमार, धोबी, बढ़ई, लोहार आदि गॉव के काम करने वाले होते हैं। भारतीय गॉवों मे यह रिवाज है कि ये लोग साल भर किसानों को जिस वस्तु की जरूरत होती है देते रहते हैं। तेल की जरूरत पड़ने पर तेली को तेल देना पड़ता है। मतई का जूता फट जाने पर हामिद उसके लिए दूसरा जूता बना देता है। धोबी सब घर वालों के कपडे धोता है। वह हर एक बडे आदमी या औरत के पीछे चार पॉच पसेरी अनाज लेता है। उसे छोटे बच्चों का कुछ नहीं मिलता। इसी प्रकार लोहार, बढई आदि कारीगर भी गाँव भर की सेवा करते हैं और फसल तैयार हो जाने पर हर एक के खलिहान से अपने-अपने हिस्से का अनाज ले आते हैं इन लोगों के साथ हमे खेतो में काम करने वाले मजदूरों को नहीं भूल जाना चाहिए। इन्हें अधिकाश मजदूरी काम करने के साथ ही साथ रोजाना मिलती जाती है क्योंकि इनको तो रोज ही खाने के लिये अन्न चाहिये। परन्तु फिर भी फसल बोने के समय कुछ मजदूर फसल तैयार हो जाने पर अनाज मिलने की शर्त पर लगाए जाते हैं। कुछ मजदूर पैसों पर काम करते हैं। परन्तु उन्हे भी फसल में से कुछ मिल जाता है। फसल कट जाने पर किसान ऐसा खुश रहता है कि उस समय उसके पास जो पहुँच जाये उसे ही कुछ न कुछ मिल जाता है।

अस्तु, अब समझ में आ गया होगा कि इस बटाई और पहले बताई हुई बटाई में क्या फर्क है। पहली बटाई तो लगान का एक रूपमात्र है। फर्क यही है कि लगान में आमतौर पर कमी नहीं की जाती और फसल में होने वाली घट बढ का किसान ही जिम्मेदार होता है, परन्तु बटाई में किसान के साथ जमींदार भी कुछ अंश में उसके सुख-दुःख का साथी बनता है।

दूसरी किस्म की बटाई में किसान उन सब कारीगरों और काम करने वाले

मजदूरों की मजदूरी चुकाता है, जो बिना कुछ लिये साल भर किसान की सेवा करते हैं तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। पहली भाँति की बटाई का अन्न लगान है, तो दूसरी में दी हुई उपज मजदूरी और कीमत स्वरूप है।

बटाई और रीति-रिवाज

ऊपर बताई हुई बटाई प्रथाओं की दर में दस्तूर और रीति रिवाज का बहुत कुछ असर पड़ता है। यदि यह दस्तूर चला आ रहा है कि सोहनसिंह कुएँ के पास वाले खेत को उठाने म किसान से दो तिहाई हिस्सा लेता है तो चाहे इस साल रामू खेत को ले चाहे पारसाल श्याम उस खेत को ले, सोहन-सिंह का उस खेत मे दो-तिहाई का हिस्सा रहेगा। इसी प्रकार यदि किसी खेत के साथ सोहनसिंह बीज भी देता है तो उसे दस्तूर के मुताबिक उस खेत को लेने वाले को बीज देना ही पड़ेगा। इसी प्रकार धोबी, चमार, मेहतर आदि के हिस्सों के बारे मे भी दस्तूर और रीति-रिवाज का बोलबाला रहता है। वंशपरम्परा से धोबी को छोटे बच्चों और विधवाओं के पीछे कुछ भी अन्न नहीं मिलता। इसी प्रकार आदमी पीछे गाँव के धोबी को चार पसेरी अनाज मिलता है, उस दर मे भी कोई परिवर्तन नहीं होता। कहने का मतलब यह है कि रीति रिवाज के इस प्रभाव के कारण गाँव के आदमियों के हिस्सों की दर बहुत पीढ़ियों तक स्थायी बनी रहती है। इससे महँगी और सस्ती के समय गाँव वालों की आर्थिक दशा पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। महँगी के समय मे गरीब किसानों की हालत गिर जाती है। परन्तु लोहार, चमार आदि के जीवन में कुछ दिनों तक कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। भिन्न भिन्न काम करने वालों की क्षमता में कुछ न कुछ अन्तर होता है। यदि उनकी कार्य क्षमता एक सी हो, तब मजदूरी मे अन्तर रहेगा, क्योंकि उनकी मजदूरी अधिकतर रीति रिवाज पर निर्भर है।

अस्तु, जैसा हम आरम्भ में कह चुके हैं, अगले अध्याय में हम सरकार और किसानों के सम्बन्ध में कुछ बातें बतायेंगे। सरकार किस प्रकार किसानों से लगान की दर निश्चित करती है? क्या सरकार हमेशा जमींदार के जरिये किसान से मालगुजारी वसूल करती है या कहीं पर किसान से सीधे वसूल करती है? जमींदार सरकार को लगान का कौन सा भाग देते हैं? जमींदार और किसानों

के बीच आजकल कैसा सम्बन्ध है ? इन प्रश्नों में उत्तरों के अलावा खेती सम्बन्धी कागजातों के बारे में भी कुछ बातें बताई जावेंगी।

अभ्यास के प्रश्न

१—बटाई प्रथा आप के गॉव मे कहाँ तक प्रचलित है ? आप पटवारी द्वारा यह पता लगाइये कि गत वर्ष कितने खेत बटाई पर किसानों को दिये गये थे ?

२—आप के गॉव मे बटाई की साधारण दर क्या है ? इससे अधिक दर किन दशाओं में ली जाती है ? रीति रिवाज का दर पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

३—बटाई पर जोते जाने वाले खेतों की तुलना उन खेतों की फसल से कीजिए, जिनमे खेतों के मालिक ने स्वय खेती की है। किन खेतों में फसल अधिक अच्छी होने की आशा की जाय और क्यों ?

४—अपने गॉव मे जाकर यह पता लगाइये कि फसल तैयार हो जाने पर किसानों को हल पीछे नाई, धोबी, बढ़ई, पुरोहित, चमार, कुम्हार इत्यादि को कितना अनाज प्रति वर्ष देना पड़ता है।

५—लगान क्या है ? किसानों के लिए बटाई प्रथा के दोष समझाइये। उसके दोष किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं ? (१६४२)

६—'बटाई प्रथा में बेईमानी की बहुत गुञ्जाइश है', यह कथन कहाँ तक सत्य है।

७—'बटाई प्रथा किसानों के लिये लाभदायक, परन्तु देश के लिए हानिकारक है'। इस कथन की आलोचना कीजिए।

८—इस प्रदेश के गॉवों मे रीति-रिवाज का लगान, मजदूरी और सूद की दर पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ?

९—विभिन्न कृषि-मजदूर को भिन्न मजदूरी क्यों मिलती है ? यदि प्रत्येक कृषि मजदूर प्रत्येक कृषि कार्य के लिए समान योग्य हो, क्या तब भी मजदूरी भिन्न होगी ?

चौदहवाँ अध्याय

जमींदार और किसान

लगान के सम्बन्ध में लिखते समय देश में प्रचलित बन्दोबस्तों का जिक्र आया था। अब हम इन बन्दोबस्तों, जमींदारों तथा किसानों के आपस के सम्बन्ध व खेती के कागजात के बारे में विस्तारपूर्वक विचार करते हैं।

स्थायी बन्दोबस्त

सन् १७६० के लगभग बङ्गाल के गवर्नर लार्ड कार्नवालिस ने सरकार की ओर से भारत के कुछ भागों में मालगुजारी की रकम हमेशा के लिए निश्चित कर दी। यह रकम किसानों से वसूल किए जाने वाले लगान की नब्बे फी सैकड़ा थी। इस बन्दोबस्त से सरकार को बँधी हुई रकम मिलने लगी और फिर हर साल के झंझट से छुट्टी हो गई। इसके अलावा सोचा गया कि हमेशा के लिए बन्दोबस्त हो जाने पर जमींदार किसान की पढ़ाई-लिखाई, तन्दुरुस्ती, सफाई आदि का इन्तजाम करेंगे। लेकिन स्थायी बन्दोबस्त हो जाने की वजह से खेती में उन्नति होने पर सरकार की आमदनी नहीं बढ़ सकती थी। सन् १७६० से जमीन की पैदावार बहुत बढ़ गई है तथा जमींदार लगान के रूप में किसानों से उस समय की बनिस्बत अब कई गुना रुपया वसूल कर रहे हैं। लेकिन सरकार को एक पाई ज्यादा नहीं मिल सकती, यद्यपि आजकल देश की उन्नति तथा भलाई करने के लिए रुपये की बड़ी जरूरत है। दूसरे कुछ जमींदार दयालु और परोपकारी अवश्य हैं, लेकिन जो आशा की गई थी कि ऊपर बताए बन्दोबस्त के बाद वे लोगों की शिक्षा, स्वास्थ्य आदि की उन्नति करेंगे वह बिलकुल पूरी नहीं हुई। अस्तु, स्थायी बन्दोबस्त बङ्गाल, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के बनारस डिवीजन में चालू है।

बङ्गाल का फ्लाउड कमीशन

१९४० में बङ्गाल सरकार ने श्री फ्लाउड महोदय की अध्यक्षता में वहाँ की जमीन बन्दोबस्त के सम्बन्ध में एक जाँच कमीशन बिठाया था। उस कमीशन की राय यह है कि बङ्गाल में स्थायी बन्दोबस्त से भूमि के प्रबन्ध और खेती मे कोई सुधार नहीं हुआ। जमींदारों की जैसी आशा की जाती थी कि वे

अपनी जमींदारियों की ओर ध्यान देंगे, ऐसा कुछ नहीं किया और उस प्रथा से किसानों की बहुत हानि हुई। वे भी भूमि तथा खेती की उन्नति नहीं कर पाते, साथ ही प्रादेशिक सरकार की एक बहुत बड़ी हानि यह हुई है कि उसकी मालगुजारी (Land Revenue) से होने वाली आमदनी सदैव के लिए निश्चित हो गई। वह कभी भी बढ़ाई नहीं जा सकती। कमीशन का अनुमान था कि अगर आज के हिसाब से बङ्गाल मे मालगुजारी लगाई जावे तो बङ्गाल सरकार को कई करोड़ रुपए का लाभ हो। अतएव कमीशन की राय थी कि बङ्गाल मे जमींदारी प्रथा नष्ट कर दी जाये और स्थायी बन्दोबस्त तोड़ दिया जावे। सरकार जमींदारों को बदले में रकम देकर उनसे जमींदारी ले ले।

अस्थायी बन्दोबस्त

भारत की अन्य जगहों में अस्थायी बन्दोबस्त है, अर्थात् वहाँ पचीस या तीस साल के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। इसके बाद फिर से जमीन की देख-भाल की जाती है तथा उपज की जॉच करके मालगुजारी ठीक की जाती है। ज्यादातर यह देखा गया है कि हर नये बन्दोबस्त के साथ मालगुजारी का भार बढ़ता ही रहता है। ये स्थायी बन्दोवस्त कई तरह के हैं। बम्बई, मद्रास आदि प्रदेशो मे रैयतवारी रिवाज चालू है। इसमें सरकार सीधे किसान से लगान वसूल करती है। किसान और सरकार के बीच में कोई जमींदार नहीं होता है। बम्बई या मद्रास मे तीस साल मे बन्दोबस्त होता है। रैयतवारी के अलावा महालवारी प्रथा होती है। यह मध्य प्रदेश के कुछ भागों में प्रचलित है। रैयतवारी और महालवारी प्रथा मे केवल यही फर्क है कि महालवारी के अन्तर्गत गॉव का मालगुजार मालगुजारी चुकने का जिम्मेदार रहता है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पञ्जाब और मध्य प्रदेश के कुछ भागों मे जमींदारी प्रथा चालू है। इसमे जमींदार या ताल्लुकेदार अपने हिस्से की मालगुजारी देने के जिम्मेदार रहते हैं। जमींन के लगान की रकम सरकार की ओर से तय कर दी जाती है। जमीदार उस लगान की दर से किसानों को खेती करने के लिये जमीन देते हैं। इस तरह जमीन से जो लगान आ सकता है उसका निश्चित हिस्सा सरकार ले लेती है। मान लो जमींदार सौ रुपया लगान के रूप में वसूल कर सकता है। पहले सरकार इसमे से सत्तर-अस्सी रुपये मालगुजारी के

रूप में ले लेती थी। लेकिन अब तो घटते-घटते यह रकम चालीस-पचास फी सैकड़ा के करीब रह गई है।

सरकारी मालगुजारी नगद रुपयों में ली जाती है, अनाज वगैरह में नहीं। जिस साल पानी कम बरसता है या ओला, पाला, पड़ता अथवा टिड्डी आदि लग जाती हैं, उस साल फसल खराब हो जाती है। मालगुजारी का कुछ हिस्सा माफ कर दिया जाता है। लोगों की शिकायत है कि छूट नुकसान के हिसाब से कम होती है मालगुजारी के साथ लगान में भी कमी करनी पड़ती है। लगान मालगुजारी से भिन्न होता है। लगान तो किसान देता है और माल-गुजारी जमींदार देता है। लगान जमींदार को मिलता है पर मालगुजारी सरकारी खजाने में जमा की जाती है। जमींदार नहीं हैं, जैसे उन प्रदेशों में जहाँ रैयतवारी प्रथा चालू है, वहाँ किसानों का सरकार से सीधा सम्बन्ध रहता है। वहाँ सरकार किसानों से मालगुजारी वसूल करती है। सरकार लगान की दर व मालगुजारी दोनों को निश्चित करती है उत्तर प्रदेश में मालगुजारी उस लगान के आधार पर निश्चित होती है जो किसान पिछले बन्दोबस्त के समय जमींदार को देते थे। मध्य प्रदेश में सरकारी अफसर जमीन के गुणों और स्थिति की जाँच करते हैं और उसी हिसाब से लगान निश्चित किया जाता है। अगर किसी जमीन की मिट्टी अच्छी है तथा वह बाजार से बहुत पास है, तो उसका लगान ज्यादा रक्खा जाता है। लेकिन लगान (जमींदार के न रहने पर यह मालगुजारी भी कहा जा सकता है) कि दर निश्चित करने की जो रीति बम्बई में चालू है वह सबसे अच्छी कही जाती है। वहाँ पर यह जानने की कोशिश की जाती है कि पिछले बन्दोबस्त के समय जो उपज हुई थी उसकी कीमत क्या थी और उस उपज को पैदा करने के लिए क्या खर्च बैठा था। उपज की कीमत से यह खर्च निकाल कर जो बचता है उसका लगभग आधा भाग आगामी बन्दोबस्त तक के लिए मालगुजारी निश्चित की जाती है। यों तो लगान निश्चित करने का यह तरीका हमारे प्रदेश के तरीके से कहीं अच्छा है लेकिन किसानों को यह शिकायत रहती है कि उपज की कीमत बढ़ाकर और लागत खर्च घटाकर हिसाब लगाया जाता है। कहा जाता है कि

इससे किसानों को पूरी मजदूरी भी नहीं मिल पाती। किसानों के कई महीने भूखे रहने का कारण यह भी है।

जमींदार और किसान

भारत में पूर्वी पञ्जाब, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, मद्रास के उत्तरी जिलों में जमींदारी प्रथा है तथा मध्य भारत, राजस्थान और विंध्यप्रदेश मे जागीरदारी प्रथा है। जमींदार किसानों से लगान वसूल करके आधी से कम रकम मालगुजारी के रूप में सरकारी खजाने में जमा कर देते हैं और शेष उनकी आय होती है। जमींदारों ने कभी अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया। वे किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करने का प्रयत्न करते थे। जो मौरूसी काश्तकार नहीं थे, शिकमी काश्तकार थे उनकी स्थिति तो दयनीय थी। उनको आये दिन बेदखल किया जाता था और अधिक लगान और नजराना लेकर दूसरों को जमीन उठा दी जाती थी। किसान को यह भरोसा नहीं रहता था कि उसके पास भूमि रहेगी या नहीं। केवल यही नहीं, जमींदार तथा जागीरदार किसानों से बेगार लेते थे। किसान को बिना कुछ दिये ये लोग अपने खेतों पर तथा मकान पर काम करवाते थे। जमींदार तथा जागीरदार के पशुओं को चारा, लकड़ी, दूध इत्यादि मुफ्त देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त जमींदार और जगीरदार अनेक प्रकार की लागतें (कर) किसानों से जबरदस्ती वसूल करते थे। इस प्रकार जमींदार किसानों का शोषण करता था। केवल बात यहाँ तक ही नहीं रहती थी। जमींदार गाँव मे मनोरंजन तथा विलासिता के साधन न होने के कारण गाँव छोड़कर शहरों में रहते थे। गाँव का धन उनके द्वारा खिंचकर शहरों को जाता था और गाँव निर्धन हो रहे थे। गाँव में जमींदारों के कारिन्दे या कामदार काम करते थे जो किसानों का और भी अधिक शोषण करते थे। इन सब का परिणाम यह हो रहा था कि गाँव की स्थिति दयनीय होती जा रही थी और ऐसी स्थिति में खेती की उन्नति नहीं हो सकती थी। खेती की उन्नति के लिए यह आवश्यक था कि जमींदारी और जागीरदारी को समाप्त कर दिया जावे और किसान को भूमि का स्वामी बना दिया जावे। यही कारण है कि पूर्वी पंजाब, उड़ीसा, बङ्गाल, मध्य प्रदेश, मद्रास, मध्य भारत और राजस्थान में जमींदारी उन्मूलन कानून बना दिए गए और जमीं-

दारों और जागीरदारों को साधारण हर्जाना देकर समाप्त किया जा रहा है। वह दिन अब दूर नहीं है जब कि जमींदार और जागीरदार इस देश मे नहीं रहेंगे और किसान भूमि का स्वामी हो जावेगा।

उत्तर-प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन कानून

उत्तर-प्रदेश मे पहली जुलाई १६५२ से जमींदारी उन्मूलन और भूमि-सुधार कानून (१६५१) लागू हो गया है। इसके अनुसार कुछ क्षेत्रों को छोड़कर अन्य स्थानों की सभी भूमि पर से जमींदारों के अधिकारों का अन्त हो गया है। प्रत्येक जमींदार को उसके वास्तविक मुनाफे पर उपयुक्त मुआविजा दिया जावेगा। किसानो की दो श्रेणियाँ होंगी—(१) भूमिधर, (२) सीरदार। वर्तमान जमींदार को सीर और खुदकाश्त भूमि मे भूमिधर के अधिकार मिलेंगे। जो किसान अपनी लगान का दस गुना एक साथ दे देगा वह भी उस भूमि का भूमिधर कहलावेगा। भूमिधर किसानो को भूमि बेचने या बधक रखने का पूर्ण अधिकार रहेगा। उन्हें भूमि पर मौरूसी हक रहेगा। सीरदार किसानों को भी मौरूसी हक रहेगा। परन्तु वह भूमि को न बेच सकेगा और न गिरवी रख सकेगा। इस प्रकार जो रुपया इकट्ठा होगा उसमे से जमींदारों को मुआविजा दिया जावेगा। जो छोटे जमींदार हैं उन्हें मुआविजे के अतिरिक्त काम धन्धा करने के लिए कुछ पूँजी सहायता के रूप मे दी जावेगी। छोटे जमींदारों में पुनर्स्थापन सहायता उन्हीं को दी जावेगी जिनका वास्तविक मुनाफा दस हजार रुपया वार्षिक से कम होगा और यह सहायता उनके वास्तविक मुनाफे के एक गुने से २० गुने तक होगी। जिनकी आय कम होगी, उनको अधिक और जिनकी आय अधिक होगी, उनको कम सहायता मिलेगी। उदाहरण के लिए जिनकी वार्षिक आय २५ रुपया है उन्हे २० गुनी और जिनकी ५ हजार से दस हजार तक है उन्हें एक गुनी ग्राट दी जावेगी। जो दस साल का लगान पेशगी देकर भूमिधर का अधिकार प्राप्त करेंगे उनका लगान जो आज वे देते हैं, उसका आधा कर दिया जावेगा। भविष्य मे केवल नाबालिग, विधवा, अपग अथवा शारीरिक दृष्टि से अशक्त व्यक्ति और सेना मे नौकरी करने वाले या विद्यार्थी अपनी भूमि को लगान पर उठा सकेंगे। भविष्य में किसी एक व्यक्ति के पास ३० एकड भूमि से अधिक भूमि नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त कानून

में भूमि को ६¼ एकड़ से छोटे टुकड़ों में न बँटने देने तथा सहकारी खेतों की भी व्यवस्था की गई है। अन्य प्रदेशों मे भी जमींदारी प्रथा का अन्त हो रहा है।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने जमींदारों को उनकी क्षतिपूर्ति की रकम के सरकारी बौंड दिये हैं जिन पर २½ प्रतिशत सूद दिया जावेगा और ४० वर्षों मे सारी रकम चुका दी जावेगी।

जमींदारी प्रथा के विनाश का प्रभाव

उत्तर प्रदेश में जमींदारी प्रथा के विनाश का परिणाम यह होगा कि किसान स्वय भूमि का मालिक हो जावेगा। वह यदि अपनी भूमि मे सुधार करके, कुआँ खोदकर तथा अन्य प्रकार से परिश्रम करके भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ावेगा तो उसको लाभ होगा। वह भूमि पीढ़ी दर पीढ़ी उसके वशजों के अधिकार मे रहेगी। अतएव किसान भूमि का सुधार करने, उसमे पूँजी और श्रम लगाने मे सकोच नहीं करेगा। इसका परिणाम यह होगा कि खेती की उन्नति होगी। आज जितनी पैदावार होती है उससे अधिक पैदावार होगी और किसान समृद्धिशाली बनेगा। आज तो किसान को जमींदार भूमि से वेदखल करके दूसरे को भूमि दे सकता है। ऐसी दशा मे किसान भूमि का सुधार करने तथा पैदावार को बढ़ाने का प्रयत्न क्यो करे? गैरमौरूसी काश्तकार को जमींदार जब चाहे, इस भूमि से हटा सकता है और उसकी लगान बढा सकता है। ऐसी दशा मे जब तक कि जमींदारी प्रथा विद्यमान है तब तक किसान की आर्थिक दशा ठीक नहीं हो सकती और न खेती की ही उन्नति हो सकती है। उत्तर प्रदेश के अलावा भारत के सभी प्रदेशों जैसे बिहार, बंगाल, मदरास, मध्यप्रदेश, राजस्थान, मध्यभारत आदि मे यह प्रथा समाप्त हो गई है।

लेखपाल या पटवारी के कागजात

अस्तु, अब यह बताना बड़ा जरूरी है कि किसान और जमींदार के बीच जो बात ठहरती है तथा लगान वगैरह के बारे में जो फेर-फार होते रहते हैं उनका हिसाब कौन रखता है? तुम सबने पटवारी का नाम जरूर सुना होगा। बस, यही पटवारी खेतों से सम्बन्ध रखने वाले सब कागजात रखते है। और उत्तर प्रदेश में यही अब किसानो से लगान वसूल करेंगे और उन्हें अब

लेखपाल कहेंगे । इन कागजों को लैन्ड-रेकर्ड्स या जमीन के कागजात कहते हैं । इनके बगैर क्या काश्तकार क्या जमींदार, यहाँ तक कि सरकार का भी काम नहीं चल सकता । सब के लिए यह निहायत जरूरी है कि उन कागजों में जो कुछ दर्ज हो, वह ठीक हो । यदि उसमें जरा सी भी गलती हो गई तो फिर कुछ न कुछ गड़बड़ी जरूर होगी । इसलिये यह आवश्यक है कि कागजों में सारी बातें अच्छी व पूरी तरह भरी जायें । यह ठीक मालूम पड़ता है कि हम तुम्हे पटवारी के सभी कागजातों के बारे में थोड़ा हाल बता दें ।

पटवारी के पास जो कागजात रहते हैं व सब छपे हुए फार्मों पर लिखे हुए होते हैं । पटवारी उन्हें एक सरकारी अफसर से जिसको रजिस्ट्रार कानूनगो कहते है, प्राप्त करते हैं । रजिट्रार-कानूगो को सरकार की तरफ से ये कागजात छपे-छपाये मिलते हैं । वे ही उन्हें रखते हैं और जिस पटवारी को जरूरत पड़ती है, उसे दे देते हैं । उन कागजों के नाम ये हैं—

शजरा मिलान, खसरा, स्याहा, खतौनी, जमाबन्दी, वहीखाता, जिन्सवार और खेवट ।

शजरा मिलान

शजरा मिलान गाँव के खेतों और मकानों का नक्शा होता है । यह मोम-जामे के कपडे या मजबूत कागज का बनाया जाता है । इसमें हर तरह की आराजी का नक्शा दिया जाता है । जिस खेत का नक्शा रहता है उसी में उसका नम्बर भी दिया जाता है । यह तुम्हें मालूम ही है कि आराजी या रकबा की हालत बदलती है, क्योंकि किसान खेत बेचते, खरीदते और दखल-बेदखल होते रहते हैं । अतएव निश्चित समय के बाद इस नक्शे में भी फेरफार होता रहता है । इसके लिए पटवारी हर एक खेत की जाँच करता है । साल भर के अन्दर उसमें जो रद्दोबदल होते हैं उनका ठीक ठीक हाल वह लिख लेता है । इस काम के लिए खेत को नापना पड़ता है । यदि नाप में जरा सी भी गलती हो गई तो बड़ी गड़बड़ी पड़ जाती है । इसलिए यह जरूरी होता है कि जिसका कुछ भी हक जमीन में हो, वह पटवारी के साथ-साथ जाकर यह देखे कि सब लिखा-पढ़ी ठीक ठीक हो रही है या नहीं । शजरा मिलान मे तालाब, बाग और कुआँ-वगैरह भी दिखाये जाते हैं । यह निहायत जरूरी होता

खसरा

१	खेत का नम्बर			
२	क्षेत्रफल एकड़ में या बन्दोबस्ती बीघे में			
३	मुहाल का नाम और पट्टी का नाम			
४	खेवट का नम्बर			
५	खतौनी का नम्बर			
६	किसान का नाम व जात			
७	नीचे का किसान और जात			
८	लगान			
९	सिंचाई का तरीका			
१०	कुएँ			
११	सींचा हुआ	उपज	खरीफ	जोता हुआ क्षेत्रफल
१२	बिना सींचा हुआ			
१३		क्षेत्रफल		
१४	सींचा हुआ	उपज	रबी	
१५	बिना सींचा हुआ			
१६		क्षेत्रफल		
१७	सींचा हुआ	उपज	जायद	
१८	बिना सींचा हुआ			
१९		क्षेत्रफल		
२०	सींचा हुआ	दो फसली क्षेत्रफल		
२१	बिना सींचा हुआ			
२२	जमीन की किस्म	बिना जोती हुई भूमि		
२३	क्षेत्रफल			
२४	कैफियत			

खतौनी

क्रम	विवरण		
१	सिलसिलेवार नम्बर		
२	किसान का नाम, वल्दियत और जात		
३	खेती का समय		
४	खसरा नम्बर		
५	गाँव के बीघों में		क्षेत्रफल
६	एकड़ या बन्दोबस्ती बीघों में		क्षेत्रफल
७	बिना जोता गया क्षेत्रफल		
८	कानूनी माँग		
९	ज्यादा माँग	नकद लगान	लगान
१०	अनाज की नकद कीमत	अनाज लगान	लगान
११	अन्य सम्बन्धी खेतों का लगान		
१२	किस्त और साल		कुल माँग बकाया बाकी
१३	प्रत्येक किस्त की माँग		कुल माँग बकाया बाकी
१४	रकम		वसूलयाबी
१५	सियाहे के नम्बर की तारीख		वसूलयाबी
१६	प्रत्येक किस्त का बकाया भाग		
१७	कैफियत		

क्रम	विवरण	
१	थोक और पत्ती का नम्बर और नम्बरदार का नाम	
२	हिस्से (खाता) का सिलसिलेवार नम्बर	
३	हिस्से की तादाद, लगान और कर	
४	हिस्सेदार का नाम, वल्दियत वगैरह	फसली के लिए
५	तबादला करने वालों के नाम वगैरह	
६	जिसका तबादला हो उसका नाम मय रजिस्ट्रार-कानूनगो के दस्तखत, वगैरह	
७	तबादला होने वाले व्यक्तियों के नाम, वल्दियत वगैरह	
८	(जैसा स्तम्भ ५ में है)	फसली के लिए
९	(स्तम्भ ६ की तरह)	
१०	(स्तम्भ ७ की तरह)	
११	(स्तम्भ ५ की तरह)	फसली के लिए
१२	(स्तम्भ ६ की तरह)	
१३	(स्तम्भ ७ की तरह)	
१४	(स्तम्भ ५ की तरह)	फसली के लिए
१५	(स्तम्भ ६ की तरह)	
१६	(स्तम्भ ७ की तरह	
१७		कैफियत

है कि काश्तकार और जमीदार पटवारी की मदद करके, ठीक ठीक बातें पटवारी को लिखा दें। अस्तु, शजरा मिलान में गाँव की जितनी जमीन होती है, उसका इसमें खेतवार ब्यौरा रहता है। इस नक्शे को देखकर कोई भी किसान अपना खेत जान सकता है।

खसरा

शजरा मिलान में तो खेतों का नक्शा ही रहना है लेकिन खसरे में जमीन का पूरा हाल रहता है। नक्शे में जितने खेत रहते हैं उसमें उनके नम्बर दिये रहते हैं। वही नम्बर सिलसिलेवार खसरे मे दर्ज रहते है। उन्हीं नम्बरों के साथ उन खेतों का क्षेत्रफल, लगान, जमीन किस तरह की है, जमींदार का नाम, किसान का नाम और फसल की किस्म आदि सब लिखे रहते हैं, जैसा साथ मे छपे खसरे के फार्म से स्पष्ट है। खसरे का ठीक-ठीक लिखा जाना बहुत जरूरी है। खेती की गलत नाप जोख का असर शजरा मिलान में तो नहीं के बराबर रहता है, लेकिन खसरे में अगर कुछ भी गलत लिखा जाता है तो बाद मे लडाई-झगडे चल जाते हैं और किसान वगैरह मुसीबत मे पड जाते हैं। इसलिये यह परमावश्यक है कि जमींदार और काश्तकार दोनों पटवारी के साथ रहकर अपने खेत की सब बातें खसरे में लिखवा दें। जो-जो फेर-फार हुए हैं, वे जरूर ही पटवारी के कागजों मे दर्ज हो जाने चाहिये। प्रत्येक गाँव का खसरा हर वर्ष ३० अप्रैल तक तैयार होना चाहिए जो दूसरे वर्ष अगस्त तक रजिस्ट्रार के दफ्तर में जमा हो जाता है।

स्याहा

स्याहा वह कागज होता है जिसमें पटवारी जमींदार के कागजात देखकर लगान की वसूलयाबी की खानापूरी करता है।

वहीखाता जिन्सवार

वहीखाता जिन्सवार में लगान का हिसाब लिखा जाता है। इसके साथ ही लगान का तरीका भी दिया रहता है, चाहे वह बटाई से लिया जाय चाहे और किसी तरीके से।

खतौनी

खतौनी जमाबन्दी खसरे के मुताबिक बनाई जाती हैं। इसमे कब्जे के

मुताबिक किसानों के नाम दिये जाते हैं। किसानों और जमींदार के सब खेत एक जगह दर्ज रहते हैं। उसी में साथ ही लगान और बकाया लगान भी लिखा रहता है। खतौनी में भी सब जरूरी तबदीलियाँ लिखी रहती हैं। खतौनी का एक फार्म पृष्ठ १४६ पर छपा है।

खेवट

ऊपर पटवारी के कागजातों में खेवट का नाम भी आया है। यह महालवार तैयार किया जाता है। हर एक महाल में सभी दखलकारों का एक रजिस्टर होता है। उसमें रकबे के सब मालिकों का हर एक अधिकार लिखा रहता है और यह भी लिखा रहता है कि वह अधिकार कितना और किस किस्म का है। पृष्ठ १५० पर छपे खेवट के फार्म से यह बात स्पष्ट है। खेवट में जो तबदीली होती है वह रजिस्ट्रार कानूनगो की आज्ञा लेकर होती है। उसके हुक्म के बिना कोई फेर-फार नहीं हो सकता। जो भी घटा बढ़ी होती है उस पर उसके दस्तखत होते हैं, जिसने कि उनके लिए वही जिम्मेदार रहें।

पटवारी के अन्य कार्य

ऊपर बताये छः कागजातों को तो पटवारी पूरा ही करता है। उसके अलावा जब कोई किसान या जमींदार मर जाता है, जब कोई जमीन बेची जाती है, गाँवों की जब सरहद बदली जाती है, तब इन सब का हाल पटवारी को लिखकर देना पड़ता है। इसके अलावा जिस साल वर्षा कम होने के कारण, बाढ़ के कारण उपज मारी जाती है, तब भी पटवारी को रिपोर्ट लिखनी पड़ती है।

पटवारी गाँव के बहुत काम का होता है। लेकिन वह किसानों पर होने वाले अत्याचार नहीं रोक सकता। ये अत्याचार तो तभी रुक सकते हैं जब जमींदारों की आँखें खुलें या किसान मिलकर कुछ काम करें। अब तो गाँव में लोग मिलकर समिति बना लेते हैं। इसे सहकारी समिति कहते हैं। सहकारी समितियाँ किसानों की हालत बहुत-कुछ सुधार सकती हैं। हम इनका विचार सहकारिता के अन्तर्गत करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसानों से पूछ कर यह ठीक ठीक पता लगाइये कि उनको गत वर्ष में अपने जमींदार को किस प्रकार की कितनी बेगार देनी पड़ी।

२—यदि आप किसी गाँव के जमींदार बना दिये जायँ तो उस गाँव के किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए आप क्या प्रयत्न करेंगे ?

३—गैरमारूसी काश्तकार की तुलना में मौरूसी काश्तकार की खेती अच्छी होने के प्रधान कारण क्या हैं ?

४—'किसान के गरीब होने से अंत मे जमींदार भी गरीब हो जाता है'—इस कथन की सत्यता सिद्ध कीजिए।

५—जिन प्रदेशों में जमींदार नहीं हैं, क्या उनमें किसानों की दशा अच्छी है ? यदि नहीं तो उसके प्रधान कारण क्या हैं ?

६—स्थायी बन्दोबस्त के गुण-दोष लिखिये।

७—उत्तर प्रदेश और बम्बई प्रदेश की मालगुजारी निश्चित करने की प्रणालियों की तुलना कीजिए। अर्थशास्त्र की दृष्टि से कौन सी प्रणाली उत्तम है ?

८—उत्तर प्रदेश मे नये कानून द्वारा किसानों को कौन-सी सुविधाएँ प्राप्त हुई हैं ? संक्षेप में लिखिए।

९—गाँव में पटवारी का क्या महत्व है ? इसके द्वारा किसानों का क्या लाभ हो सकता है ?

१०—पटवारी के मुख्य कागजातों का वर्णन कीजिए। ये कागजात ठीक किस प्रकार रखाये जा सकते हैं ?

११—अपने गाँव के पटवारी से 'खसरा' लेकर उसका एक पृष्ठ नकल कर लाइये और यह जाँच कीजिए कि उसमे लिखी हुई बातें कहाँ तक ठीक हैं।

१२—शजरा मिलान क्या है ? उसका महत्व समझाइये।

१३—उत्तर प्रदेश की भूमि-व्यवस्था को संक्षेप में समझाइये। इस समय काश्तकारों की मुख्य श्रेणियाँ क्या हैं ? (१९४९)

१४—उत्तर प्रदेश में जो जमींदारी उन्मूलन कानून बना है उससे क्या लाभ है ? इस कानून के बनने से मुकदमेबाजी घटेगी या बढ़ेगी ? (१९५३)

१५—'भूमिधर' किसान किसे कहते हैं और उसके क्या अधिकार हैं ?

१६—प्रादेशिक सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन कानून क्यों बनाये हैं ? उत्तर प्रदेश में इस कानून मे कितने प्रकार के किसान रखे गए हैं ? भूमिधर किसान के क्या अधिकार हैं ? (१९५२)

———

पन्द्रहवाँ अध्याय

ग्रामों की समस्याओं का दिग्दर्शन

(Village Problems)

पहिले अध्यायों में अर्थशास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों पर विचार किया जा चुका है। अगले अध्यायों से हम ग्रामों की समस्याओं पर विचार करेंगे। इस अध्याय में केवल इन समस्याओं का दिग्दर्शन कराते हैं।

भारत कृषि-प्रधान देश है। लगभग ३६ करोड़ जनसंख्या वाले इस महादेश में लगभग ७५ प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। जिस देश में लगभग तीन चौथाई जनसंख्या खेती करके गुजारा करती हो, वहाँ गाँवों का बहुतायत से होना अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि भारत गाँवों का देश है। सारे देश में लगभग ५¾ लाख गाँव हैं, जिनमें देश की ८५ प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। ऐसी दशा में यदि भारत को गाँवों का देश कहा जाता है तो कोई आश्चर्य नहीं है। महात्मा गाँधी ने ठीक ही कहा था कि वास्तविक भारत की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नहीं हो सकती, यदि किसी को भारत का सच्चा स्वरूप देखना है तो उसे गाँवों की ओर जाना चाहिये।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह तो ज्ञात हो गया कि भारत में गाँवों का बहुत अधिक महत्व है। गाँव कोई नई संस्था नहीं है, वह हजारों वर्ष पुरानी है और आज भी, जब कि उसकी सब ओर से उपेक्षा हो रही है वह जीवित है। परन्तु गाँवों की दशा अत्यन्त गिरी हुई है। गाँवों में रहने वाले अधिकांश ग्रामीण पशुवत् जीवन व्यतीत करते हैं। दरिद्रता, गंदगी, लड़ाई-झगड़े, ऋण और अशिक्षा का गाँवों में एकछत्र राज्य है। सच बात तो यह है कि गाँवों की दशा अत्यन्त दयनीय है। न वहाँ स्कूल, अस्पताल और सड़कें ही होती हैं और न सभ्यता के कोई दूसरे ही साधन वहाँ मिलते हैं।

सैकड़ों वर्षों से नगरों द्वारा गाँवों का शोषण होता रहा है। गाँवों का केवल आर्थिक शोषण ही हुआ हो, यही बात नहीं है। प्रादेशिक सरकार अपनी आय

का अधिकांश भाग गाँवों से वसूल करके अधिकतर नगरों पर व्यय करने लगी। इसका फल यह हुआ कि गाँव निर्धन हो गये। जमींदारों के नगर में जाकर बसने से एक हानि यह हुई कि जो भी गाँवों मे शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति थे गाँव में नहीं रहे। क्रमश गाँवों मे बुद्धि और धन का अकाल हो गया। इसका फल यह हुआ कि गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई। उनका सब तरह से पतन हो गया।

हर्ष का विषय है कि सैकड़ों वर्षों के उपरान्त अब सरकार, देश के नेताओं, तथा शिक्षित व्यक्तियों का ध्यान गाँवों की गिरी हुई अवस्था की ओर आकर्षित हुआ और ग्राम-सुधार आन्दोलन देश मे उठ खड़ा हुआ है। इसमे तो तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि हम चाहते हैं कि अधिकाश जनसख्या आज जैसी नीची श्रेणी का जीवन व्यतीत न करके अच्छा जीवन व्यतीत करे तो हमें गाँवों का सुधार करना चाहिए।

इससे पहले कि हम गाँवो को सुधारने की बात सोचें, हमें यह जान लेना आवश्यक है कि भारत के गाँवो मे कौन-कौन सी ऐसी समस्यायें हैं, जिनके हल किये बिना गाँवों का सुधार नहीं हो सकता।

गाँवों का महत्व

विद्वानों ने बहुत खोज करने के बाद यह नतीजा निकाला है कि जो कुटुम्ब गाँवों में रहते है उनका जीवन और शक्ति शहरों में रहने वाले कुटुम्बों की अपेक्षा अधिक होती है। यदि किन्हीं सौ ग्रामीण कुटुम्बों को ले लिया जाय जो बराबर गाँव मे पीढ़ी दर पीढी से रहते हों और उन्हीं की स्थिति के सौ शहराती कुटुम्बों को ले लिया जाय तो मालूम होगा कि गाँव में रहने वाले कुटुम्बों की आयु शहरों में रहने वाले कुटुम्बों से अधिक होगी। कहने का तात्पर्य यह कि जो कुटुम्ब सदैव गाँवों में रहते हैं वे बहुत अधिक पीढियों तक चलते रहते हैं और शहरों में रहने वाले कुटुम्ब कुछ पीढियों के बाद समाप्त हो जाते हैं। सच तो यह है कि गाँव, मनुष्य जन-संख्या की नर्सरी है जहाँ से मनुष्य रूपी पौधा शहरों में लगाया जाता है। जिस प्रकार कोई पौधा अपनी प्राकृतिक अवस्था में खूब पनपता है और अप्राकृतिक वातावरण में उसकी बाढ़ रुक

जाती है, ठीक उसी तरह से मनुष्य की जीवन-शक्ति शहरों में पीढी दर पीढी कम होती जाती है।

यदि गाँवों से शहरों में नया खून न पहुँचे तो शहरों में बहुत घटिया लोग दिखलाई दें। लेकिन गाँव से कुछ न कुछ कुटुम्ब सदैव शहरों में जाकर बसते रहते है और वहाँ जाकर धीरे-धीरे निस्तेज हो जाते हैं। इसलिये ग्रामीण जन-सख्या ही किसी देश की शक्ति का आधार है। यदि ग्रामीण जनसख्या गिरी हुई दशा में रही तो देश की अवनति हुए बिना नहीं रह सकती। इसके लिए यह जरूरी है कि स्वस्थ, बुद्धिमान और पुरुपार्थी स्त्री-पुरुष गाँव मे रहे।

आज भारतीय गाँवों की दशा यह है कि जो भी गाँव का लड़का पढ़ जाता है, जो चार पैसे वाला हो जाता है, वह सदैव के लिए गाँव छोड़कर शहरों में जाकर बस जाता है। जमींदार शहरों के आकर्पण के कारण अपनी जमीदारियाँ छोड़कर शहरो मे जाकर बस गए। ये जमींदार किसानों से प्राप्त धन को गाँवों में व्यय न करके शहरों मे व्यय करते थे। इस कारण गाँव निर्धन होते गए। भारत के गाँव का मस्तिष्क और पूँजी बाहर चली जा रही है। गाँव दिवालिया हो रहे हैं। जो भी व्यक्ति बुद्धिमान, साहसी और महत्वाकाक्षी होता है, वही गाँव छोड़कर शहर में जा बसता है। क्रमशः गाँवों में मनुष्य का छाँटन रह गया है और प्रथम श्रेणी के लोग शहरों में जाकर निस्तेज और क्षीण होते जा रहे है। इसका देश पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है और हमारा सब तरह से पतन हो रहा है।

कुछ हद तक गाँवों से शहरों की ओर प्रवास होना अनिवार्य है। हमारा कहना यह है कि गाँवों मे शिक्षित, बुद्धिमान और साहसी व्यक्ति रहना पसन्द करें जिससे कि जाति का ह्रास न हो।

अब हमें देखना चाहिये कि लोग गाँवों से भागते क्यो हैं? गाँवों में आय के साधन कम हैं। ऊँचे दर्जे का सामाजिक जीवन, शिक्षा, मनोरञ्जन, सड़क डाक, रेल, तार इत्यादि का अभाव है। यही कारण है कि कुशाग्र बुद्धि और महत्वाकाक्षी युवक शहरो की ओर भागते हैं।

अस्तु जब तक हम गाँवो मे यथेष्ट आय के साधन, शिक्षा, मनोरञ्जन, सड़कें, डाक इत्यादि की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं कर देंगे तब तक यह प्रवास नहीं

कर सकता। वास्तव में हमारे ग्राम-सुधार आन्दोलन का यही लक्ष्य होना चाहिये।

गाँवों की समस्याएं

मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि गाँवों की नीचे लिखी मुख्य समस्याएं हैं—

१—ग्रामवासियों का घोर निराशावादी दृष्टिकोण। गाँव वाला इस बात का विश्वास ही नहीं करता कि उसकी दशा सुधर सकती है, अतः वह अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न भी नहीं करता।

२—गाँव में सफाई का अभाव, रोगों की बहुलता तथा चिकित्सा के साधनों का अभाव।

३—गाँव में शिक्षा की कमी।

४—गाँवों में मनोरंजन तथा खेल-कूद के साधनों का अभाव तथा घरों को अधिक आकर्षक बनाने की समस्या।

५—स्वास्थ्य रक्षा तथा उसके सिद्धान्तों की जानकारी न होना।

६—पशुओं की समस्या तथा उनकी उन्नति के उपाय।

७—खेती-बारी की उन्नति।

८—गाँव में लड़ाई झगड़े और मुकदमेबाजी की समस्या।

९—ग्रामीण ऋण की समस्या।

१०—गाँवों में धन्धों की कमी और आय के साधनों का न होना।

११—गाँवों में गमनागमन के साधनों का अभाव।

१२—गाँवों में प्रचलित सामाजिक कुरीतियाँ तथा अंधविश्वास।

१३—गाँव में बेकारी।

अब हम प्रत्येक समस्या को लेकर उसकी विस्तृत आलोचना अगले अध्यायों में करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के गाँवों का महत्व बतलाइये और लिखिए कि गाँव वर्तमान समय में इतने महत्वपूर्ण क्यों हो रहे हैं?

२—भारत के गाँवों की वर्तमान गिरी हुई दशा के मुख्य कारण क्या हैं? विस्तारपूर्वक लिखिए।

३—"ग्राम-सुधार" कार्य से आप क्या समझते हैं? आजकल यह विषय इतना महत्वपूर्ण क्यों बन गया है?

४—गाँव की मुख्य समस्यायें क्या हैं? संक्षेप में लिखिए।

५—यदि गाँव में पुरुषार्थी, बुद्धिमान और महत्वाकांक्षी व्यक्ति न रहें तो क्या हानि होगी?

६—अपने प्रदेश के गाँवों की मुख्य समस्याएँ बतलाइए। ग्राम-सुधार तथा कृषि विभाग ने उनका कहाँ तक सुधार किया है? (१९४४ तथा १९४६)।

सोलहवाँ अध्याय

किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

वास्तविक बात तो यह है कि ग्रामवासी इतने अधिक निराशावादी बन गये हैं कि उनको, चाहे कितना कहा जाय यह विश्वास ही नहीं होता कि उनकी दशा में सुधार हो सकता है। यही कारण है कि जब उनमें किसी नवीन सुधार को स्वीकार करने के लिए कहा जाता है तो वे इच्छापूर्वक उसे कभी स्वीकार नहीं करते। यदि ग्रामीण चेचक का टीका लगवाता है तो इस कारण नहीं कि उसका विश्वास है कि वह लाभदायक है, परन्तु सरकारी कर्मचारियों के भय से अथवा सरकार को प्रसन्न करने के लिए वह ऐसा करता है। सरकार किसानों के हितों की रक्षा करने के लिए कानून बनाती है, परन्तु वह कानूनों का बहुत कम उपयोग करता है। आजकल ग्राम सुधार आन्दोलन का जोर है। किसी किसी गाँव में यह दिखलाई पड़ता है कि मानों किसानों ने सफाई, घरों में हवा और रोशनी तथा अन्य आवश्यक सुधारों को अपना लिया है, किन्तु वास्तविक बात तो यह है कि यह सब सरकारी अफसरों के भय से अथवा उनको प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। यदि सरकारी कर्मचारी अथवा जिलाधीश उस गाँव की ओर से अपना ध्यान हटा लेते हैं तो थोड़े ही दिनों में गाँव पुरानी दशा को पहुँच जाता है। इसका मुख्य कारण है कि ग्रामवासियों के हृदय में अपनी तथा अपने गाँव की दशा सुधारने की तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं होती। जो कुछ भी वे करते हैं, बाहरी दबाव के कारण करते हैं।

प्रश्न यह है कि ग्रामवासी इतने अधिक निराशावादी क्यों हैं ? क्यों वह अपने सुख, स्वास्थ्य और उन्नति के प्रति इतने उदासीन हैं। इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें ग्रामवासियों की वास्तविक स्थिति को समझना होगा। वे शताब्दियों से दुर्भिक्ष और रोगों के शिकार होते चले आ रहे हैं। प्रकृति ऐसी चंचल और स्थिर है कि खेती का धंधा बिलकुल अनिश्चित बन गया है। किसान चाहे जितनी मेहनत करे, चाहे जितनी सावधानी से खेती को जोते-बोवे, परन्तु वर्षा के कम होने से, अथवा अत्यधिक वर्षा होने से, टिड्डियों तथा अन्य फसलों के रोगों से ओलों और तुषार से तथा अन्य प्राकृतिक परिवर्तनों से उसकी खेती नष्ट हो सकती है। किसान इस प्राकृतिक आक्रमण से अपनी फसल की रक्षा करने में असमर्थ रहता है। यही नहीं, शताब्दियों से वह और उसके पशु भयंकर रोगों के शिकार होते आ रहे हैं। जहां पशुओं की बीमारी फैली कि लाखों की संख्या में पशु मरने लगते हैं और यही दशा मनुष्यों की होती है।

यही नहीं, किसान मरकर कर्जे के बोझ से इतना दबा रहता है कि वह अपने खेतों में जो कुछ पैदा करता है उसका बहुत बड़ा हिस्सा महाजन के पास चला जाता है। बेचारे गरीब किसान के पास तो सिर्फ ६ या १० महीने के खाने का अनाज भर रह जाता है। इन परिस्थितियों के कारण ग्राम-वासी नितान्त निराशावादी तथा भाग्यवादी बन गया है।

यही कारण है कि ग्रामवासियों के जीवन का सिद्धान्त यह बन गया है कि 'वर्तमान को देखो भविष्य की चिन्ता न करो। क्योंकि भविष्य में क्या होगा यह कोई नहीं जानता। एक कारण और भी है जो किसान को अपने धंधे की उन्नति करने से रोकता है। वह है उसका ऋणी होना। भारतीय किसान इस बुरी तरह ऋण के बोझ से दबा हुआ है कि यदि वह वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती करके अपनी भूमि की पैदावार बढ़ाता है तो उसे कुछ लाभ नहीं होता। जितनी अधिक पैदावार होती है वह महाजन के पास जाती है। किसान को तो वर्ष में केवल आठ महीने का भोजन मिलता है। ऐसी दशा में वह खेती के आवश्यक सुधारों को क्यों अपनावे। जमींदारी प्रथा भी किसान को निराशावादी बनाती थी। हर्ष की बात है कि अब जमींदारी प्रथा नष्ट हो गई है।

ग्रामवासियों को भाग्यवादी से पुरुषार्थवादी और निराशावादी से आशा-

वादी कैसे बनाया जावे ? इसमे तनिक भी सन्देह नहीं कि जब तक ग्रामवासी यह विश्वास नहीं करने लगते कि उनकी गिरी हुई दशा मे सुधार होना सम्भव है और अपनी दशा सुधारने के लिये उनमें उत्कट लालसा उत्पन्न नहीं होती, तब तक गॉवो का सुधार होना असम्भव है। गॉवो का सुधार स्वय ग्रामवासियों के द्वारा ही हो सकता है, अन्यथा हो ही नहीं सकता। यदि सरकार अथवा और कोई सस्था किसी गॉव मे नालियॉ, सड़कें तथा अन्य आवश्यक वस्तु उपलब्ध कर दे तो थोडे दिन मे उनका निशान भी नहीं रहेगा। नालियों और सडकों की देख-भाल, सफाई और मरम्मत कौन करेगा। गॉव वाले तो उन्हें चाहते नहीं थे, वे तो उन्हें दान स्वरूप मिली हैं। जिस वस्तु के लिए हम परिश्रम करते हैं अथवा धन व्यय करते हैं उसका ठीक उपयोग भी करते हैं और उसकी देख-भाल भी करते हैं। अतएव सरकार तथा ग्राम सुधार काय करने वाली अन्य सस्थाओं का कार्य केवल इतना ही होना चाहिये कि वे अनुसधान करें, ग्राम समस्याओं को कैसे हल किया जा सकता है, इसका अध्ययन करें और उसके अनुसार योजना बनाकर गॉव वालों को बतावें।

यह तो हुआ काम करने का ढङ्ग, परन्तु किसानों के भाग्यवादी दृष्टिकोण को कैसे बदला जावे ? इसके लिए लगातार प्रचार तथा शिक्षा की आवश्यकता होगी। शिक्षा तथा प्रचार के द्वारा ही उनका दृष्टिकोण बदला जा सकता है। जब ग्रामवासियों का दृष्टिकोण बदल जावेगा, तभी उनमे अपनी वर्तमान दयनीय दशा के विरुद्ध असन्तोष तथा घृणा उत्पन्न होगी। जिस दिन ग्रामवासियों मे अपनी गिरी हुई दशा के विरुद्ध असन्तोष तथा घृणा उत्पन्न हो जावेगी और वे भाग्यवादी नहीं रहेंगे, उसी दिन से ग्रामों की दशा स्वय सुधरने लगेगी।

आज तो भारतीय किसान घोर भाग्यवादी बन गया है। यदि खेत की फसल नष्ट हो जाती है, बैल मर जाता है, कर्जे मे जमीन-जायदाद बिक जाती है या बीमारी मे उसके परिवार का कोई व्यक्ति मर जाता है, तो वह "भाग्य का दोष" कह कर चुप हो जाता है। उस विपत्ति को दूर करने के लिए कोई प्रयत्न नही करता। बाप-दादो से चले आने वाले पैतृक कर्जा, जमींदार, पुलिस, महाजन, अदालतों और तहसीलो के कर्मचारियों का अत्याचार और शोषण, निर्धनता, बीमारी, अशिक्षा और गरीबी ने उसे इतना

निराशावादी बना दिया है कि वह यह स्वप्न मे भी नहीं सोचता कि उसकी दयनीय स्थिति में सुधार हो सकता है। जब ग्राम-सुधार कार्यकर्ता उससे कहता है कि यदि कार्यकर्ता की बातो पर ध्यान दे तो उसकी स्थिति सुधर सकती है, तो ग्रामीण सुन तो लेता है किन्तु विश्वास नहीं करता। और जब तक ग्रामीण का निराशावादी दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक कोई स्थायी सुधार नहीं हो सकता।

अस्तु, जरूरत इस बात की है कि उसके दिल में अपनी इस दयनीय अवस्था के विरुद्ध घृणा और घोर असन्तोष उत्पन्न किया जावे। वह सोचने लगे कि मै इस बुरी दशा में नहीं रहूँगा, तब फिर उसे बतलाया जावे कि वह अपनी दशा किस प्रकार सुधार सकता है। तभी ग्रामीण नई बातों को स्वीकार करेगा।

अतएव जब तक किसान के हृदय मे अपनी दयनीय दशा के विरुद्ध तीव्र असतोष उत्पन्न नहीं होता, तब तक न तो उसका निराशावादी दृष्टिकोण ही दूर होगा और न वह अपनी दशा को सुधारने की चेष्टा ही करेगा।

आज तो वह "मृत्यु का संतोष" लिये हुए जी रहा है। जो लोग भी गाँवों की दशा को सुधारना चाहते हैं उन्हें इसके विरुद्ध ग्रामीणों में "असन्तोष" की भावना भरनी चाहिये।

अभ्यास के प्रश्न

१—किसानों को जब उसके स्वास्थ्य और खेती की उन्नति के लिए कोई भलाई की बात बतलाई जाती है तो वह उसको अपनी इच्छा से कभी नहीं मानता। इसका कारण क्या है?

२—किसान इतना अधिक निराशावादी क्यों बन गया है? इसके कारण बतलाइये।

३—गाँववालों की दशा को सुधारने में उनका निराशावादी और भाग्यवादी होना क्यों बाधक है?

४—गाँववालों की दशा मे सुधार करने के लिए उनमें अपनी वर्तमान गिरी हुई दशा के प्रति असन्तोष उत्पन्न करने, और उन्हें पुरुषार्थवादी बनाने की जरूरत क्यों है?

५—'खेती की सफलता भाग्य पर निर्भर है।' इस कथन की आलोचना कीजिये।

———

सत्रहवाँ अध्याय

गाँव की सफाई

रोग—साधारणतः हम लोगों की यह धारणा बन गई है कि हमारे गाँवों मे मनुष्यों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। गाँवों मे रोग और महामारी बहुत कम होती है। क्योंकि मनुष्यो को खुली हवा और सूर्य का प्रकाश खूब मिलता है। किन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। प्लेग, हैजा, हुकवर्म, कालाजार, चेचक तथा क्षय रोग गाँवों में घर बनाये हुए हैं। इन भयकर रोगों के अलावा वर्षा के बाद गाँवों मे सर्वत्र जूड़ी-बुखार का भयंकर प्रकोप होता है। बगाल और आसाम मे तो मलेरिया का भीषण प्रकोप होता है। धान की फसल खड़ी रहती है किन्तु काटने वाले नहीं मिलते। इसका कारण है, गाँवो की गदगी।

गंदगी—गाँवों में सर्वत्र गदगी का साम्राज्य होता है। गाँवो के समीप जाइये; दुर्गन्ध, मक्खियों, धूल और कूडे की बहुतायत पाइयेगा। गाँव के समीप ही छोटे-छोटे ताल और पोखरे होते हैं जिनमें गदा पानी सडा करता है। अनेक रोगो के कीटाणु यहीं जन्म लेते हैं। घरो मे नालियाँ या नाबदान नहीं होते, जिसके कारण घरों का पानी गलियो मे बहता रहता है। गाँवो की गलियाँ कच्ची होती हैं, वे कभी साफ नहीं होतीं, उन पर धूल और कूड़ा जमा रहता है। बरसात मे ये गलियाँ दलदल बन जाती हैं। किसानो की स्त्रियाँ घरो को साफ रखती हैं, किन्तु गली मे कोई सफाई नही करता। अधिकतर गावों के घरों मे शौचस्थान नहीं होते, स्त्री-पुरुष बाहर खेतों और मैदानों मे शौच को जाते हैं। गाँवो की आबादी के चारों ओर मैदान, खेत, जङ्गल तथा तालाब ही गाँव वालों के शोचस्थान होते हैं। इससे गाँव मे गदगी फैलती है तथा वायु अशुद्ध होती है। गाँव के अन्दर ही खाद के ढेर लगे रहते हैं जिन पर मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं। घरा मे काफी हवा और रोशनी आने का कोई प्रबन्ध नहीं होता और जिन घरों मे मनुष्य रहते हैं उनमे ही पशुओ को रक्खा जाता है, इस कारण घर भी गन्दे रहते हैं। इन सब कारणों से गाँव में बहुत गन्दगी रहती है और उसी के कारण पशु और मनुष्यों की बीमारियाँ फैलती हैं। अब हम प्रत्येक गन्दगी के कारण पर विचार करते हैं।

ताल या पोखरे

ग्रामवासी अपने मकान कच्ची मिट्टी के बनाते हैं। प्रतिवर्ष बरसात बीतने आने पर उन्हें अपने मकानों की मरम्मत करनी पड़ती है। अतएव उन्हें मिट्टी की बहुत आवश्यकता होती है। दूर न जाकर गाँव के लोग आबादी के पास ही भूमि को खोदकर मिट्टी निकालते हैं जिससे उन्हें मिट्टी ढोना न पड़े। कहीं-कहीं धीरे-धीरे वह स्थान तालाब या पोखरा का रूप धारण कर लेता है। गाँव जितना ही पुराना होता है, उतने ही अधिक ताल और पोखरे बनते जाते हैं, क्योंकि गाँव वालों को मिट्टी की हर साल आवश्यकता पड़ती है।

ताल व पोखरों में बरसात का पानी भर जाता है। वर्षा के दिनों में गाँव की गन्दगी को साथ लेकर पानी इस ताल या पोखरे में आता है और वहीं सड़ता रहता है। गाँव वाले मैदान में अथवा ताल के किनारे शौच जाते हैं और अधिकतर ताल के पानी से ही बदन की सफाई करते हैं। इस कारण ताल का पानी और भी गन्दा और दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। सड़े हुए और गन्दे पानी में मलेरिया के मच्छर तथा अन्य रोगों के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं और उनसे गाँवों में रोग फैलते हैं। इन्हीं तालों और पोखरों का पानी गाय और बैल पीते हैं। भला इतने गन्दे पानी को पीकर पशु बीमारी से कैसे बच सकते हैं? पशुओं की बीमारी फैलने का यह गन्दा पानी एक मुख्य कारण है। गाँव की स्त्रियाँ इन्हीं तालों में अपने कपड़े धोती हैं और कोई-कोई स्त्री-पुरुष तो इनमें नहाते भी हैं। ताल के पास रहने वाले लोग उसी में कूड़ा भी डाल देते हैं। वह सड़ता रहता है। इन सब कारणों से ये ताल और पोखरे निरन्तर गाँव को दुर्गन्ध और गन्दी वायु देते रहते हैं। यह तो प्रत्येक समझदार मनुष्य जानता है कि इन गन्दे ताल व पोखरों का प्रभाव गाँव वालों के स्वास्थ्य के लिए कैसा घातक सिद्ध होता है।

गाँव के ताल तथा पोखरे एक बहुत बड़ी समस्या हैं। गाँव के चारों ओर ये ताल बन जाते हैं, इसका फल यह होता है कि गाँव के बालकों को खेलने के लिए तथा खाद के गड्ढे बनाने के लिए और गाँव को बढ़ाने के लिए जमीन ही नहीं रहती। आवश्यकता इस बात की है कि गाँव के समीपवर्ती ताल तथा पोखरे भर दिये जावें और गाँव से यथेष्ट दूरी पर तालाब

खोदा जावे। गाँव के समीपवर्ती तालों को भरने के लिए, नये तालों की मिट्टी काम में लाई जा सकती है। तालावों का उपयोग करने का एक ढङ्ग यह भी है कि उसके चारों ओर एक मेड बना दी जावे जिससे गाँव का पानी उसमें न जावे। जब ताल बिलकुल सूख जावे तब उसको लेवेल (चौरस) करा दिया जावे और वह बालकों के लिए खेल का मैदान बना दिया जावे। यदि गाँव में चकबन्दी (Consolidation of land holdings) कर दी जावे तो गाँव के आस-पास की भूमि, खाद के गड्ढों, शौच-स्थानों तथा खेल के मैदानों के लिए बचाई जा सकती है और ताल कुछ दूरी पर खोदा जा सकता है। एक बात और ध्यान में रखने की है। गाँव का पानी ताल में न जाने दिया जावे। गाँव की ओर एक मेंड़ बना दी जावे, केवल जङ्गल का पानी ही ताल में जावे। गाँव से बहा हुआ पानी बहुत गन्दा हो जाता है। गाँव का पानी खेतों की ओर बह जावे तो अच्छा है। मकानों की मरम्मत करने के लिए गाँव वाले दूर से मिट्टी लावें, गाँव के पास से न खोदें।

खाद के गड्ढे

अभी तक गाँव वाले जो कुछ भी खाद बनाते हैं, वह ढेर लगा कर बनाते हैं। इससे खाद भी अच्छी तैयार नहीं होती और गाँव में गन्दगी बढ़ती है। इन्हीं खाद के ढेरों के कारण गाँव में मक्खियाँ बढ़ जाती हैं और हवा से कूड़ा उड़-उड़ कर पानी, भोजन तथा आँखों में पड़ता है। गाँव को साफ रखने के लिए यह आवश्यक है कि खाद को गड्ढों (Manure pits) में रक्खा जावे। प्रत्येक किसान दो गड्ढे खोदे और जब तक एक में खाद तैयार होवे दूसरे में गोबर तथा कूड़ा-कचरा डाला जावे। गड्ढे के भर जाने पर उसे मिट्टी से ढक दिया जावे। गड्ढा पाँच या छ फुट गहरा होना चाहिये। इससे दो लाभ होंगे। एक तो गाँव में कूडे के ढेर नहीं रहेंगे और दूसरे अभी जो बहुत सी खाद व्यर्थ फेंक दी जाती है, वह प्रयोग में आ जावेगी। अच्छी खाद से अच्छी फसल तैयार हो सकेगी। किन्तु एक कठिनाई यह है कि गाँव के पास गड्ढे खोदने की जगह नहीं मिलती, और बहुत दूर खोदने पर घर का गोबर कूड़ा करकट उसमें सारा का सारा डाला नहीं जा सकता।

शौचस्थान

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाँव के घरों में शौचस्थान नहीं होते, इस कारण गाँव के चारों ओर गन्दगी रहती है। गाँववासी अधिकतर नंगे पैर रहते हैं, अतः मल उनके पैरों में लगता है। उससे एक प्रकार का हुकवर्म (Hook worm) रोग उत्पन्न होता है। जब मल सूख जाता है तो वह हवा के साथ उड़कर गाँव के कुओं के पानी, भोजन तथा पशुओं के चारे को दूषित करता है और मनुष्य की आँखों में पड़ता है। गाँव वालों का यह विचार भ्रमपूर्ण है कि खेतों में शौच जाने से भूमि की उत्पादक शक्ति बढ़ती है। जब तक खाद सड़ कर तैयार न हो जावे, वह भूमि की उत्पादक शक्ति नहीं बढ़ा सकती। जिस प्रकार कच्चा भोजन नहीं पचता उसी प्रकार कच्ची खाद से कोई लाभ नहीं होता, वरन् उससे दीमक उत्पन्न होती है। खाद को गड्ढों में सड़ाकर ही खेतों में डालना चाहिये। प्रयत्न तो यह करना चाहिये कि प्रत्येक घर में एक शौच स्थान हो और कुछ सार्वजनिक शौचगृह हों, जिनका उपयोग अजनबी तथा गाँव में बाहर से आने वाले व्यक्ति कर सकें, परन्तु अभी यह सम्भव नहीं है। भारत में तीन प्रकार के शौचस्थान गाँवों के लिए उपयोगी बतलाये गये हैं। एक तो खाद के गड्ढे को ही शौचस्थान की भाँति काम में लाया जावे, किन्तु किसान मैला के खाद को छूना नहीं चाहता, इस कारण इन गड्ढों का उपयोग नहीं किया जा सकता। दूसरे प्रकार का शौचस्थान बोर लैट्रिन (Bore Latrine) (भूमि में सूराख करके शौचस्थान बनाना) है। किन्तु स्वास्थ्य विभाग का कहना है कि इससे पानी दूषित हो सकता है। तीसरे प्रकार का शौचस्थान साधारण गड्ढे के रूप में बनाया जाता है, किन्तु उसमें एक प्रकार की हरी हरी मक्खी उत्पन्न हो जाती है। इन गड्ढों के चारों तरफ अरहर की एक बाड़ खड़ी करके दो तख्ते उस पर रखने से एक अच्छा खासा शौचस्थान तैयार हो सकता है। यदि शौच-स्थान तैयार करने में कुछ कठिनाइयाँ हों तो इस बात का खूब प्रचार करना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति मैदान में शौच जाते समय अपने साथ खुर्पी अवश्य ले जावे और एक फुट का छोटा सा गड्ढा करके उसमें शौच करके मल को मिट्टी से दबा दे। इससे गाँव में हुकवर्म रोग नहीं होगा और गाँव गन्दगी से बच जावेगा।

नावदान तथा नालियों की समस्या

गाँव की यह समस्या भी महत्वपूर्ण है। घरों में रसोई घर, वर्तन मॉजने तथा नहाने-धोने में जो पानी काम में लाया जाता है, वह घरों मे अथवा गलियों मे गन्दगी फैलाता है। जहाँ देखिये वहीं घरों के बाहर गलियों में काली-काली कीचड़ दिखलाई देती है। इसका फल यह होता है कि उसमे मच्छर उत्पन्न होते हैं और गन्दगी बढती है। कुओं के पास भी पानी बहुत गिरता है, किन्तु उसके निकास का कोई प्रबन्ध नहीं होता। फल यह होता है कि कुएँ के पास दलदल तथा कीचड़ हो जाता है और वहाँ से पानी बह कर गलियों में जाता है।

होना तो यह चाहिये कि कुओ के पास ही औरतों के नहाने तथा कपड़े धोने के लिए एक पर्दे की जगह बना दी जावे। पुरुषों के लिए खुली जगह भी उपयुक्त हो सकती है। इससे लाभ यह होगा कि घरों मे बहुत कम पानी जावेगा और वहाँ गन्दगी कम होगी। अतएव वहाँ नाली बनाने की आवश्यकता ही न होगी। कुएँ की मन (जगत) को ऊँचा बनाया जाना चाहिये। अच्छा तो यह हो कि वह पटा हो, जिससे पत्ती और कूड़ा कुयें मे न जा सके। कुयें के चारों ओर ढलवाँ सीमेंट की नाली बनवा दी जावे जिससे कि जो पानी गिरे वह कुएँ के पास ही न भरे। कुएँ के पास ही पानी गिरने से कुएँ का पानी दूषित हो जाता है। कुएँ की नाली और स्नान तथा कपड़े धोने के स्थानों की नालियाँ एक बड़ी नाली में मिला दी जावें। यह नाली भी ककरीट की बनवाई जावे या कुएँ का पानी नाली द्वारा गाँव के बाहर ले जाया जावे या दूसरा उपाय यह हो सकता है कि कुएँ के पास ही एक बगीची लगाई जावे और उसके पेड़ों और पौधो की सिंचाई के लिए कुएँ के पानी का उपयोग कर लिया जावे। इन वाटिकाओं में फल और फूलों के पेड़ लगाये जावें। इनसे यह लाभ होगा कि गाँव का सौन्दर्य बढेगा और गन्दगी भी नहीं होगी। जिन घरों मे बहुत जल काम मे लाया जाता हो, वहाँ भी गृहवाटिका मे, अथवा तरकारी की क्यारी मे उस पानी का उपयोग किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों मे इस समस्या को हल करने के लिए सोकेज पिट (Soakage pit) बनाए गए हैं, किन्तु जब तक सोकेज पिट गहरे और

बहुत बड़े तथा अच्छी तरह बनवाये न जावें, उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा, लेकिन और कुछ प्रबन्ध न होने से वे ही अच्छे हैं। वाटिकाओं द्वारा इस समस्त को अधिक सफलतापूर्वक हल किया जा सकता है।

गाँव में हवा और रोशनी का प्रबन्ध

गाँव की स्त्रियाँ अपने घरों को गोबर तथा मिट्टी से लीप पोत कर साफ रखती हैं और इस दृष्टि से गाँव के मकानों में बहुत सफाई रहती है। जहाँ गाँव बहुत गन्दा होता है वहाँ घरों में यथेष्ट सफाई रहती है। यह स्त्रियों की मेहनत का फल है। घरों में जो भी वस्तु होगी वह साफ सुथरी होगी। पीतल तथा काँसे के बर्तन तो इतने साफ रहते हैं कि उनकी चमक बहुत सुन्दर प्रतीत होती है। किन्तु ग्रामीण अपने कमरों और कोठरियों में हवा तथा रोशनी का काफी प्रबन्ध नहीं करता। उनके मकान में खिड़की अथवा रोशनदान होते ही नहीं। ग्रामीण खिड़की या रोशनदान चोरों के भय से नहीं लगाते। परन्तु हवा और रोशनी जीवन और स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं, अतएव रोशनदान अवश्य लगाना चाहिये। यदि छत के समीप ऊँचे पर रोशनदान लगाया जावे और उसमें लोहे की छड़ें हों तो चोरों का भी इतना भय नहीं रहेगा। यदि मकान एक दूसरे से मिले हों तो छत में रोशनदान तथा हवादान लगाना चाहिये। भविष्य में एक मकान दूसरे से सटा कर मकान न बनाने के लिये गाँव वालों को कहना चाहिये।

बहुत से ग्रामीण घरों में स्त्रियाँ सोने के कोठे में ही एक किनारे भोजन बनाती हैं, जिसमें धुआँ घुटता रहता है और सोने का कमरा गन्दा हो जाता है। अतएव उन्हें यह बतलाया जाना चाहिए कि रसोईघर आँगन के एक किनारे पर सोने के कोठे से दूर होना चाहिए और रसोईघर में धुआँ निकलने का मार्ग होना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे। धुयें से रसोईघर काला नहीं होगा, और घर की स्त्रियों की आँखें खराब होने से बच जावेंगी।

बहुत से किसान मकान में रहने के स्थान पर ही पशुओं को बाँध देते हैं। इससे स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है और गन्दगी बढ़ती है। मकान के साथ एक छोटी सी पशुशाला होनी चाहिए जहाँ बैल बाँधे जावें। यदि पृथक् पशुशाला का प्रबन्ध न हो सके तो भी मकान में पशुओं को रहने के स्थान से दूर बाँधना चाहिए।

गॉव की सड़कें

गॉव की सड़कें कच्ची होती हैं। दोनों ओर के खेतों के मालिक धीरे-धीरे सड़क को खोद कर खेतों में मिलाने का प्रयत्न करते हैं, इससे सड़क पतली और टेढ़ी हो जाती है। यही नहीं, किसान अपने खेत की मेंड़ को बनाने के लिए सड़क में से मिट्टी खोद लेते हैं, जिससे सड़क मे गड्ढे बन जाते हैं। नहरें तथा कुएँ का पानी जब सड़क के पार ले जाया जाता है तो वह सड़क पर ही बहता रहता है। अधिकतर ये कच्ची सड़कें आस-पास के खेतों से नीची होती हैं। इस कारण बरसात में इनमें पानी भर जाता है। सच तो यह है कि बरसात के दिनों में बैलगाड़ी का इन सड़कों पर चल सकना असम्भव हो जाता है। सड़क खेतों से ऊँची होनी चाहिए जिससे वर्षा का पानी खेतों में चला जावे। गॉव की पचायत गॉव वालों को सड़क में से मिट्टी खोदने के लिए मनाही कर दे, और प्रतिवर्ष वर्षा के उपरान्त गॉव वाले मिल कर स्वय सड़क की मरम्मत कर लें तो गॉव वालों को अपनी पैदावार मण्डियों मे ले जाने, तथा आने-जाने में बहुत सुविधा हो जावे। सरकार और जिला बोर्ड यह नियम बना दें कि जो गॉव सड़क बनाने के लिये मजदूरी मुफ्त देगा, उसको कंकड़ अथवा अन्य सामान पक्की सड़क बनाने के लिये मुफ्त दिया जावेगा। इस प्रकार बहुत थोड़े व्यय से और गॉव वालों के परिश्रम से गॉवों में पक्की सड़कें बन सकती हैं। हॉ, वहॉ वालों को उन सड़कों की प्रतिवर्ष मरम्मत करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी होगी। किन्तु यह काम तभी हो सकेगा जब गॉव वालों में अपने गॉव की दशा सुधारने की उत्कट लालसा उत्पन्न हो जावेगी।

गॉव में कुशल दाइयों की समस्या

गॉव में जो दाइयॉ हैं वे न तो गर्भवती स्त्रियो की ठीक से देखभाल ही करना जानती हैं और न बच्चा जनाने का काम ही वे ठीक तरह से कर सकती हैं। गन्दी तो वे इतनी होती हैं कि उनके छूने से ही मॉ और बच्चे के रोग हो जाते हैं। सच तो यह कि गॉवों में बहुत बड़ी सख्या मे जो गर्भवती मातायें और बच्चे मरते है उसका कारण एक मात्र कुशल और साफ दाइयों का न होना है।

जब तक हर एक गाँव में या दो-चार गाँवों के बीच एक शिक्षित, कुशल और ट्रेन्ड दाई नहीं होगी, तब तक बच्चों और माताओं की मृत्यु रोकी नहीं जा सकती। ये दाइयाँ माताओं और बच्चों के जीवन से खिलवाड़ करती हैं। अतएव सरकार डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा अन्य सभी संस्थाओं का यह कर्त्तव्य है कि यह किसी प्रकार रोका जावे।

प्रादेशिक सरकारों को प्रत्येक जिले में दाइयों के ट्रेनिंग स्कूल स्थापित करने चाहिए और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को तथा अन्य संस्थाओं को गाँवों की दाइयों को वजीफा देकर वहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजना चाहिए।

जब काफी शिक्षित दाइयाँ तैयार हो जावें तब सरकार को एक कानून बना देना चाहिये कि बिना लाइसेंस लिये कोई भी दाई का काम नहीं कर सकती और लाइसेंस केवल उन्हीं को दिया जावे जो कि ट्रेंड हैं और इस कार्य में कुशल हैं।

जब तक ऐसा नहीं किया जावेगा तब तक बच्चों और माताओं के जीवन की रक्षा नहीं की जा सकती।

केवल बच्चा जनाने के लिए कुशल दाइयों का प्रबन्ध कर देने से ही काम नहीं चलेगा। गाँव की स्त्रियों को बच्चों के ठीक प्रकार से लालन पालन करने की शिक्षा भी देना आवश्यक है। माताओं की भूल से बच्चों का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इसलिए इन दाइयों का कर्त्तव्य भी होगा कि वे बच्चों के लालन-पालन की शिक्षा स्वयं प्राप्त करें और माताओं को दें। विश्व स्वास्थ्य-संघ तथा संयुक्त राष्ट्र-संघ के अन्तर्राष्ट्रीय शिशु कल्याण की एक बृहत् योजना प्रस्तावित है। इसी के आधीन सन् १९५५-५६ तक ग्रामीण क्षेत्रों में २०० अतिरिक्त जच्चा-बच्चा और शिशु कल्याण केन्द्र कार्य्य करने लगेंगे। इनमें से ६६ केन्द्र तो चालू वर्ष और अन्य अगले दो वर्षों में प्रतिवर्ष ६७ केन्द्र खोले जावेंगे।

प्रतिवर्ष गाँव में बच्चों के स्वास्थ्य के प्रदर्शन (Baby Show) किए जावें और स्वस्थ बच्चों की माँ को पारितोषिक दिया जावे। इसके साथ ही बच्चों का लालन पालन कैसे करना चाहिए, इसकी जानकारी कराई जावे। यह प्रदर्शन कई दिनों तक होना चाहिए।

गाँव मे सफाई और स्वास्थ्य की योजना

भारत मे रोके जा सकने वाले रोगो के कारण जो भयकर हानि हो रही है वह सहकारी स्वास्थ्य समितियाँ स्थापित करके रोकी जा सकती है। हर एक गाँव में स्वास्थ्य रक्षक समिति की स्थापना की जावे। जहाँ तक हो सके, हर एक गाँववाले का उसके लाभ समझा कर उसका सदस्य बना लिया जाय।

सब सदस्यो की एक एक साधारण सभा हो। प्रतिवर्ष सभा वार्षिक प्रोग्राम निश्चित करे और दो मन्त्री तथा पञ्च निर्वाचित कर दे। एक मन्त्री गाँव की सफाई की देख भाल करे और दूसरा मन्त्री गाँव मे चिकित्सा और दवा का प्रबन्ध करे।

गाँव के पास के सब गड्ढो को पाट दिया जाय, नालो तथा खेतो के बहाव को ठीक कर दिया जाय। वर्षा समाप्त हो जाने पर जहाँ पानी रुक जाय वहाँ मिट्टी का तेल छिड़कवाया जाय। इससे मलेरिया बुखार गाँव में नहीं फैल सकता क्योंकि मलेरिया ज्वर का कीड़ा रुके हुए पानी में ही उत्पन्न होता है।

पास के चार पाँच गाँवों की स्वास्थ्य रक्षक समितियाँ मिलकर एक बड़ी समिति बना लें। हर एक ग्राम समिति के प्रतिनिधि बड़ी समिति के सदस्य रहें। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा योग्य नर्स को नौकर रक्खे। इनको निजी प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिए। नर्स का काम यह होगा कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गाँवो में बच्चा जनाने का काम करे। बड़ी समिति का चिकित्सक बीच के गाँव मे रहे और प्रतिदिन दो गाँवो में जाकर वहाँ जो भी बीमार हो, उन्हे दवा दे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होगा, वरन् रोगो से बचने का उपाय बताना भी उसका कर्त्तव्य होगा। मास मे एक दिन प्रत्येक गाँव में चिकित्सक व्याख्यान देकर बतावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। इसी प्रकार समिति की नर्स गर्भवती स्त्रियो का निरीक्षण करे और उनको बच्चों के लालन पालन करने तथा गर्भवती स्त्रियों को किस प्रकार रहना चाहिए, इसकी शिक्षा दे।

प्रत्येक सदस्य समिति को मासिक चन्दा देगा। जो सदस्य चन्दा देने में

असमर्थ हो उससे समिति चन्दा न लेकर शारीरिक परिश्रम करवा ले। इस प्रकार सब ग्रामवासी यदि चाहें तो स्वास्थ्य रक्षक समिति के सदस्य बन सकते हैं। समिति अपने सदस्यों के लिए औषधियाँ भी रक्खे।

ये बड़ी समितियाँ मिलकर जिला स्वास्थ्य रक्षक समिति का सङ्गठन करें। जिला समिति का कार्य केवल ग्राम समितियों की देख भाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, जिले के किसी स्वास्थ्य-विभाग के कर्मचारियों से लिखा-पढ़ी करके जब कभी उस जिले के किसी भाग में बीमारी फैल जावे, उनको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा।

प्रादेशिक सरकार तथा जिला बोर्ड इन समितियों को आर्थिक सहायता देकर इस कार्य को आगे बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार यदि सगठन हो तो ग्रामीण अपने प्रयत्न के द्वारा ही गाँव में सफाई और स्वास्थ्य रक्षा की समस्या को हल कर सकते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव इतने गंदे क्यों होते हैं? कारण बतलाइये।

२—गाँव के समीप के ताल और पोखरों का गाँव वालों के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है? विस्तारपूर्वक लिखिये।

३—गाँव के तालों और पोखरों से गाँव वालों के स्वास्थ्य पर जो बहुत बुरा असर पड़ता है, उससे बचने का रास्ता क्या है?

४—किसान आजकल जो गाँव के किनारे ढेर लगाकर खाद बनाते हैं, उसको तुम कैसा समझते हो? उसके हानि-लाभ लिखो।

५—खाद को तैयार करने का अच्छा और स्वास्थ्य बढ़ाने वाला ढग कौन सा है?

६—गाँवों में रहने वाले खुले मैदानों खेतों और तालाबों के किनारे शौच जाते हैं, इससे क्या हानियाँ होती हैं?

७—गाँवों के लिए किस प्रकार के शौचस्थान उपयुक्त होंगे? इन शौच-स्थानों से गाँव के रहने वालों को क्या लाभ होगा? संक्षेप में लिखिए।

८—कुओं की मन (जगत) न होने से क्या हानि होती है? कुओं के पास वाटिका अथवा सोकेज पिट बनाने से क्या लाभ होगा?

६—घरों के फिजूल पानी के बहाने से जो गन्दगी उत्पन्न होती है, उसको दूर करने का क्या उपाय है ?

१०—घरों में रोशनदान और धुआँ निकलने का मार्ग क्यों जरूरी है ? उससे क्या लाभ होगा ?

११—गाँव में कच्ची सड़कों की जो दशा है, उसको लिखिए और बतलाइये कि इन सड़कों का सुधार कैसे हो सकता है।

१२—गाँव में चिकित्सा का कैसा प्रबन्ध है, संक्षेप में बतलाइये और चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध किस प्रकार हो सकता है, इस पर अपना मत दीजिए।

१३—किसी गाँव की सफाई सम्बन्धी दशा का वर्णन कीजिए और वहाँ की सफाई के लिए एक योजना बनाइए। (१६५१)

अठारहवाँ अध्याय

ग्रामीण शिक्षा

भारत में शिक्षा का अभाव है, फिर गाँवों का तो पूछना ही क्या ? जहाँ तो निरक्षरता का साम्राज्य है। बड़े-बड़े नगरों तथा कस्बों में शिक्षा की कुछ सुविधाएँ हैं, परन्तु गाँवों में बहुत कम पाठशालायें देखने को मिलेंगी। इसका फल यह हुआ कि गाँव के लड़के निरक्षर रह कर जीवन व्यतीत करते हैं। समस्त स्वतन्त्र भारत मे दो लाख के लगभग प्राइमरी पाठशालायें हैं। इन पाठशालाओं में बहुत अधिक संख्या शहरी पाठशालाओं की है। अतएव समस्त स्वतन्त्र भारत के ग्रामों में एक लाख से अधिक पाठशालायें नहीं हैं। अब प्रादेशिक सरकारें ग्राम-शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं और हजारों पाठशालायें स्थापित की जा रही हैं। पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत इस ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

गाँवों में पाठशालाओं की बहुत कमी तो है ही परन्तु जो भी पाठशालायें

गाँवों में हैं, वहाँ की शिक्षा बिल्कुल शहरात् है। जो शिक्षाक्रम शहरों में है, वही गाँवों में चलाया जा रहा है। शहर के शिक्षक ही गाँवों में भेजे जाते हैं। वे ही पाठ्य-पुस्तकें, वे ही विषय, वही पद्धति अर्थात् सब कुछ वही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों गाँव वालों की कोई विशेष आवश्यकताएँ ही नहीं हैं, और न गाँवों में कोई ऐसी बात है, जिसको अपनाया जावे। इस शहरात् शिक्षा का फल यह हुआ कि ग्रामीण सभ्यता क्रमशः घृणा की वस्तु बनती जाती है। शहर के शिक्षित व्यक्ति तो गाँव की सभ्यता, गाँव की वेश-भूषा और गाँव के रहन-सहन को घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं, गाँव के पढे-लिखे लड़के भी गाँव की प्रत्येक वस्तु से घृणा करने लगते हैं। यहाँ तक कि "गँवार" शब्द असभ्य, मूर्ख तथा अशिक्षित का पर्यायवाची बन गया है। इन सब का फल यह हुआ कि गाँव का शिक्षित लड़का और उसका अनुसरण करने के कारण गाँव के समस्त लड़के सभ्यता, वेशभूषा तथा रहन-सहन के विषय में शहरों को आदर्श मानते और उनकी नकल करते हैं। आज गाँव के लड़कों की आकांक्षा यह नहीं है कि गाँव में रहें और उसकी उन्नति करें वरन् उनकी आकांक्षा शहरी जीवन व्यतीत करने, अथवा कम से कम उसकी नकल करने की होती है। यह सब किस कारण हो रहा है? प्राइमरी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालय तक में ग्रामीण जीवन, गाँवों की आवश्यकताओं और ग्रामीण समस्याओं की पूर्ण उपेक्षा की गई है। जो देश ग्राम-प्रधान है, वहाँ ग्रामों की इस प्रकार उपेक्षा हो, क्या यह लज्जा की बात नहीं है?

अतएव केवल इसी बात की आवश्यकता नहीं कि गाँवों में अधिक स्कूल की स्थापना की जावे। वरन् इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्राम पाठशालाओं का पाठ्य-क्रम गाँवों की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया जावे। केवल ग्राम पाठशालाओं के पाठ्यक्रम को ही गाँव की परिस्थिति के अनुसार बनाने से काम नहीं चलेगा। मिडिल स्कूल, हाई स्कूल तथा विश्वविद्यालयों में भी ग्राम सम्बन्धी विषयों का समावेश होना चाहिये, जिससे कि शिक्षित व्यक्तियों में ग्रामों के प्रति घृणा की भावना न रहे और वे उनकी ओर आकर्षित हों। उच्च शिक्षा में ग्राम सम्बन्धी विषय रखने से एक लाभ यह भी होगा कि शिक्षित व्यक्ति ग्रामीण समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे और उसके कारण

उनकी सहानुभूति गाँव के प्रति बढ जावेगी। हर्ष है कि सरकार का ध्यान इस ओर गया है और ग्राम्य-विश्वविद्यालय स्थापित करने का विचार चल रहा है।

ग्राम्य-पाठशाला का पाठ्यक्रम

साधारण लिखाई-पढाई तथा अन्य विषयो के अतिरिक्त, ग्राम-पाठशालाओं में कृषि सम्बन्धी आवश्यक बातों, सहकारी समितियों के सम्बन्ध में साधारण जानकारी, शारीरिक तथा गाँव की सफाई तथा अन्य आवश्यक बातों की जानकारी भी कराई जानी चाहिये। पाठशाला का एक छोटा सा फार्म होना चाहिये जिस पर अच्छे ढग से खेती पाठशाला के लड़के स्वय करें, और उनसे नई बातों का अनुभव प्राप्त करें जिनको कृषि विभाग खेती के सुधार के लिए आवश्यक समझता है। पाठशाला की सफाई के लिए एक आदर्श होना चाहिये। प्रतिदिन विद्यार्थियों के शारीरिक स्वच्छता का निरीक्षण होना चाहिये। साफ कैसे रहना चाहिये, इस सम्बन्ध में उन्हे सब बातें जाननी चाहिये। पाठशाला मे वे सब बातें बतानी चाहिये जो गाँव की सफाई के लिए आवश्यक समझी जावें। ग्राम-पाठशालाओं में किसी कौशल की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिये।

प्रत्येक पाठशाला में एक बालचर ट्रूप होना चाहिये जिससे बालक अच्छी आदतें सीखे और उनमे सेवा की भावना जाग्रत हो। किन्तु बालचर ट्रूप केवल दिखाने के लिये न हो। पाठशाला के विद्यार्थियों को वे खेल, जिनको कि गाँव में प्रचार करना अभीष्ट है, नियम के साथ सिखाये जावें।

यदि महात्मा गाँधी की वर्धा योजना के अनुसार पाठशालाओं मे उद्योग-धन्धो के आधार पर शिक्षा देने की व्यवस्था की जावे तो ग्राम पाठशालाओं को भी उस योजना मे सम्मिलित करना चाहिए। यदि वर्धा योजना स्वीकृत न भी हो तो भी ग्राम पाठशाला में ग्रामीण उद्योग-धन्धों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। ग्राम-पाठशाला की पढाई का उद्देश्य गाँव के लड़के को केवल साक्षर बना देना ही नहीं होना चाहिए, वरन् उसका उद्देश्य उसको साक्षर बनाने के अतिरिक्त अच्छा ग्रामीण और सफल कृषक बनाना होना चाहिए। हर्ष का विषय है कि सरकार ने बेसिक शिक्षा प्रणाली को स्वीकार कर लिया है और हजारों की सख्या में बेसिक स्कूल स्थापित किए जा रहे हैं।

स्त्री-शिक्षा

किन्तु एक बात ध्यान में रखने की ओर है। बिना लड़कियों को शिक्षित बनाये, गाँवों में भी शिक्षा का विस्तार नहीं हो सकता और न गाँवों का सुधार ही हो सकता है। आजकल ग्राम-सुधार की बहुत चर्चा है; परन्तु ग्राम सुधार कार्य में लगे हुए लोग यह भूल जाते हैं कि जो परिवर्तन वे गाँव तथा गाँव वालों के घरों में लाना चाहते हैं, वे बिना गाँव की स्त्रियों की इच्छा के लाये ही नहीं जा सकते। जब तक गाँव की स्त्रियाँ उन परिवर्तनों को नहीं अपनातीं तब तक उनकी उपयोगिता को समझते हुए भी गाँव के पुरुष उनको स्वीकार ही नहीं कर सकते। इस कारण गाँव की लड़कियों की शिक्षा अत्यंत आवश्यक है।

गाँव में लड़कों की ही शिक्षा की ओर जब किसी ने ध्यान नहीं दिया तो लड़कियों की शिक्षा के विषय में पूछना ही क्या। उसकी तो नितान्त अव-हेलना की गई है। अब समय आ गया है कि लड़कियो की शिक्षा का महत्त्व समझा जावे और उस पर ध्यान दिया जावे।

लड़कियों की शिक्षा किस प्रकार की हो, इस पर जहाँ तक गाँवो का सबंध है, दो मत नहीं हो सकते। लड़कियो को साक्षर बनाने के अतिरिक्त उन्हें कुशल गृहणी बनाने के लिए जिन बातों की आवश्यकता है, वे सभी बातें उन्हें सिख-लाई जानी चाहिए। खाना बनाना, भिन्न भिन्न खाद्य पदार्थों के गुण तथा उनका मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव होगा इसका ज्ञान, सिलाई, घर के अन्य सब कार्य, हिसाब रखना, साधारण बीमारियों तथा छूत के रोगों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी, चूहों, मच्छरों तथा मक्खियों से क्या हानि पहुँचती है इसका ज्ञान; कुछ उपयोगी और सदैव काम में आने वाली औषधियों का उप-योग, बच्चों का लालन पालन तथा घरों को सुन्दर बनाना, ये कुछ ऐसे विषय हैं, जिन्हें बड़ी लड़कियो को सिखाने की आवश्यकता है।

परन्तु भारत में केवल लड़के और लड़कियो की शिक्षा के प्रबन्ध करने से गाँवों का शीघ्र ही सुधार न हो सकेगा। यदि हम चाहते हैं कि गाँवों में नवीन जीवन का प्रादुर्भाव शीघ्र ही हो तो हमें प्रौढों (Adults) को भी शिक्षित बनाने का प्रबन्ध करना होगा। आजकल यदि गाँव में कोई लड़का

कुछ पढता भी है तो प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त, वह सब भूल जाता है और पहले की ही भाँति निरक्षर बन जाता है। माता और पिता अशिक्षित होते हैं, इस कारण वे लड़के और लड़कियों के लिए ऐसा कुछ प्रबन्ध नहीं करते कि वे पढ़ा लिखा न भूल जावें। शिक्षित माता पिता के पुत्र और पुत्रियाँ पढ़ना लिखना भूल ही नहीं सकते। प्रौढ़ों की शिक्षा ग्राम सुधार कार्य को शीघ्र सफल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ़ की शिक्षा के लिये रात्रि पाठशालाओं की योजना करनी होगी। स्त्री और पुरुषों की शिक्षा का अलग-अलग प्रबन्ध करना होगा। यह कार्य गैर सरकारी कार्य-कर्त्ताओं को, जिनमें सेवा-भाव हो, सौंपना चाहिये। गाँव की पंचायत से उन्हें इस कार्य में सहायता मिल सकेगी। सहकारी शिक्षा समितियाँ (Co-operative Education Societies) स्थापित करके यह कार्य और भी अच्छी तरह से चलाया जा सकता है, जैसा कि पञ्जाब में हुआ है। स्त्री और पुरुषों के लिये अलग-अलग समितियाँ स्थापित होनी चाहिये। गाँव के सेवा भाव वाले और पढ़े लिखे स्त्री पुरुषों को इस कार्य में अपना थोड़ा सा समय देने पर राजी किया जावे, तब ही काम में सफलता मिल सकती है। शिक्षा के सम्बन्ध में जो भी रात्रि पाठशाला का काम हो वह समिति, चन्दे के रूप में इकट्ठा करे, चंदा पैदावार के रूप में भी जमा किया जा सकता है। यदि सरकार उस प्रकार की समितियों को सहायता दे, तो उनके द्वारा केवल प्रौढ़ों (Adults) की ही शिक्षा का प्रबन्ध नहीं वरन् गाँव के लड़के लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। किताबी शिक्षा के साथ-साथ, गाँव वालों में अखबार तथा अन्य पुस्तकों को पढने की आदत भी डालनी चाहिये। उसके लिए समिति पुस्तका-लय और वाचनालय खोल सकती है।

ग्राम्य पाठशाला में शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त गाँव का लड़का यदि मिडिल स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने चला जाता है, तब तो कोई बात ही नहीं, अन्यथा यह भय रहता है कि कहीं पढ़ना-लिखना भूल न जावे। इस भय को दूर करने, गाँव के लड़कों की साक्षरता को स्थायी बनाने और उनके ज्ञान की वृद्धि करने के लिये पुस्तकालयों की स्थापना उतनी ही आवश्यक है जितनी पाठशालाओं को स्थापित करने की। शिक्षा प्रचार के साथ-साथ ग्राम्य पुस्त-

कालयों की नितान्त आवश्यकता है। पुस्तकालय घूमने-फिरने वाले भी हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि गाँवों के लिए साप्ताहिक समाचार-पत्र निकाले जावें और ग्राम्य-पुस्तकालयों के लिए ग्रामोपयोगी सरल पुस्तकें लिखाई जावें। कुछ पुस्तकें तो स्थायी रूप से प्रत्येक गाँव में रहें और अन्य पुस्तकों के पच्चीस पच्चास पुस्तकों के सेट बनवा दिये जावें, जो एक गाँव से दूसरे गाँव में घूमते रहें। पच वर्षीय योजना के अन्तर्गत गाँवों में पुस्तकालय स्थापित करने की योजना है।

रेडियो के द्वारा भी गाँव में संसार तथा देश की हलचलों के विषय में जानकारी कराई जा सकती है और मनोरञ्जन के साथ-साथ उनका ज्ञान-वर्धन भी किया जा सकता है। यदि देखा जावे तो रेडियो का प्रचार कार्य गाँव में बहुत उपयोगी हो सकता है। जहाँ जलविद्युत् है, वहाँ रेडियो सेट अवश्य लगवाना चाहिये। रेडियो प्रोग्राम भी गाँव के लिए उपयोगी हो, ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये। सामुदायिक योजनाओं के अन्तर्गत गाँवों में रेडियो का प्रबन्ध किया जा रहा है।

ग्राम्य शिक्षक

जहाँ ग्राम-शिक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण है, वहाँ यह एक अत्यन्त कठिन समस्या भी है। गाँव में शिक्षा प्रचार के लिए देश का ऐसे ग्राम शिक्षकों की आवश्यकता होगी कि जो गाँवो से सहानुभूति रखते हो और गाँव में जाकर सेवा-कार्य करने को तैयार हा। लड़कियों की शिक्षा की समस्या तभी हल हो सकती है जब ग्राम-शिक्षको की पत्नियों को ग्राम-अध्यापिका बनने के लिए उत्साहित किया जावे और उनको आवश्यक शिक्षा दी जावे। इस कार्य के लिए बहुत धन और शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। परन्तु बिना इस कार्य को किये निस्तार भी नहीं है।

ग्राम्य-शिक्षक के सम्बन्ध में विचार करते समय हमे एक बात न भूलनी चाहिये। गाँवो की पाठशाला के शिक्षक में नीचे लिखे गुण हो :—

(१) गाँवों से जिन्हें प्रेम हो, जो गाँवो से घृणा न करते हो वरन् गाँवों की सेवा करने में जिन्हें आनन्द मिलता हो। शहरी वातावरण में पले हुए अध्यापक गाँव से घृणा करते हैं, परन्तु नौकरी न मिलने पर गाँवो की पाठ-

शालाओं में पढ़ाने लगते हैं। ऐसे अध्यापकों से गाँव का हित न होगा।

(२) ग्राम्य अध्यापक को फैशन से दूर और सादा होना आवश्यक है, नहीं तो वह ग्रामवासियों में भी फैशन का प्रचार करेगा और अपनी बुरी आदतों को फैलावेगा।

(३) ग्राम्य अध्यापक ऐसा होना चाहिये जो शारीरिक परिश्रम के महत्व को समझता हो, स्वयं परिश्रम करे और विद्यार्थियों में शारीरिक परिश्रम के प्रति आदर उत्पन्न करे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ग्राम्य शिक्षक एक सेवक हो। वह सदा परिश्रमी, और गाँव के जीवन को पसन्द करने वाला हो, नहीं तो उसके सम्पर्क में आकर गाँव के बालकों में ग्राम के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होगी और शारीरिक परिश्रम के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जावेगी।

शिक्षा-योजना की सफलता के लिये यह भी जरूरी है कि हर एक गाँव में सरकार कानून बनाकर प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दे। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य तो होनी ही चाहिये, वह निःशुल्क (बिना फीस) भी होनी चाहिए, तभी भारत से अशिक्षा का रोग मिट सकता है। यह देश के लिए अत्यन्त लज्जा की बात है कि यहाँ की केवल १२ प्रतिशत जनसंख्या लिख पढ़ सकती है। सच तो यह है कि जब तक देश से अशिक्षा का रोग दूर नहीं हो जाता, तब तक किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती।

हर्ष की बात है कि उत्तर प्रदेश में कांग्रेस सरकार, इस प्रकार का नियम बनाने जा रही है कि जो युवक विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करेंगे, वे गाँवों में शिक्षक का कार्य करें। इससे ग्राम शिक्षा की समस्या को हल करने में सुविधा होगी।

सारे देश में कोई भी सुधार कार्य पूरी तरह से सफल नहीं होता, इसका मुख्य कारण जनता का अशिक्षित होना ही है। अतएव गाँवों की उन्नति के लिए भी शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है।

सार्जेन्ट रिपोर्ट

युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा की उन्नति किस प्रकार की जावे, इस सम्बन्ध में जाँच करने के लिए भारत सरकार ने एक बोर्ड स्थापित किया था,

जिसके मन्त्री श्री सार्जेन्ट महोदय थे, जो भारत सरकार के शिक्षा विषयक मामलों के सलाहकार थे। बोर्ड ने युद्ध के उपरान्त भारत में शिक्षा किस प्रकार फैले, इस सम्बन्धी में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है। ग्रामों में शिक्षा (प्रारम्भिक) किस प्रकार हो, इस सम्बन्ध में नीचे लिखी सिफारिशें की गई हैं:—

(१) हमारी राय में भारत में अनिवार्य और निःशुल्क (बिना फीस) प्रारम्भिक शिक्षा ६ से १४ वर्षों तक के लड़के-लड़कियों के लिए सर्वत्र शीघ्र ही प्रचलित कर देना चाहिये। ऐसा करने के लिए लगभग १८ लाख अध्यापकों की जरूरत होगी और २०० करोड़ रुपया व्यय होगा। इसलिए यह योजना लगभग ४० वर्षों में पूरी होगी।

(२) शिक्षा किसी दस्तकारी के द्वारा दी जावे, जिसे बेसिक शिक्षा-पद्धति कहते हैं।

(३) इस योजना को सफल बनाने के लिए अध्यापकों की आज जो गिरी हुई दशा है, उसे दूर करना होगा। उन्हें उचित वेतन देना होगा और योग्य व्यक्तियों को अध्यापक बनने के लिए उत्साहित करना होगा।

यदि यह योजना काम में लाई गई, तो आशा है, गाँवों में आज जो अशिक्षा का अंधकार है, वह दूर हो सके और गाँव वाले शिक्षित हो सकें।

बेसिक शिक्षा प्रणाली

इस योजना के सम्बन्ध में हमें यह न भूल जाना चाहिये कि दस्तकारी द्वारा शिक्षा देने की पद्धति जिसे बेसिक शिक्षा प्रणाली कहते हैं, उसका निर्माण महात्मा गांधी के नेतृत्व में तालीम संघ ने किया था, और वह वर्धा योजना के नाम से प्रसिद्ध है। तालीमी संघ ने जो बेसिक (Basic) शिक्षा पद्धति निकाली है, उसका उद्देश्य तो यह है कि बालक किसी धन्धे के आधार पर और उसके द्वारा सभी आवश्यक विषयों की शिक्षा प्राप्त कर सके, जिससे उसका पूर्ण विकास हो सके। महात्मा गांधी का तो यह मत था कि भारत जैसे निर्धन देश में करोड़ों व्यक्तियों का शिक्षा व्यय इतना अधिक होगा कि राष्ट्रीय सरकार भी उतना व्यय करने में असमर्थ होगी। अस्तु, शिक्षा-पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसका खर्चा भी निकल सके। इसलिये उन्होंने धन्धे के द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया है। उनका कहना है कि विद्यार्थी जो वस्तुएँ पढ़ते समय तैयार

करेंगे, उनको बेचकर बहुत-कुछ शिक्षा का व्यय पूरा किया जा सकता है। हर्ष की बात है कि सरकार ने बेसिक शिक्षा प्रणाली को स्वीकार कर लिया है और हजारो की सख्या मे गाँवों मे पाठशालाएँ स्थापित की गई हैं। वर्धा योजना में केवल ७ वर्ष से १४ वर्ष तक के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है।

पढना लिखना सीखना जरूरी है ही, परन्तु हमको गाँवो मे उस प्रकार की शिक्षा का प्रचार करना है कि जो गाँव वालों की मनोवृत्ति को बदल सके। आज गाँवो मे जिस प्रकार की सामाजिक और धार्मिक कुरीतियाँ फैली हैं, वे दूर हो सकें। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि उनका सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण उदार बने, उनमे अपने पैरोंपर खडे होने की भावना पैदा हो, उनमें देश के प्रति प्रेम पैदा हो और श्रम के महत्व (Dignity of Labour) को समझ सकें।

अशिक्षा के कारण जो आज बहुत से कुसस्कार गाँव वालों मे पाये जाते हैं, उनमें आपस मे जो द्वेष और लड़ाई-झगड़ा देखने को मिलता है और आपस के सहयोग की भावना का आज जो नितान्त अभाव है, हम उसका अन्त करना चाहते हैं और गाँव वालों के जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाना चाहते हैं। हमारी शिक्षा का ध्येय होगा, गाँव वालों को एक अच्छा नागरिक (Citizen) बनाना और जीविकोपार्जन के लिए उन्हे पूर्ण तरह से योग्य और उपयुक्त बनाना। दूसरे शब्दों में उनकी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि वे अपने शिक्षाकाल में कोई न कोई ऐसा उपयोगी कार्य सीखें जिसके द्वारा वे अपने परिवार का पालन-पोषण कर सकें। इस प्रकार की शिक्षा वही हो सकती है, जो एक लक्ष्य को सामने रखकर दी जावे।

प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education)

केवल लड़के लड़कियों को शिक्षित बना देने से ही हमारे गाँव की समस्या हल नहीं होगी। हमे प्रौढों को भी शिक्षित करना होगा। जब तक घर में बडे पुरुष और स्त्रियाँ भी शिक्षित नहीं होंगे, ग्राम-सुधार का कार्य सफल नहीं हो सकता। जब तक हम गाँव के प्रौढ स्त्री-पुरुषों को शिक्षित नहीं बनाते, तब तक गाँवो से गन्दगी, रोगो तथा रूढ़ियो और सामाजिक कुरीतियों को दूर नहीं किया जा सकता, और गाँव मे खेती में सुधार और न उद्योग-धन्धों की उन्नति ही सम्भव है। प्रौढो को शिक्षित करके ही हम उनके दृष्टिकोण

को बदल सकते हैं, उनमें स्वाभिमान और आत्मविश्वास उत्पन्न कर सकते हैं और गाँव से कलह और द्वेष को दूर कर सकते हैं। सच तो यह है कि ग्राम-वासियों की कार्य क्षमता को बढ़ाने के लिए प्रौढ शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। जनतन्त्र को सफल बनाने के लिए प्रौढ़ों को शिक्षित करना आवश्यक है।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए हमें विशेष प्रबन्ध करना होगा। रात्रि पाठशालाओं का आयोजन करना होगा, मैजिक लेन्टर्न, फिल्में तथा रेडियो, तथा हेल-मेल दिवस मनाकर उन्हें शिक्षित बनाना होगा। प्रौढ़ों को केवल अक्षर ज्ञान कराने से ही काम नहीं चलेगा वरन् उनको साक्षर बनाने के अतिरिक्त आधुनिक समस्याओं की भरपूर जानकारी करानी होगी। उनको अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और भाग्यवाद के अंधकार से निकाल कर उन्नति के पथ पर आगे बढाना होगा।

आज भारत स्वतन्त्र हो गया है और हमने जनतन्त्र को स्वीकार किया है। प्रत्येक बालिग स्त्री पुरुषों को मत देने का अधिकार दिया गया है। ऐसी दशा मे यदि हमने प्रौढ शिक्षा के द्वारा प्रौढ़ ग्रामीणों को शिक्षित नहीं बनाया तो वे अपना मत (वोट) ऐसे व्यक्तियों को न देकर जो योग्य देश भक्त और ईमानदार हों, ऐसे चतुर व्यक्तियों को दे सकते हैं जो योग्य, सच्चे और ईमानदार न हों। ऐसी दशा में देश का बहुत अहित होगा। अतएव देश के हित को ध्यान में रखते हुए प्रौढ़ शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। प्रौढ़ शिक्षा की ओर भी सरकार का ध्यान गया है और प्रत्येक राज्य में प्रौढ शिक्षा का कार्य किया जा रहा है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव वाले जो यह कहते हैं कि "लड़कों को पढाने से वे खेती के काम के नहीं रहते," इसका कारण क्या है?

२—शहरों जैसी शिक्षा गाँव के लड़कों को देने का क्या परिणाम हुआ?

३—गाँव की पाठशालाओं का पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिये?

४—बालचर किसे कहते हैं? बालचर ट्रूप की व्यवस्था गाँव की पाठशाला में करने से क्या लाभ होगा?

५—गाँव की पाठशालाओं मे खेती और गाँव के उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में क्यों शिक्षा देना चाहिये?

६—गाँव की उन्नति के लिए लड़कियों को पढ़ाना क्यों जरूरी है?

आज भारत के ग्रामों की ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि गाँव वालों को मनोरञ्जन के साधन भी उपलब्ध नहीं हैं। गाँव वालों का जीवन अत्यन्त नीरस बना हुआ है। यही कारण है कि जो युवक थोड़ी सी भी शिक्षा पा जाता है, वह गाँव में रहना नहीं चाहता। गाँव में खेल तथा मनोरञ्जन के साधनों का इतना अधिक अभाव है कि यदि दो बैल या कुत्ते आपस में लड़ते हैं, तो उस लड़ाई को देखने के लिए ही भीड़ इकट्ठी हो जाती है। गाँव बहुत ही सुनसान और निर्जन स्थान होता है। यही कारण है कि किसान उदास मनोवृत्ति वाला होता है और उसकी बुद्धि का विकास नहीं होता, क्योंकि उसको कोई बात देखने सुनने तथा उस पर विचार करने के लिए नहीं मिलती।

ग्रामीणों की बुद्धि का विकास तथा उनकी निराश मनोवृत्ति का नाश तभी हो सकता है जब कि वे कभी कभी खेल खेलें, तमाशे, प्रदर्शनियाँ तथा मेले देखें और उन्हें संसार में क्या हो रहा है इसके समाचार प्रतिदिन मिलते रहें। यही नहीं सायंकाल को जब वे काम से थक कर घर पर आवें तो उनके लिए थोड़े से मनोरञ्जन की भी आवश्यकता है जिससे उनका मस्तिष्क और शरीर ताजा हो जावे। प्रौढ़ों के अतिरिक्त गाँव के लड़कों के लिए तो खेल की और भी अधिक आवश्यकता है जिससे उनमें अनुशासन (Discipline), साहस, फुर्ती तथा सामूहिक भावना का उदय हो।

गाँवों का खेल

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गाँव में खेल के लिए एक मैदान तैयार किया जावे और ऐसे खेलों का प्रचार किया जावे जो कम खर्चीले हों, जिनमें अधिक लोग भाग ले सकें और जिनके द्वारा खेलने वालों में सामूहिक सङ्गठन तथा अनुशासन का भाव उदय हो। इस दृष्टि से फुटबाल और कबड्डी उपयोगी है। अन्य भारतीय खेल जो भिन्न भिन्न प्रदेशों में प्रचलित हों, उनका भी गाँवों में प्रचार किया जावे। परन्तु उन देशी खेलों के नियम इत्यादि समस्त देश में एक समान हों।

भारतीय खेल

हमारे देश में भिन्न भिन्न प्रदेशों में बहुत तरह के खेल प्रचलित हैं, जैसे नमक चोर, रामटडा इत्यादि। इन सब खेलों को इकट्ठा करके उनके नियम

इत्यादि बनाकर पुस्तकें प्रकाशित कराई जावें और उन-उन खेलों का गाँवों में प्रचार किया जावे। साथ ही नये खेल प्रचलित किये जावें, जैसे वालीवाल, बासकेटवाल इत्यादि।

जरूरत इस बात की है कि 'ग्रामीण खेल बोर्ड' स्थापित किया जावे जिस प्रकार से अखिल भारतीय फुटवाल, क्रिकेट तथा हाकी और टेनिस के लिए बोर्ड स्थापित है। 'ग्रामीण खेल बोर्ड' भारतीय खेलों का प्रचार गाँवों में करने, और उनकी देखभाल इत्यादि का काम करे। खेल ऐसे हों जो अधिक खर्चीले न हों, जिन्हें अधिक व्यक्ति खेल सकें और जिनसे सगठन, सामूहिक भावना, शारीरिक विकास, स्फूर्ति, साहस तथा अनुशासन का उदय हो।

गाँव का स्काउट ट्रूप

गाँवों में बालचर आन्दोलन का प्रवेश आवश्यक होना चाहिये। इससे गाँवों को बहुत लाभ होगा, गाँव के युवकों मे सङ्गठन उत्पन्न होगा, मिल जुल कर कार्य करने की आदत पडेगी। गाँव में जो बहुत सी बुराइयाँ हैं उनके दूर करने मे इन शिक्षित बालचरो से बहुत सहायता मिल सकती है। गाँव मे भ्रातृ-भाव भी इस आन्दोलन के द्वारा उत्पन्न हो सकता है। गाँव की सफाई, सड़कों को ठीक रखना, फसल के कीड़ो को नष्ट करना तथा गाँव में मनोरञ्जन का साधन उपलब्ध करने मे बालचर बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकते है। गाँव को तो लाभ होगा ही, बालचरों को इसी आन्दोलन के द्वारा स्वय एक मनोरञ्जन का साधन प्राप्त हो जावेगा और उनका शारीरिक, मानसिक तथा चरित्र विषयक विकास होगा।

भजन तथा भजन-मण्डलियाँ

गाँव के लोग भजन बहुत पसन्द करते हैं। यदि प्रत्येक प्रदेश मे ऐसे भजनों का सग्रह किया जावे जो ग्रामीण जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं, अथवा जिनमे गाँवों की प्रचलित कुरीतियों का विवरण है और जो सरल भाषा में लिखे गए हों, तो बहुत अच्छा हो। आवश्यकता पड़ने पर ऐसे भजन योग्य व्यक्तियों से लिखवाये जावें और उनको प्रकाशित कराकर उनका गाँवों में प्रचार कराया जावे। गाँव की पाठशाला के विद्यार्थियो, बालचरो, स्त्रियों और प्रौढ़ो की भजन-मडलियाँ बनाई जावें जो उन्हीं भजनों को उत्सव, त्यौहार तथा

अन्य अधिवेशनों के समय पर गाया करें। भजनों के प्रचार से दो लाभ होंगे— एक तो प्रचलित कुरीतियों के विरुद्ध वातावरण बनेगा दूसरे मनोरंजन भी होगा। हमारे गांवों में अत्यन्त प्राचीन कला-पूर्ण नृत्य होते हैं उन्हें भी फिर से जीवित करना चाहिये। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि लोक संगीत और लोक नृत्य का हमें फिर से विचार करना चाहिए।

नाटक तथा प्रहसन

ग्राम सुधार का कार्य करने वाले गांव की पाठशाला के अध्यापक की सहायता से प्रत्येक गांव में यदि मनोरंजन तथा खेलकूद का प्रबन्ध करने वाली सभा बनावें, जिनमें गांव के प्रमुख लोग भाग लें तो इस दिशा में बहुत कुछ हो सकता है। योग्य लेखकों से प्रत्येक प्रादेशिक भाषा में गांव की दिन प्रति-दिन की समस्याओं से सम्बन्ध रखने वाले नाटक और प्रहसन लिखवाये जावें और गांव के युवकों की सहायता से होली, दिवाली, रामलीला, ईद, बड़ा दिन इत्यादि त्यौहारों तथा अन्य उत्सवों पर वर्ष भर में तीन चार बार चांदनी रात्रि में, स्कूल अथवा किसी चौपाल पर दिखलाये जावें तो गावों में सुरुचि-पूर्ण मनोरंजन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि लोक-नाटक को हमें जन्म देना चाहिए।

रेडियो

रेडियो, संसार को विज्ञान की अत्यन्त उपयोगी देन है। मनोरञ्जन और शिक्षा प्रचार के लिए रेडियो से अच्छा और कोई दूसरा साधन नहीं है। यदि प्रत्येक गांव में अथवा समीपवर्ती दो-तीन गावों में एक रेडियो सेट लगा दिया जावे और प्रत्येक देश में प्रदेशीय ब्राडकास्टिंग स्टेशन स्थापित कर दिये जावें तो ग्रामीणों के लिए प्रत्येक दिन प्रोग्राम रक्खा जा सकता है। सायंकाल गांव के लोग इकट्ठे होकर बीमारियों को दूर करने, पशुओं के पालन, गल्ले का भाव, खेती के नवीन तरीकों और गांव की समस्याओं पर विशेषज्ञों द्वारा बताई हुई बातों से अपना मन बहला सकते हैं और जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यदि रेडियो का ठीक ठीक उपयोग किया जावे तो अशिक्षित ग्रामीण को संसार में क्या हो रहा है, उनके देश में क्या हो रहा है, गांव की समस्याओं को कैसे हल किया जा सकेगा, इत्यादि विषयों का पूरा ज्ञान कराया जा सकता

है। प्रादेशिक सरकार रेडियो सेट दे और गाँव के लोग उसके रखने का व्यय सहन करें तो यह योजना सफल हो सकती है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड भी इसमें सहायता दे सकते हैं। केवल शिक्षा ही नहीं रेडियो गाँव वालों के लिए मनोरञ्जन का सुन्दर साधन बन सकता है। इससे लोक संगीत तथा नृत्य का विकास हो सकता है। हर्ष की बात है कि राज्य का ध्यान इस ओर गया है।

मैजिक लैन्टर्न तथा सिनेमा-शो

प्रत्येक सरकारी विभाग, जिसका सम्बन्ध गाँव से है अपने विभाग से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं के चित्र बनवाये और लैन्टर्न के द्वारा उनका समय समय पर प्रदर्शन कराया जावे। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य विभाग, कृषि विभाग, उद्योग विभाग, सहकारिता विभाग, शिक्षा विभाग तथा पशु-चिकित्सा विभाग अपने-अपने विषय के चित्र तैयार करावे और उनका प्रदर्शन हो। मेलों और उत्सवों के अवसर पर इनका प्रदर्शन विशेष रूप से किया जावे।

भारतीय ग्रामों में मनोरञ्जन तथा शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए ऐसी सिनेमा फिल्में तैयार की जानी चाहिए जो ग्राम जीवन को भली प्रकार चित्रित कर सकें। ऐसे लेखकों और कलाकारों को एकत्रित करना चाहिए जो उस प्रदेश की बोली में ग्राम्य उपयोगी चित्र बना सकें। इस कार्य को व्यवसायियों पर न छोड़कर सरकार को स्वय अपने हाथ में लेना चाहिए। सिनेमा चित्र ग्राम जीवन को चित्रित करें ऐसे होना चाहिए तथा ग्रामवासी अपने जीवन को किस प्रकार सुन्दर समृद्धिशाली और आकर्षक बना सकें इस ओर उनका निर्देशन होना चाहिए। गाँव वालों में प्रचलित अन्ध-विश्वास, रूढ़ियों और कुरीतियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में भी वह चित्र उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु चित्र बनवाने में बहुत सावधानी रखनी होगी। नहीं तो उनका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। अतएव सरकार को ही यह कार्य अपने हाथ में लेना चाहिए। पाँच गाँवों के बीच एक सिनेमा प्रोजेक्टर रख कर तथा घूमने-फिरने वाला सिनेमा रखकर, राज्य गाँवों में मनोरञ्जन तथा शिक्षा का एक उत्तम साधन उपलब्ध कर सकता है।

इस प्रकार जब गाँवों में सुरुचिपूर्ण मनोरञ्जन के साधन उपलब्ध किये जावेंगे तथा खेल का प्रबन्ध किया जावेगा तभी ग्रामीण जनता का जीवन

सरस बन सकेगा और ग्रामो मे आकर्षण उत्पन्न हो सकेगा।

ग्राम-सेवादल

खेलो के सिवाय लड़को और युवको को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए, उनमे सेवा की भावना उत्पन्न करने के लिए, ग्राम सेवा-दल की बड़ी आवश्यकता है। हर एक गॉव मे एक ग्राम सेवादल बनाया जावे। ग्राम सेवादल मे गॉव के बड़े लड़के तथा युवक भर्ती किये जावें। उन्हें सेवा का महत्व समझाया जावे जिससे गॉव का हर एक युवक ग्राम-सेवा को अपने लिए गौरव समझे। ग्राम सेवादल निम्नलिखित काम करे। होली, दिवाली, दशहरा इत्यादि त्योहार पर गॉव की सफाई करने मे सहायता देना, टिड्डी तथा अन्य फसलो के शत्रुओ (कीड़ो) को मारने मे गॉव वालों की सहायता करना, विशेष अवसरो पर नाटक, प्रहसन तथा अन्य खेल-तमाशो का आयोजन करके गॉव गॉव मे लोगो का मनोरञ्जन करना, गॉव के रास्तों को ठीक करना और गॉव मे फलो के वृक्ष लगाना। गॉव मे फलो के वृक्ष तो हर एक आदमी को लगाना चाहिए। इससे दो लाभ होगे। एक तो गॉव की सुन्दरता बढेगी दूसरे फल खाने को मिलेंगे। गॉव के रास्ते ठीक करने और पास के गड्ढों को भरने में भी ग्राम सेवादल गॉव वालों की सहायता कर सकता है।

घरों को अधिक आकर्षक बनाना

जिस प्रकार हमारे गॉवों में कोई आकर्षण नहीं है उसी तरह गॉव के रहने वालो के घरो मे भी कोई आकर्षण नहीं रह गया है। जब कभी थका हुआ किसान खेतों पर से आता है तो घर मे उसके लिए ऐसा कोई आकर्षण नहीं होता कि उसका मन बहले। खाली समय मे वह चिलम लेकर किसी चौपाल पर गप्प उड़ाता है। एक दूसरे की बुराई करना, दूसरो के घरो की आलोचना करना, यही ग्रामीणों का काम रह गया है। इसका फल यह होता है कि एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या-द्वेष और जलन के भाव उत्पन्न होते हैं। पटवारी, या लेखपाल, मुखिया तथा अन्य व्यक्ति जिनका मुकदमेबाजी तथा लड़ाई झगडे से लाभ होता है, इसका लाभ उठाते हैं। यह तभी बन्द हो सकता है जब घरो को आकर्षक बनाया जावे।

गृह वाटिका घरो को आकर्षक बनाने के लिए वाटिका आन्दोलन अत्यन्त आवश्यक है। फूलों की क्यारियो में उत्पन्न होने वाले फूल और तरकारी उसके

लिए एक आकर्षण की वस्तु होगी। फूलों से घरों को आकर्षक बनाया जा सकता है। लेकिन जहाँ उसके लिए हमें पुष्पवाटिका आन्दोलन चलाना होगा वहाँ गृहस्वामिनी को भी घरों को अधिक सुन्दर बनाने की शिक्षा देनी होगी। अभी तक ग्राम सुधार कार्य कर्त्ताओं ने गृहस्वामिनी की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। जब तक गाँवो का स्त्रियाँ ग्रामीण जीवन को मधुर और घरो को अधिक आकर्षक बनाने का काम अपने हाथ मे नहीं ले लेतीं, तब तक स्थिति ऐसी ही रहेगी।

यह तो स्वास्थ्य और सफाई के परिच्छेद में ही लिखा जा चुका है कि गृह-वाटिका से दो लाभ होंगे, एक तो उससे फूल और सब्जी मिलेगी, दूसरे, घर के काम मे लाया हुआ पानी जो नाली न होने के कारण सडता रहता है और गन्दगी उत्पन्न करता है, उसका उपयोग हो सकेगा। घर के काम मे आने वाले पानी की समस्या को तो पानी सोखने वाले गड्ढो के द्वारा भी हल किया जा सकता है। सड़ने वाले पानी की समस्या यदि इन गड्ढो (सोकेज पिट) से हल की जावे तो भी गृह-वाटिका तो हर एक घर मे होनी ही चाहिए। प्रकृति ने फूल जैसी सुन्दर चीज उत्पन्न की है, गाँवों मे वह आसानी से उत्पन्न हो सकती है, लेकिन हम उसके आनन्द से वञ्चित है।

इस सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों के कुओं के पास इतना अधिक पानी गिरता है कि दलदल बन जाता है। इस गन्दगी को दूर करने का सहज उपाय यह है कि वहाँ एक छोटी सी वाटिका लगा दी जावे, उससे गन्दगी तो दूर होगी ही गाँव भी आकर्षक बन जावेगा।

पर्व, त्योहार और मेले

पर्व और त्योहार भी मनुष्य जीवन को सरस और सुखी बनाते हैं तथा समाज को जीवन प्रदान करते हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने पर्व और त्योहारो को अधिक सजीव बनावें। होली, दिवाली, दशहरा, रक्षाबन्धन, भारत के स्वतन्त्र होने का दिन तथा यदि गाँवो में मुसलमान और ईसाई हो तो ईद और बड़ा दिन सङ्गठित रूप से धूम धाम से मनाना चाहिये। होली दिवाली पर गाँव भर की सफाई का प्रोग्राम रक्खा जा सकता है तथा सुरुचिपूर्ण नाटक, प्रहसन, खेलकूद का आयोजन किया जा सकता है। रक्षा-बन्धन को गाँव वालों को एक स्नेह सूत्र मे बाँधने का साधन बनाया जा सकता

है। दशहरे पर खेल कूद व्यायाम, दङ्गल का आयोजन किया जाना चाहिए। ग्राम पचायत अथवा ग्राम सभा मे सामूहिक रूप से पर्व और त्योहार मनाने का प्रबन्ध करें तो गॉव के त्योहार और पर्व अधिक सजीव और गॉव के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं। भारत की स्वतन्त्रता के दिन को हमें राष्ट्रीय पर्व के अनुरूप मनाना चाहिये। उससे गॉव वालों में देशभक्ति की भावना उत्पन्न होगी और देश के प्रति उनका क्या कर्तव्य है, उसकी जानकारी होगी। गॉवों के मेलों की भी हमें उन्नति करनी चाहिये। उनका उपयोग मनोरजन के साथ साथ गॉव के लिए शिक्षा देने मे भी किया जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—हमे मनोरजन और खेल कूद की आवश्यकता क्यों होती है?

२—मनोरजन और खेल कूद से मनुष्य के ऊपर कैसा प्रभाव पड़ता है?

३—गॉवों के लिए कैसे खेल-कूद उपयुक्त होंगे?

४—रेडियो के द्वारा गॉवो मे मनोरजन और शिक्षा के कार्य मे कहाँ तक सहायता मिल सकती है?

५—मनोरजन के साधनों का उपयोग ग्राम-सुधार सम्बन्धी प्रचार कार्य में किस प्रकार किया जा सकता है?

बीसवॉ अध्याय

स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तो का प्रचार

सर्वसाधारण का यह विचार है कि गॉव स्वास्थ्यप्रद स्थान होते हैं और वहाँ रोग इत्यादि का प्रकोप कम होता है। किन्तु यह धारणा भ्रान्तिमूलक है। भारतीय ग्रामों में रोगों ने स्थायी रूप से अड्डा जमा रक्खा है। प्रतिवर्ष लाखों की सख्या में ग्रामीण इन रोगों के शिकार होते हैं। वर्तमान काल मे भारत-वासियों की औसत आयु लगभग तेईस वर्ष है जब कि अन्य देशों मे चालीस वर्ष या इससे अधिक है। इसी प्रकार यहाँ भी हजार आदमियो मे से कोई तीस आदमी प्रतिवर्ष मर जाते हैं, जब कि ससार के कितने ही देशो में हजार पीछे

केवल दस या ग्यारह ही मरते हैं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ स्वास्थ्य सुधार की ओर यथेष्ट ध्यान देने की कितनी आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में आल इंडिया मेडिकल रिसर्च वर्क्स कान्फ्रेंस ने जो प्रस्ताव पास किया है वह ध्यान देने योग्य है। उस प्रस्ताव का आशय निम्नलिखित है—"इस सम्मेलन का विश्वास है कि रोके जा सकने वाले रोगों से भारत में प्रति वर्ष पचास या साठ लाख मृत्युयें होती हैं और भारत का प्रत्येक व्यक्ति ऐसे रोगों से जिनको रोका जा सकता है, वर्ष में दो सप्ताह से लेकर तीन सप्ताह तक काम करने से बेकार हो जाता है। यही नहीं, सम्मेलन का यह भी विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति की कार्य-क्षमता इन रोगों से बीस फी सदी घट जाती है। सम्मेलन का अनुमान है कि यदि रोगों के द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह अरबों रुपये प्रति वर्ष होगी।"

स्वास्थ्य रक्षा के लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता है :—(१) सफाई, हवा और रोशनी, (२) शुद्ध और पौष्टिक भोजन, (३) परिश्रम अथवा व्यायाम (४) विश्राम, (५) रोगों से बचने के उपायों की जानकारी, (६) चिकित्सा का उचित प्रबन्ध। अब हमें यह देखना है कि भारतीय ग्रामों में ऊपर लिखे स्वास्थ्य-रक्षा के साधन कहाँ तक उपलब्ध हैं।

सफाई, हवा और रोशनी

सफाई, स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक है। यही नहीं, सफाई मनुष्य को आत्मसम्मान, संयम, अनुशासन और मिल-जुल कर रहना सिखाती है। सफाई से शारीरिक उन्नति तो होती ही है, मानसिक विकास भी होता है। अतएव ग्राम सुधार में सफाई का सर्वोच्च स्थान है। केवल शारीरिक सफाई ही यथेष्ट नहीं समझी जानी चाहिये। कपड़ों, घर, पीने का पानी, गली, गाँव और खेतों, सभी की सफाई आवश्यक है। गाँवों में सफाई और रोशनी का अभाव है। यह हम "गाँवों की सफाई" नामक परिच्छेद में लिख चुके हैं। परन्तु गाँव वालों को अपने शरीर की सफाई के सम्बन्ध में अधिक सतर्क रहने के लिए, उन्हें इसकी शिक्षा देनी होगी। नियमित रूप से शुद्ध कुएँ अथवा नदी के जल में प्रतिदिन स्नान करने, कभी कभी अपने पहिनने के कपड़ों का साफ करने, दाँतों को प्रतिदिन साफ करने, आँखों को शुद्ध जल से धोने का महत्व उन्हें समझाना

होगा और ऊपर लिखी स्वास्थ्य प्रदान करने वाली आदतें डलवानी होंगी। अभी साधारण किसान इस ओर बहुत ही उदासीन है और इनका महत्व ही नहीं समझता।

इस शारीरिक सफाई की ओर ध्यान न देने के कारण गांवों में बच्चे, स्त्रियाँ और पुरुष अनेक रोगों से पीड़ित रहते हैं। फोड़े फुन्सी आँख और दाँत के रोगों का तो सीधा कारण सफाई न करना है। इनमें आँखों का रोग तो गाँव में सर्व-प्रचलित है। गाँव के बच्चों की आँखें देखिये, वे अधिकतर मैली मिलेंगी। आँखों के इन रोगों के कारण बच्चों की आँखें खराब हो जाती हैं। भारत में प्रति हजार अंधा और खराब आँखों वाले स्त्री पुरुष की संख्या बहुत अधिक है अधिकांश में बचपन में ही आँखें खराब हो जाती हैं और आँखें खराब होने का ६० फी सदी कारण गाँव में गन्दगी या असावधानी होती है।

गन्दगी और सड़ी हुई वस्तुओं के विषैले कण हवा से उड़ कर गाँव वालों की आँखों में पड़ते हैं। बच्चे गन्दगी के ढेरों के पास खेलते हैं। गन्दे गाँवों में मक्खियाँ बहुत होती हैं बच्चों की आँखों पर बैठकर उन्हें गन्दा कर देती हैं। विशेष कर बीमार आँख या गन्दी आँख पर मक्खियाँ और भी अधिक बैठती हैं। जब किसी बच्चे, स्त्री अथवा पुरुष की आँख रोगी होती है तो वे गन्दे हाथों से उसे छूते या मलते हैं। इसका फल यह होता है कि आँख स्थायी रूप से खराब हो जाती है। आँख की बीमारी घर में तथा क्रमशः गाँव में फैलती है। यदि ध्यान से देखा जावे तो प्रत्येक गाँव में ऐसे लोग यथेष्ट संख्या में मिलेंगे जिनकी आँखें स्थायी रूप से खराब हो गई हैं।

इसका केवल एक ही उपाय है, सफाई। गाँव की सफाई, चेहरे और आँखों की सफाई, कपड़ों की सफाई और शरीर की सफाई ही इस रोग को दूर कर सकती है। जितनी बार भी हो सके, दिन में उतनी बार आँख साफ की जानी चाहिये, तभी वे रोग मुक्त हो सकती हैं।

शुद्ध और पौष्टिक भोजन

स्वास्थ्य रक्षा के लिए शुद्ध और पौष्टिक भोजन भी अत्यन्त आवश्यक है किन्तु अधिकांश गाँव वालों को पौष्टिक भोजन तो दूर रहा, भर पेट भोजन भी नहीं मिलता। जब तक किसान को पूरे पेट भोजन नहीं मिलता, तब तक उसके

स्वास्थ्य की उन्नति की आशा करना स्वप्न के तुल्य है। किसान के पास भर पेट अन्न तभी बच सकेगा जब उसके ऋण के बोझ को हल्का किया जावे और किसान वैज्ञानिक ढङ्ग से खेती करके भूमि से अधिक पैदावार उत्पन्न करे। पौष्टिक भोजन की प्राप्ति के लिये किसानों को अपने घरों और खेतों पर अधिक फल और सब्जी उत्पन्न करना, गाय, भैंस और बकरी पालना चाहिये। शहद की मक्खियों को पालतू बना कर उनसे नियमित रूप से शहद तैयार करवाना और जिन्हें धार्मिक अड़चन न हो, उनको मुर्गी पालना चाहिये। जहाँ तालाब हो वहाँ मछली पालना चाहिए। किन्तु केवल इतना करने से ही पौष्टिक भोजन की समस्या हल नहीं हो जावेगी। किसानो को स्त्रियों को पाक शास्त्र का ज्ञान होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब गाँव की लड़कियों को शिक्षा दी जावे। किसान की स्त्री अपने घर, रसोई और बरतनों को बहुत साफ रखती है, यदि वे यह और जान जावे कि मक्खियाँ, चूहे, तथा अन्य कीडे-मकोडे मनुष्य को क्या हानि पहुँचाते हैं और जल किस प्रकार दूषित होता है और उसके पीने से कैसे-कैसे भयकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं तो गाँव बहुत से रोगो से बच जावें।

परिश्रम अथवा व्यायाम

गाँव वालो को व्यायाम कराने की विशेष आवश्यकता नहीं है, खेतो में ही उन्हें यथेष्ट परिश्रम करना पड़ता है। हाँ, अवकाश के समय खेलने से स्वास्थ्य भी बनता है और मनोरजन भी होता है।

विश्राम

स्वास्थ्य के लिए विश्राम और मनोरजन की भी आवश्यकता है। यदि किसान अपनी दिनचर्या को ठीक बना ले तो उसे विश्राम भी मिल सकता है।

रोग और उनसे बचने के उपाय की जानकारी

ज्वर, प्लेग, हैजा, चेचक, मोतीझरा, मलेरिया, कालाजार तथा हुकवर्म गाँवों के भयकर रोग हैं। इनके कारण प्रतिवर्ष लाखो की सख्या में मृत्यु होती है। इन रोगो का मुख्य कारण गाँव का गन्दा होना और गाँव वालों की लापरवाही है।

गाँव की सब प्रकार से, जैसा सफाई के अध्याय में लिखा है, सफाई रखनी चाहिए। इतना करने पर इन रोगों का डर कम हो जावेगा। प्रति छः साल बाद चेचक का टीका लगवाने से (यदि चेचक का प्रकोप हो तो उस समय भी टीका

लगवाने से) और रोशनी तथा सफाई का प्रबन्ध रखने से चेचक का भय जाता रहेगा। प्लेग वस्तुतः चूहों का रोग है, अतएव उससे बचने का मुख्य उपाय चूहों को दूर करना है। चूहे रोशनी से घृणा करते हैं, अतएव घरो में रोशनी का पूरा प्रबन्ध करना चाहिए। साथ ही उनके बिलो को बन्द करके, बिल्ली, चूहेदानी तथा जहर का उपयोग करके उनको नष्ट किया जा सकता है। सन्दूक तथा अनाज भरने की चीजों को तनिक ऊँचे पर रखना चाहिए जिसमे चूहे उनके नीचे अपने रहने का स्थान न बना लें। जब प्लेग का प्रकोप हो तो हर एक को प्लेग का टीका लगवाना और गॉव को छोड़ देना आवश्यक है। हैजा पानी के खराब हो जाने से तथा खराब पानी पीने से होता है। अतएव पीने के पानी को शुद्ध रखना, कुओ की समय-समय पर सफाई करवाना, और उनमें लाल दवा डालना, भोजन को शुद्ध रखना तथा सफाई रखना ही, उसको रोकने के मुख्य उपाय हैं।

हुकवर्म रोग गॉव वालो के मैदान में शौच जाने से उत्पन्न होता है, अतएव शौचस्थान का प्रबन्ध उसका मुख्य उपाय है। यदि शौचस्थान का प्रबन्ध न हो सके तो गॉव वालो में पुरानी पद्धति अर्थात् मल को एक फुट गड्हे में दबा देने का प्रचार करना चाहिए। गिनीवर्म नामक रोग दूषित जल पीने से होता है, अतएव शुद्ध जल पीने से इसका भय दूर हो सकता है।

गॉव में मलेरिया का बहुत प्रकोप होता है और प्रतिवर्ष, वर्षा के उपरान्त गॉव वाले ज्वर से एक सप्ताह से लेकर दो सप्ताह तक पीडित हो जाते हैं। खेती काटने के लिए आदमी नहीं मिलते। उत्तर-प्रदेश मे भी मलेरिया के कारण खेती को बहुत हानि पहुँचती है। मलेरिया की समस्या तनिक कठिन है। मलेरिया एक प्रकार के मच्छरो द्वारा उत्पन्न होती है, अतएव गॉव के आध-मील चारों ओर जितने गड्हे, खड्डे तथा नाले इत्यादि हों उन्हें गॉव की पञ्चायत पटवा दे। जो पाटे नहीं जा सकते उनमे वर्षा के उपरान्त समय-समय पर मिट्टी का तेल छुड़वा दिया जावे। यदि कोई तालाब तथा पोखरा ऐसा हो कि जिसका पानी पशुओ के पीने के काम मे आता हो और उसमे मिट्टी का तेल छुड़वाना उचित न समझा जावे, तो उसके चारों ओर सफाई रक्खी जावे। तालाब के किनारे-किनारे घास, पौधे, कूड़ा-कर्कट जो भी हो उसको साफ कर

दिया जावे। भविष्य में गाँव वालों को तालाब के समीप शौच जाने तथा उसमें कूड़ा डालने की मनाही कर दी जावे। इतना करने पर मच्छरों का उत्पन्न होना बन्द हो जावेगा और मलेरिया का प्रकोप बहुत कम हो जावेगा। कुनीन और ऐसी आयुर्वेदिक दवाइयों का जो मलेरिया को रोक सकें, गाँव में खूब प्रचार करना चाहिए। दवाइयाँ सरकार लागत मूल्य पर किसानों को बेचे और जो बहुत निर्धन हैं उन्हें मुफ्त दे।

इन बीमारियों के अतिरिक्त गाँवों में गन्दी अशिक्षित दाइयों और बच्चा उत्पन्न होने के समय व्यवहार में लाई जाने वाली गन्दी और हानिकर रस्मों के कारण असंख्य बच्चों तथा माताओं का जीवन नष्ट हो जाता है। अधिकतर कोई नीच जाति की गन्दी, बृद्धा स्त्री, जिसको ठीक ठीक दिखलाई भी नहीं पड़ता और जिसके वस्त्रों तथा नाखून मे गन्दगी का विष भरा हुआ है, वह बच्चा उत्पन्न कराने का काम करती है। फिर माता को सब से गन्दी, अँधेरी कोठरी जिसमे हवा की गुंजाइश ही नहीं हो सकती, बच्चाखाने के लिए दी जाती है। यही नहीं, घर के सबसे अधिक गन्दे कपड़े और खाट उसको मिलती है। ऐसी दशा मे यदि प्रसवकाल में बहुत सी मातायें अथवा नवजात बच्चे मर जाते है अथवा उसके शरीर मे कोई स्थायी खराबी आ जाती है, तो आश्चर्य की बात ही क्या है?

इस समस्या को हल करने का यही एक उपाय है कि गाँव की ऐसी दाइयों को जो ठीक समझी जावे, दाई का काम सिखाया जावे और केवल ट्रेंड दाइयों को ही प्रसव करने के लिए लाइसेन्स दिये जावे। दाइयो के अतिरिक्त यदि गाँव की अन्य स्त्रियाँ ट्रेनिङ्ग लेना चाहे तो उन्हे भी शिक्षा दी जावे। इनके साथ-साथ प्रचलित गन्दी रस्मों के विरुद्ध प्रचार किया जावे और गाँव वालों को समझाया जावे कि उनकी कितनी हानि होती है। ट्रेंड दाइयों को पंचायत, जिला बोर्ड की सहायता से नौकर रख सकती है। ये ट्रेंड दाइयाँ ग्रामीण माताओं को बच्चों के लालन-पालन के सम्बन्ध मे भी उचित परामर्श देंगी।

क्षयरोग या तपेदिक (Tuberculosis)

दुर्भाग्य से पिछले कुछ वर्षों से भारत में क्षयरोग तेजी से फैल रहा है और अब यह रोग गाँव मे भी पहुँच गया है। यह अत्यन्त भयंकर छूत का रोग है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि भारत में केवल इस रोग से ही प्रति वर्ष १५ लाख मनुष्य मर जाते हैं।

सूखी खाँसी आना, संध्याकाल ज्वर सा हो जाना, काम करने में जल्दी थक जाना, नींद न आना, किसी भी काम में जी न लगना, पेट भारी रहना, इसके प्रारम्भिक लक्षण हैं। धीरे-धीरे जब रोग बढने लगता है, तब खाँसी बढ़ती है, शक्ति घटने के साथ शरीर का वजन भी घटने लगता है। सायंकाल ज्वर आ जाता है। कफ के साथ खून भी गिरने लगता है। अन्त में आदमी बिलकुल निकम्मा होकर मर जाता है।

यह बीमारी परम्परागत होती है। यदि बाप को हुई है तो लड़के को भी हो सकती है। इसके कीडे बहुत छोटे होते हैं। एक इंच में २५०० कीडे स्थान पा सकते है। यह बीमारी एक के बाद दूसरे को लगती भी बहुत जल्दी है, यहाँ तक कि इस मर्ज के रोगी के थूक से भी हजारों कीडे फैल जाते हैं। कुटुम्बियों के साथ यह बीमारी प्रेम रखती है। जिस घर में यह एक बार पहुँच जाती है, फिर उस घर से उसका निकलना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है। यदि यह बीमारी किसी स्त्री को हो गई तो उसके पति और बच्चों का इससे बचना बहुत कठिन होता है।

यह बीमारी उन लोगों को अधिकतर हो जाती है जो गन्दे घरों में रहते हैं, जहाँ धूप और हवा नहीं पहुँचती। अपनी शक्ति से अधिक कार्य करने, अत्यन्त चिन्ताग्रस्त रहने से भी यह शरीर में बैठ जाती है और चुपचाप अपना काम करती रहती है। दुर्व्यसन अर्थात् नशा इत्यादि करने, घर की कलह, कर्जदारी के कारण चिन्तित रहने से भी यह बीमारी हो जाती है।

भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह रोग बहुत पाया जाता है। स्त्रियों को हवा और रोशनी पूरी तरह से नहीं मिलती। उनको पौष्टिक भोजन भी कम खाने को मिलता है। पर्दे की प्रथा तथा छोटी उमर में विवाह भी इस रोग के मुख्य कारण हैं।

इस रोग से बचने के नीचे लिखे उपाय हैं—

(१) भूख से अधिक कभी न खाओ।

(२) भोजन नियत समय पर करो। यदि भूख न लगी हो तो भोजन न

करो । जितना पचा सको उतना ही खाओ ।

(३) अपनी पाचन शक्ति को ठीक रक्खो ।

(४) चबा चबा कर खाओ ।

(५) बीच-बीच में उपवास करके पाचन शक्ति को तेज करो ।

(६) कुछ पौष्टिक पदार्थ अवश्य लो, जैसे मक्खन, घी, फल इत्यादि ।

(७) थूक में क्षय के कीटाणु होते हैं इसलिये घर मे फर्श पर, दीवार पर कभी न थूको। कागज, रूमाल या कपडे पर थूककर उसे जला डालना अच्छा है ।

(८) यदि पीकदान में थूको तो उसे गरम जल से साफ रक्खो ।

(९) क्षय रोगी को अलग रक्खो, उसके कपडे बर्तन इत्यादि को खौलते पानी में गरम करो और उसे किसी भी काम मे न लाओ ।

(१०) क्षयरोगी को खुली हवा मे रखना चाहिये ।

(११) क्षयरोगी को खूब आराम करना चाहिये ।

(१२) प्रतिदिन नहाना चाहिए ।

(१३) क्षयरोगी को खूब हवादार और खुले मकान मे जहाँ धूप आ सके रहना चाहिये ।

(१४) क्षयरोगी के साथ किसी को रहना या खाना न चाहिए ।

सरकार ने ऐन्टी ट्यूबरक्लोसिस लीग (Anti Tuberculosis League) की स्थापना की है, जो इन बातों का प्रचार करती है । किन्तु होना यह चाहिए कि इस रोग को रोकने का पूरा प्रयत्न किया जावे और उसकी चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिए । इस रोग से देश को भयंकर हानि पहुँच रही है । अब भारत सरकार इस रोग को रोकने के लिए बी० सी० जी० के टीके लगवा रही है । बी० सी० जी० के टीके से क्षयरोग से मनुष्य की रक्षा की जा सकती है ।

चिकित्सा का प्रबन्ध

खेद है कि भारतीय ग्रामों में चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है । ग्रामीण तो राम भरोसे पडे रहते हैं । जिला बोर्ड, जिला केन्द्र, तहसीलों और बडे-बडे कस्बों में अस्पताल चलता है । किन्तु गाँवों मे चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं होता है । गाँव वाले तहसील तथा जिलों के शफाखानों से बहुत कम लाभ उठा

पाते हैं। क्योंकि एक तो वे दूर होते हैं, दूसरे वहाँ उनकी कोई सुनवाई नहीं होती। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि गाँव में चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध किया जावे। किन्तु प्रत्येक गाँव मे चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध करना अत्यन्त कठिन है। अतएव जिला बोर्ड पाँच पाँच या उससे अधिक गाँव के समूह के बीच एक चिकित्सक रक्खे। प्रादेशिक सरकार इसके लिए जिला बोर्ड को सहायता दे। यदि वैद्य और हकीमों को गाँव मे नियुक्त किया जावे तो अधिक अच्छा हो, क्योंकि एक तो वे कम वेतन पर गाँव मे रहना स्वीकार करेंगे, दूसरे देशी दवाइयो का मूल्य बहुत कम होता है। इस कारण ग्रामवासी उन दवाइयों को खरीद सकेंगे। इन ग्रामीण चिकित्सकों को प्राइवेट प्रैक्टिस करने की आज्ञा न होनी चाहिये। प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य-रक्षक समिति बनाई जावे। प्रत्येक गाँव वाले को उसका सदस्य बनाया जावे। सदस्य से कुछ फीस ली जावे (दो आना प्रति मास)। चिकित्सक बीच के गाँव मे रहे और एक दिन में प्रातःकाल ७ से १० तक एक गाँव में, सायंकाल को दूसरे गाँव मे निश्चित स्थान पर गाँव के मरीजों को देखें। इस प्रकार चिकित्सक एक सप्ताह में दो बार प्रत्येक गाँव मे चिकित्सा के लिए जावेगा और महीने में एक बार वह स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों का प्रत्येक गाँव में प्रचार करेगा। दवाइयो का मूल्य प्रत्येक गाँव की स्वास्थ्य-समिति घर पीछे लगाई हुई फीस से देगी। दवाइयो का मूल्य गाँव वाले ही दें और चिकित्सक का वेतन सरकार तथा जिला बोर्ड दे तो प्रत्येक गाँव में चिकित्सा का प्रबन्ध अवश्य होगा।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने गाँव मे लगभग दो हजार चिकित्सालय खोलने का प्रबन्ध किया था। यह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है। अन्य प्रादेशिक सरकारों का ध्यान भी अब गाँव की ओर आकर्षित हुआ है। आशा है कि भविष्य में ग्रामों में चिकित्सा का कुछ प्रबन्ध अवश्य होगा। हर्ष की बात है कि सामुदायिक योजनाओं के अन्तर्गत गाँवो मे चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की गई है और बड़ी संख्या में चिकित्सालय खोले जा रहे हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में साधारण मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है और मृत्यु-संख्या भी यहाँ अन्य देशों से अधिक है, इसका क्या कारण है?

२—स्वास्थ्य रक्षा के लिए जिन चीजोंकी आवश्यकता है, उनका उल्लेख कीजिये ?

३—सफाई का स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? यह भी बतलाइये कि गॉव में सफाई कैसी होती है ?

४—शारीरिक सफाई का मनुष्य के स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? गॉव के रहने वाले शारीरिक सफाई का कितना ध्यान रखते हैं ?

५—साधारण गॉव के रहने वालो का दैनिक भोजन क्या होता है ? क्या वह भोजन उनके स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए काफी है ?

६—उन रोगों का उल्लेख कीजिये, जिनसे गॉवों में लोग अधिक सख्या मे मरते हैं ?

७—चेचक, हैजा, प्लेग और मलेरिया क्यों और कैसे होते हैं ? इन रोगों से बचने के उपाय क्या हैं ?

८—गन्दी और अशिक्षित दाइयों से बच्चे पैदा करवाने से क्या हानि होती है ?

९—गॉवों में यदि कोई बीमार हो जाता है तो वह अपनी दवा किससे करवाता है ? गॉव मे चिकित्सा का क्या प्रबन्ध है ?

१०—गॉवो मे कम खर्च से चिकित्सा का उचित प्रबन्ध किस प्रकार किया जा सकता है ?

११—क्षयरोग से बचने के लिए क्या करना चाहिए ?

इक्कीसवाँ अध्याय

पशु-पालन

गॉव मे गाय और बैल का महत्व

इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है कि भारतीय किसान खेती के कार्य के लिए बैल पर निर्भर है। यदि किसान के बैल अच्छे हैं, कमजोर नहीं हैं तभी वह अच्छी फसल पैदा कर सकता है। कमजोर बैलो से अच्छी फसल पैदा हो ही नहीं सकती। भूमि की जुताई से लेकर फसल को बाजार मे बेचने जाने

तक जितनी भी खेती में क्रियाएँ हैं, उन सब मे बैल की सहायता की आवश्यकता पड़ती है। गाय किसान को तथा उसके बच्चों को शुद्ध दूध देती है। अतएव अच्छी गाय और बैलो का किसान के पास होना किसान की आर्थिक स्थिति तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारत में खेती बिलकुल गो वंश पर निर्भर है। इसी कारण हिन्दुओं मे गाय की इतनी प्रतिष्ठा है। किसान की सबसे मूल्यवान पूँजी, उसके बैलों की जोड़ी होती है। बिना बैलों के वह कुछ कर ही नहीं सकता है।

आज भारत में संसार के एक चौथाई गाय-बैल निवास करते हैं और उनसे उत्पन्न होने वाले धन का मूल्य खेती की पैदावार के मूल्य के लगभग आधा होता है। अस्तु, खेती के उपरान्त देश में यही धंधा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी से गाय और बैलों का महत्व स्पष्ट हो जाता है।

गो वंश की अत्यन्त हीन दशा

भारत के लिए खेती सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय धन्धा है जिस पर देश की तीन चौथाई जनसंख्या निर्भर है। उस धन्धे का आधार गो वंश, हीन दशा में हो, यह आश्चर्य की बात है। किन्तु बात सच्ची है। गो-वंश की दशा आज अत्यन्त शोचनीय है, यदि यमुना पार के मथुरा इत्यादि जिले, पञ्जाब के हिसार, हरियाना तथा काठियावाड़ के गाँवों को छोड़ दिया जावे तो अन्य प्रदेशों की गायों की नस्ल इतनी गिर गई है कि वह दूध देने वाली जानवर ही नहीं रह गई। उसके स्थान को भैंस ने ले लिया। साधारणतः ये गायें सेर या डेढ सेर दूध देती हैं। जब कि यूरोप तथा अन्य देशों में यदि कोई गाय पन्द्रह या सोलह सेर से कम दूध देती है तो वह पालने योग्य नहीं समझी जाती, मांस बनाने के कारखाने को भेज दी जाती हैं।

यही दशा बैलों की भी है। खेती पर काम करते हुए बैलों को देखिए। अधिकतर निर्बल, नाटे और दुबले-पतले बैल दिखाई देंगे। भला इन निर्बल बैलों से अच्छी खेती कैसे सम्भव हो सकती है? किसान को अच्छा हल या गन्ना पेरने का कोल्हू दीजिये तो वह उनकी उपयोगिता को समझते हुए भी उसे इस कारण नहीं लेता क्योंकि उसके निर्बल बैल उसे चला न सकेंगे। बैलों की नस्ल बिगड़ गई है, फिर भी भारत के कुछ भागों मे अच्छी नस्ल के बैल पाये जाते

हैं। जिनकी नस्ल अभी नहीं बिगड़ी है, उनमे 'शाहिवाला' और 'हरियाना' पञ्जाब के, 'काकरेज' गुजरात का, 'गिर' काठियावाड़ का, 'औन्गाल' मद्रास का, 'पॅवार' उत्तर' प्रदेश का, 'गोली' म य प्रदेश का 'मालवी' मध्य भारत का तथा 'नागौरी' राजस्थान का मुख्य है।

गो-वंश की हीन दशा के कारण

गो-वश की इस शोचनीय दशा के तीन मुख्य कारण हैं। (१) अच्छे चारे का अकाल (२) पशु रोगों और बीमारियों मे बहुसख्यक गाय और बैलों का नाश (३) गाय बैलों की नस्ल को अच्छा बनाने के उचित प्रबन्ध का होना।

आवश्यकता से अधिक बैल

चारे के सम्बन्ध मे लिखने से पूर्व एक बात समझ लेने की है। एक निर्बल और अशक्त बैल जो एक अच्छे बैल की तुलना मे एक तिहाई काम करता है, अच्छे बैल से कुछ ही कम खाता है। अतएव यदि अच्छे गाय या बैल रक्खे जावें तो सब काम कम गाय-बैलो से चल जावेगा और कम चारे की आवश्यकता होगी। परन्तु यदि खराब गाय बैल रक्खे जावेंगे तो सख्या में अधिक रखने पड़ेंगे और चारा अधिक खिलाना पडेगा। अच्छे बैल को रखने का खर्चा एक रद्दी बैल के रखने से कुछ ही अधिक पडता है। परन्तु काम को देखते हुए अच्छा बैल सस्ता बैठता है। सन् १६२६ मे भारतीय शाही कृषि कमीशन की सम्मति मे भारत मे प्रति एकड और दूसरे देशों से कहीं अधिक बैल हैं। उसका मत है कि यदि ये बैल अच्छे होते तो इतने अधिक बैलों को न रखना पड़ता। भारत मे एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो गई है। किसी भी प्रदेश में गाय और बैलों की सख्या खेती के योग्य बैलों पर निर्भर है। बैलों को पालने के लिए जितनी खराब दशा किसी प्रदेश की होगी, उतने ही अधिक गाय और बैल उस प्रदेश में इस आशा से पाले जावेंगे कि इनमें मे खेती योग्य यथेष्ट बैल मिल जावेंगे। इसका फल यह होता है कि चारे की उस प्रदेश मे और भी कमी हो जाती है, गायें कम बच्चे-देने लगती हैं, और उनसे बछड़े छोटे होने लगते हैं, जिनसे किसान का काम नही चलता। किसान उपयोगी और अच्छे बैलों को प्राप्त करने के लिये अधिक मे अधिक बछड़ों को उत्पन्न करवाता और पालता है। जैसे-जैसे संख्या बढती जाती है, बैलो का डील-डौल छोटा होता जाता है, वैसे ही चारे की कमी बढ़ती जाती है।

इनमें से अधिकांश निर्बल बैल खेत के लिए उपयुक्त ही नहीं होते। गो-वंश की नस्ल इस समय इतनी खराब हो गई है कि देश के सामने यह एक बड़ी समस्या के रूप में खड़ी हो गई है। अब हम इन तीनों कारणों की विस्तृत आलोचना करेंगे, जिनके कारण गो-वंश की दशा इतनी शोचनीय हो गई है, और यह भी बतलावेंगे कि गाय और बैलों की नस्ल को अच्छा कैसे बनाया जा सकता है।

चारे की कमी (Fodder)

भारत में जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गई, वैसे वैसे खेती के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होती गई। कारण यह था कि खेती के अतिरिक्त और कोई धंधा ही नहीं था, जिसमें बढ़ी हुई जनसंख्या लग सकती। इसका फल यह हुआ कि चरागाहों को खेतों में परिणत कर दिया गया। गोचर भूमि के कम हो जाने से चारे की कमी हो गई। चरागाह तो कम हो गये किन्तु किसान ने गाय और बैलों के पालने का ढङ्ग वही पुराना रक्खा। भारतीय किसान का अपने पशु को पालने का ढङ्ग यह है कि गाय जब दूध देती है तब तो उसको घर पर सानी (भूसा-करबी) तथा घास इत्यादि यथेष्ट दी जाती है, परन्तु जब वह सूख जाती है। तब उसको बहुत कम खाने को मिलता है। केवल वह मैदानों पर चर कर पेट भरती है। किन्तु चरागाह की कमी के कारण तथा मार्च, अप्रैल, मई, जून, में घास के जल जाने के कारण गायें प्राय. भूखी रहती हैं। क्रमशः वह दुर्बल होती जाती हैं। बैलों को जब कि काम करते है, उन दिनों उन्हें किसान घर पर अधिक सानी देता है; किन्तु जिन खेतों पर काम कम होता है, उन्हें भी मैदानों पर चरने को छोड़ दिया जाता है।

अस्तु, चारे की समस्या को हल करने के दो ही ढग हैं, या तो चरागाहों को बढ़ाया जावे अथवा इसी भूमि पर अधिक से अधिक चारा उत्पन्न किया जावे। कृषि कमीशन की राय में तथा अन्य कृषि शास्त्रियों की राय मे अब गोचर-भूमि बढाई नहीं जा सकती। अतएव इसी भूमि पर तथा खेतों पर अधिक से अधिक चारा उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिये। अधिक चारा उत्पन्न करने के लिये निम्नलिखित उपाय करने होंगे। गाँव के चारों ओर मैदानों और खेतों में जो भी गड्हे तथा ऊबड़ खाबड़ भूमि हो, उसको चौरस कर दिया जावे जिससे कि वर्षा का पानी गिरते ही तुरन्त न बह जावे, परन्तु धीरे-धीरे बहे और भूमि

उसको सोखे। इससे केवल अधिक घास ही नहीं उत्पन्न होगी वरन् खेती भी अच्छी होगी। चरागाह में गाय और बैलों के चरने पर गाँव की पचायत का नियन्त्रण होना चाहिये। यदि चरागाह का एक हिस्सा एक वर्ष पशुओं के चरने के लिए रक्खा जावे तो दूसरे हिस्से पर घास खूब बढने दी जावे और उसको काट कर साइलो (Silo)* मे भर कर साइलेज (Silage)† बना ली जावे या काट-काट कर खिलाई जावे। गेहूँ और जौ के भूसे का भी उचित उपयोग होना चाहिए।

चरागाह पर पशुओं को चराने से घास नष्ट हो जाती है, बढ़ती ही नहीं है। अतएव घास काट कर खिलाने से चरागाहों मे अधिक चारा मिल सकता है। घास का ठीक उपयोग करने के अतिरिक्त ज्वार, बाजरा, मक्का तथा अन्य प्रकार की करबी की भी साइलेज बनाने से चारा स्वास्थ्यवर्धक तथा अच्छा बना रहता है। सुखा देने से बहुत सा चारा नष्ट हो जाता है और उसके गुण जाते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ सिंचाई के लिए पानी आसानी से उपलब्ध हो, वहाँ किसानों को चारे की फसल उत्पन्न करने को उत्साहित करना चाहिए। यदि क्लोवर (Clover) नाम की एक प्रकार की घास तथा अन्य चारे की फसल जो बहुत जल्दी तैयार हो सकती है और जिन्हें किसान बिना अपनी मुख्य फसलों का त्याग किये काट सकता है, उत्पन्न की जावे तो किसान के पास यथेष्ट चारा हो सकता है। कृषि विभाग को चाहिये कि वह अन्य चारे की फसलों की खोज करे जो कि शीघ्र तैयार हो सकें।

भारत के जङ्गलों में बहुत अधिक घास बेकार सूख जाती है। यदि वह घास काट कर चारे के रूप मे परिणत की जा सके और रेल घास को बहुत सस्ते किराये पर देश मे एक कोने मे दूसरे कोने तक पहुँचा सके तो जो यह अनन्त राशि में चारा नष्ट होता है और पशु भूखे मरते हैं, यह अवस्था दूर हो सकती है।

---

* साइलो (Silo)—घास अथवा चारे को अच्छी दशा में सुरक्षित रखने वाला गड्ढा।

†साइलेज (Silage)—साइलो मे रक्खी हुई घास अथवा अन्य चारा साइलेज कहलाती है। साइलेज बनाने में चारे के सारे पौष्टिक अंश सुरक्षित रहते हैं।

प्रत्येक गाँव में जो ऊसर अथवा बजर भूमि है उसका उपयोग भी जङ्गल उत्पन्न करने में करना चाहिये। जङ्गल विभाग शीघ्र उत्पन्न होने वाले वृक्षों का जङ्गल उस भूमि पर गाँव वालों की सहायता से लगवाये और उस जङ्गल से गाँव के लोग चारा और ईंधन अपनी आवश्यकतानुसार ले लिया करें। उस जङ्गल की देख-भाल गाँव की पचायत करे।

साइलेज (Silage) बनाने के उपाय

सूखे चारे को सुरक्षित रखने का सबसे उत्तम साधन साइलेज बनाना है। किसान एक गड्ढा जो ऊपर आठ फुट चौड़ा हो और तले पर सात फुट चौड़ा हो और जिसकी गहराई आठ से दस फुट तक हो, खोदे। ज्वार, बाजरा, मक्का, भूसा, तथा अन्य प्रकार की करबी के टुकडे करके घास, पेड़ों की पत्तियों तथा अन्य पौधों, सबो को काटने के उपरान्त तुरन्त ही ठूँस ठूँस कर और जहाँ तक हो सके, दाब-दाब कर भर दे। ऊपर से पत्थर ईंटे तथा भारी चीजें रख दे, बहुत अच्छा और स्वास्थ्यवर्धक चारा तैयार हो जावेगा।

पशुओं के रोग (Cattle diseases)

भारत में प्रतिवर्ष लाखों की संख्या मे पशु रिन्डरपेस्ट (Rinderpest) जानवरों के प्लेग, सेप्टीसीमिया (Septiccamia) तथा मुँह और पैर की बीमारियों से मरते हैं। इनमें रिंडरपेस्ट अत्यन्त भयङ्कर रोग है जिससे प्रतिवर्ष असख्य गाय, बैल तथा अन्य पशु मर जाते हैं। यह छूत का रोग है। जब फैलता है तो अग्नि की तरह फैलता है और बेचारा किसान अपने बैल से हाथ धो बैठता है। पशुचिकित्सा-विभाग सिरम (Serum) का टीका लगाकर पशुओं की रक्षा करता है। किन्तु पशु चिकित्सालय अधिकतर जिलो और तहसीलों मे ही होते हैं। किसान अपने बीमार बैलों को भला वहाँ कैसे ले जा सकता है! आवश्यकता इस बात की है कि पशु-चिकित्सकों की संख्या बढाई जावे और वे गश्त करते रहे। सरकार का तो यह कर्तव्य ही है कि वह अधिक से अधिक पशु-चिकित्सा की सुविधाएँ प्रदान करे। किन्तु किसानों का भी यह कर्तव्य है कि वे जब मेलों तथा पैठों से बैल मोल लावें तो उसे एक सप्ताह तक अलग बाँध कर खिलावें। जानवरो में न मिलने दें। जब कभी कोई पशु बीमार हो जावे तो उसे अन्य जानवरों से अलाहदा कर दें। और अपने जानवरों को ताल तथा

पोखरों का सड़ा हुआ गन्दा पानी न पिलावें। तभी किसानों के जानवर बीमारी से बच सकते हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब तक बैलों की बीमारियों से रक्षा न की जा सकेगी तब तक किसान बढ़िया बैल नहीं खरीदेगा, क्योंकि उसको उसकी बीमारी से मर जाने का बराबर भय रहेगा। ऐसी दशा में वह सस्ता बैल खरीदना ही पसन्द करेगा।

रिन्डरपेस्ट (पशुओं का प्लेग) भयंकर छूत का रोग है। जब यह रोग फैलता है तो गॉव के गॉव साफ हो जाते हैं। प्रतिवर्ष भारत में लाखों की संख्या में पशु इस रोग से मर जाते हैं।

जब पशु बीमार होता है तो खाना छोड़ देता है और सुस्त रहने लगता है। फिर उसको तेज बुखार चढ़ता है तथा तीन चार दिन में मर जाता है। यदि एक पशु को यह बीमारी लग गई तो वह गॉव भर में फैल जाती है।

पशु-चिकित्सा विभाग ने इसकी दवा निकाल ली है। जब बीमारी फैली हो और पशु को दवा (सिरम) का टीका लगवा दिया जाय तो पशु पर बीमारी का असर नहीं होता, किन्तु देश के लगभग पॉच लाख गॉवों में सिरम का टीका लगाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। पशुओं के डाक्टर बड़े कस्बे या शहरों में रहते हैं। गॉव के लोग उनसे कोई लाभ नहीं उठा सकते।

आवश्यकता इस बात की है कि बहुत ज्यादा "सिरम" तैयार कराया जावे और गॉव के मुखिया, पटवारी, गॉव की पाठशाला के अध्यापक तथा अन्य कर्मचारियों को टीका लगाना सिखाकर दवा उन्हे दे दी जावे। इस प्रकार पशुओं की इस रोग से रक्षा हो सकती है।

गाय बैलों की नस्ल सुधारना (Cattle-breeding)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाय और बैलों की नस्ल बिगड़ गई है। इसका मुख्य कारण यह है कि गॉव तथा कस्बों में अच्छे सॉड़ों की कमी है। हिन्दुओं में प्राचीन काल से यह प्रथा थी कि किसी वृद्ध के मरने पर उसके वंशज एक अच्छी नस्ल के अच्छे बछड़े को सॉड़ बनाते थे। सॉड़ बनाने के लिए बहुत अच्छा बछड़ा छॉटा जाता था। किन्तु अब लोग पुण्य तो कमाना चाहते हैं और इस कारण किसी रद्दी बछड़े को सॉड़ बना देते हैं। इसका फल यह हो रहा है कि वे धार्मिक सॉड़ (जो खराब नस्ल के हैं) हजारों-लाखों की संख्या में

छूटे फिरते हैं और गाय बैलों की नस्ल को खराब करते हैं। यही नहीं बूढे अशक्त सॉड़ भी वंशोत्पत्ति करते रहते हैं। जबकि बछड़े पैदा करने का प्रबन्ध इतना खराब है, फिर नस्ल कैसे अच्छी बन सकती है ?

अच्छी नस्ल पैदा करने के लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि इन रद्दी सॉड़ों को दूर किया जावे। कुछ विशेषज्ञों का तो यह कहना है कि इन सॉड़ों को मरवा दिया जावे। किन्तु हिन्दू इसको सहन न कर सकेंगे, अतएव इन रद्दी सॉड़ों को नपुसक करवा दिया जावे, जिससे वे सन्तानोत्पत्ति के योग्य न रहें। भविष्य में इस प्रकार सॉड़ बनाकर छोड़ने के विरुद्ध नियम बना दिया जावे। केवल अच्छी नस्ल के बछड़ों को ही सॉड़ बनाया जावे। भारत के प्रत्येक देश मे कुछ सरकारी सॉड फार्म है जहाँ अच्छी जाति के सॉड़ तैयार किये जाते हैं। उत्तर प्रदेश में भी दो ऐसे सरकारी फार्म हैं जहाँ अच्छी नस्ल के सॉड़ तैयार किये जाते हैं। सन् १९५६ तक देश भर में ६०० केन्द्र ग्राम योजनाएँ चालू की जाएँगी जहाँ अच्छी नस्ल के सॉड़ तैयार किये जाएँगे। किन्तु इनमे इतने सॉड़ प्रति वर्ष नहीं दिये जा सकते जितनी गाँवों को आवश्यकता है। साधारणत. सो गायों के लिए एक अच्छे सॉड़ की आवश्यकता है।

गाय और बैल की नस्ल तभी सुधर सकती है जब कि गाँव-गाँव में अच्छे सॉड़ पहुँचा दिये जावें। इसके लिए केवल सरकार पर अवलम्बित रहना ठीक नहीं है। सरकार कभी भी यथेष्ट सख्या में सॉड़ बाँट न सकेगी। इसके लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, गाँव वालों की पचायतों, जमींदारों, कोर्ट्स आव-वार्ड्स, गऊशालाओं और पिंजरापोलों, गाँव की सहकारी समितियों तथा अन्य गाँव के धनी व्यक्तियों को सॉड़ों को पालना चाहिए और नस्ल को अच्छा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

भारतवर्ष में सन्तानोत्पत्ति का कार्य करने के लिए दस लाख उत्तम सॉड़ों की आवश्यकता है। यद्यपि भारत में ४० लाख सॉड़ है परन्तु वे निकम्मे और रद्दी सॉड़ हैं जो गौवंश की नस्ल को खराब करते है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि इन निकम्मे सॉड़ों को नपुसक कर दिया जावे और उत्तम सॉड़ तैयार किए जावें। केवल सरकारी बुलफार्मों पर इतनी सख्या मे उत्तम सॉड़ तैयार नहीं किए जा सकते क्योंकि १० लाख उत्तम सॉड बनाये रखने के लिए प्रतिवर्ष २ लाख उत्तम सॉड़ पैदा करने की आवश्यकता है जो कि वृद्ध सॉड़ों अथवा मरने

वाले सॉड़ों का स्थान ले सकें। अतएव पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत ६०० की विलेज स्कीम (केन्द्र ग्राम योजनायें) चलाई जा रही हैं जिनके द्वारा उत्तम सॉड़ों की सख्या में तेजी से वृद्धि होगी। इस योजना के अन्तर्गत कुछ गॉव छॉट लिए जावेंगे जिनको सरकार उत्तम सॉड़ देगी और उनके ससर्ग से उत्पन्न होने वाले बछड़ों को सरकारी बुलफार्मों पर पाला जावेगा जब वे बड़े होकर उत्तम सॉड बन जावेंगे तो उन्हें दूसरे ग्राम समूहों को बॉट दिया जावेगा। इस प्रकार उत्तम जाति के सॉड़ उत्पन्न किए जावेंगे।

नस्ल सुधारने का दूसरा उपाय कृत्रिम रूप से गायों के गर्भ स्थापित कराने का है। जहॉ एक सॉड़ वर्ष में ६० से ८० गायों को प्राकृतिक रूप से गर्भ धारण करा सकता है कृत्रिम रूप से एक सॉड़ से ५०० गायों को गर्भ धारण कराया जा सकता है। भारत में अब कृत्रिम रूप से गायो को गर्भवती कराने के केन्द्र स्थापित किए जा रहे हैं।

भारत का विभाजन और पशुधन

१६४५ की पशु गणना के अनुसार अविभाजित भारत में ढोरों की सख्या २० करोड़ ६० लाख थी। विभाजन के उपरान्त भारत में १७ करोड़ ६० लाख ढोर रह गये। इनमें १३ करोड़ ६० लाख गाय बैल हैं। और ४ करोड़ भैंस हैं। आज भी ससार के लगभग २५ प्रतिशत ढोर भारत में हैं।

परन्तु विभाजन के फलस्वरूप जहॉ तक अच्छी नस्ल का प्रश्न है, भारत को बहुत हानि हुई। साहीवाल, मॉटगोमरी, सिंधी, थारपारकर जैसी दुधारू नस्लें तथा थारी, भगनारी और धन्नी जाति की नस्ले जो खेती के लिये उत्तम बैल उत्पन्न करती थीं वे सभी पाकिस्तान में रह गईं।

ढोरों की उत्तम नस्लें पाकिस्तान मे रह जाने के कारण भारत सरकार उन नस्लों को भारत मे उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रही है। नस्ल की उन्नति करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि देश को प्रतिवर्ष दो लाख उत्तम जाति के सॉड़ चाहिए जबकि सरकारी बुल फार्मों से प्रतिवर्ष केवल ७५० उत्तम जाति के सॉड़ ही तैयार होते हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए सरकार ने "केन्द्र ग्राम योजना" को अपनाया है। इस योजना के अन्तर्गत कुछ गॉवों को उत्तम जाति के सॉड़ दिये जावेंगे और उनसे जो भी बछड़े उत्पन्न होंगे वे सरकारी

बुल फार्मो पर पाले जाकर उत्तम सॉड़ बनाये जावेंगे। और फिर वे गाँवों को दे दिये जावेंगे। भारत सरकार ने ६०० नस्ल सुधार-केन्द्र स्थापित करने की योजना बनाई है। पशु-विभाग कृत्रिम रूप से गायों से सन्तानोत्पत्ति कराने का प्रयोग कर रहा है जिसमें सफलता प्राप्त हुई है।

इस योजना से भविष्य में भारत में गो वंश की उन्नति होने की आशा है।

जिला-बोर्ड (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) द्वारा सहायता

प्रत्येक जिला (डिस्ट्रिक्ट) बोर्ड को अपने जिले की गाय और बैलों की जाँच करनी चाहिये और उसके उपरान्त यह निश्चय करना चाहिए कि कौन-सी नस्ल का सॉड़ उस जिले के लिए उपयुक्त रहेगा। जहाँ-जहाँ पशुचिकित्सालय हों वहाँ-वहाँ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड सॉड़ रक्खे। ये समीपवर्ती गांवो के उपयोग के लिए हों। जो भी पञ्चायत, गऊशाला अथवा अन्य संस्था नस्ल अच्छी करने के लिये सॉड़ मोल ले, उसे बोर्ड आर्थिक सहायता प्रदान करे। गाय और बैलों की नुमाइश कराई जावे। मेलों, नुमाइशों तथा पैठों में प्रचारकों को भेजकर इस बात का प्रचार कराया जाय कि अच्छी नस्ल किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है। साथ ही अच्छे सॉड़ तथा उनसे उत्पन्न गाय और बैलों का प्रदर्शन कराया जावे। जो किसान अच्छे गाय और बैल उत्पन्न करें, उनको इनाम दिया जावे।

सरकार पञ्चायतों तथा सहकारी समितियों को उत्साहित करे कि वे सॉड़ खरीदें और अपने क्षेत्रों में गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिए अपना-अपना प्रयत्न करें। यदि गाँव के लोग सामूहिक रूप से संगठित होकर सॉड़ रक्खें तो गाय को गाभिन कराने की थोड़ी-सी फीस ली जा सकती है, जिनसे सॉड़ का पालन हो सकता है।

सरकारी नस्ल-सुधारक समितियाँ

(Co-operative Cattle-breedig Socities)

गाँव वालों को भी अपने गाय-बैलों की नस्ल सुधार करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिये। इसके लिए उन्हें एक सहकारी समिति गाय बैलों की नस्ल सुधारने के लिए स्थापित करना चाहिये। पूर्वी पंजाब तथा अन्य प्रदेशों में ये सहकारी नस्ल सुधार समितियाँ स्थापित की गई हैं। ये समितियाँ अच्छे सॉड़ रखती हैं। रद्दी और खराब नस्ल के सॉड़ों को गाँव से हटा देती हैं।

गाँव के गायों का रजिस्टर रखती हैं। गायों के गाभिन होने तथा उनके व्याने का लेखा रखती हैं। गाय तथा उनसे उत्पन्न सन्तान पर निशान डालती हैं। (यह निशान मिटते नहीं) इनसे यह ज्ञात होता है कि नस्ल में कितनी उन्नति हुई। अच्छी नस्ल के सॉंड़ और गाँव की छुटी हुई गायों के संसर्ग से जो गायें उत्पन्न हों, उनके दूध का लेखा रखती हैं, जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे कितना दूध देती हैं। गाँव के गाय और बैलों की बीमारी से रक्षा करने के लिए उनको टीका लगवाती हैं। नस्ल-सुधार समिति अपना खर्च चलाने के लिये सदस्यों से प्रवेश फीस लेती हैं। सदस्यों से गायों की गाभिन कराई की जो फीस ली जावे, गैरसदस्यों की गाय बच्चा पैदा करे तब नाममात्र की फीस ली जावे तथा सदस्यों द्वारा गाय अथवा बैल बेचे जाने पर भी थोड़ी सी फीस ली जावे

ग्राम-सुधार विभाग

ग्राम-सुधार-विभाग को भी इस कार्य में सहयोग देना चाहिये। जो गाँव कैटिल ब्रीडिंग सोसायटी स्थापित करें और अच्छी नस्ल का सॉंड़ मोल लें उन्हें ग्राम सुधार विभाग, सॉंड़ का २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत मूल्य दे। इसके अतिरिक्त वह इस सम्बन्ध में प्रचार-कार्य करे।

गऊशाला

गऊशालाएँ भी गाय और बैल की नस्ल अच्छा बनाने में बहुत कुछ कार्य कर सकती हैं। इस समय तो भारत मे तीन हजार गऊशालाओं पर हिन्दू करोड़ों रुपये व्यय करते हैं, किन्तु वह बूढे तथा रोगी गाय और बैलों को रखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते। यदि इन गऊशालाओं को गाय-बैलों की नस्ल के सुधारने का केन्द्र बना दिया जावे तो बहुत कुछ काम हो सकता है।

पशुओं और विशेषकर गाय और बैलों की नस्ल तभी सुधर सकती है जब कि जनता, सार्वजनिक संस्थाएँ तथा सरकार सभी इस ओर प्रयत्नशील हों।

हिन्दू गाय को अत्यन्त पवित्र मान कर उसकी पूजा करते हैं, किन्तु गऊशालायें जिन पर हिन्दुओं का करोड़ों रुपये व्यय होता है, गाय की उन्नति के लिए कुछ नहीं करतीं। हमें यह न भूल जाना चाहिये कि जब तक हम गाय की नस्ल की उन्नति करके उसको लाभदायक पशु नहीं बना देते तब तक उसके प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती।

होना यह चाहिये कि प्रत्येक गऊशाला एक या अधिक जाति का सॉड रक्खे जिससे कि उस इलाके में नस्ल अच्छी बने। जहाँ गऊशाला बहुत धनवान हो वहाँ अच्छे साँड तैयार किये जावें और दूसरी गऊशालाओं को दिये जावे। गायों के पालन, चारे की व्यवस्था, साइलेज बनाने, पशुओं के रोगों की जानकारी कराने, पशुओं की चिकित्सा का प्रबन्ध करने का गऊशाला-केन्द्र होना चाहिये।

वर्ष में एक बार समीपवर्ती प्रदेश की गायों पर पारितोषिक दिया जावे। अच्छे बछड़े और गायों पर पारितोषिक दिया जावे। इस प्रकार देश की गऊशालाएँ गोवंश की उन्नति का प्रधान साधन बन सकती है, आज तो वे बूढ़े पशुओं को रखने का स्थान मात्र हैं।

अब सरकार वृद्ध, अपंग और दूध न देने वाले ढोरों के लिए गोसदन खोल रही है। गऊशालाओं के जानवर गोसदन में रखे जावेंगे और गऊशालाओं में नस्ल सुधार का कार्य किया जायेगा। सरकार इस काम में धन से सहायता करेगी।

गो-सेवा संघ

कई वर्ष हुए महात्मा गांधी के नेतृत्व में गो-सेवा संघ की स्थापना हुई है। इसका मुख्य उद्देश्य गाय की नस्ल की उन्नति करना और इस सम्बन्ध में वैज्ञानिक अनुसंधान करना है। इस संघ का सदस्य वही व्यक्ति हो सकता है जो इस बात का व्रत ले अर्थात् प्रतिज्ञा करे कि वह आजीवन गाय का ही दूध और उसके ही दूध से बने हुये घी, दही, मक्खन इत्यादि का उपयोग करेगा।

गो-सेवा संघ ने वर्धा में गोपुरी नामक स्थान बनाया है, जहाँ गाय की नस्ल का सुधार करने, दूध को बढ़ाने, चारे इत्यादि की व्यवस्था करने और पशुओं के रोगों को रोकने तथा अन्य सभी आवश्यक समस्याओं पर अनुसन्धान हो रहा है।

गो-सेवा संघ का यह निश्चित मत है कि भारत में जो बैल के लिए गाय पालने और दूध तथा घी के लिए भैंस पालने की परिपाटी चल पड़ी है, वह हानिकारक है। इसमें हमें एक पशु के स्थान पर दो पशुओं को रखना पड़ता है और चारे की समस्या और भी विकट रूप धारण कर लेती है। अतएव गो-सेवा संघ का कहना यह है कि हमें गाय की ऐसी नस्ल उत्पन्न करनी चाहिये

जो कि खेती के लिए उत्तम बैल भी दे और दूध भी खूब दे जिससे कि भैंस रखने की आवश्यकता न रहे। यही कारण है कि सघ जनता से गाय के दूध, घी इत्यादि को काम में लाने का आग्रह करता है।

आज तो स्थिति यह है कि गाय, बैल उत्पन्न करने के लिए पाली जाती है, दूध तो वह नाम मात्र को ही देती है। भैंस-खेती के काम नहीं देता इसलिए गाय पालना जरूरी है। लेकिन गाय के दूध न देने के कारण भैंस पालनी पड़ती है। इससे बहुत हानि होती है। इसलिए अगर ऐसी गाय की नस्ल तैयार की जावे जो दूध भी खूब दे और खेती के लिए उत्तम बैल भी पैदा करे तो हानि बच सकती है। गो-सेवा सघ इसी प्रकार की दोहरे काम वाली गाय की नस्ल को उत्पन्न करने पर जोर देता है।

भारत का विभाजन हो जाने से जहाँ तक गोधन का प्रश्न है, भारत की स्थिति पहले से बहुत खराब हो गई है। अविभाजित भारत का २० करोड़ ६० लाख गो-वश भारत मे रहा और ३ करोड़ पाकिस्तान में चला गया। जहाँ तक सख्या का प्रश्न है, भारत में सख्या यथेष्ट है परन्तु अधिकाश गो वश की अच्छी नस्लें पाकिस्तान में रह गई जो अच्छे बैल उत्पन्न करती है और दूध अधिक मात्रा मे देती हैं। शाईवाल, माटगोमरी, सिंध, थार पारकर इत्यादि अच्छी नस्लें पाकिस्तान मे रह गई। भारत में इतनी अच्छी नस्लें नहीं हैं।

यही कारण है कि भारत मे केन्द्रीय सरकार गो-वश की नस्ल को सुधारने की ओर अधिक प्रयत्नशील है। अतएव सरकार ने एक योजना बनाई है। देश भर में उत्तम जाति के सॉड़ उत्पन्न करने के लिए ५४० बुल फार्म स्थापित किये जावेंगे जिनसे प्रतिवर्ष दस हजार उत्तम जाति के सॉड़ तैयार होंगे जो कि गो वश की नस्ल को उत्पन्न करेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाय किसान के लिए क्यों उपयोगी जानवर है ?

२—खेती मे बैलों का किन-किन कार्यों में उपयोग होता है ?

३—भारत में किन प्रदेशों की गायें अधिक दूध देती हैं और बैलों की कौन-सी अच्छी नस्लें मिलती हैं ?

४—भारत में गाय और बैलों की नस्लें खराब हो गई है, इसका क्या कारण है ?

५—क्या भारत मे बैल जरूरत से ज्यादा हैं ? यदि हैं, तो इसका कारण बतलाइये।

६—गाँव मे चारे की कमी को पूरा करने के लिए क्या उपाय काम मे लाना चाहिये ?

७—साइलेज किसे कहते हैं, यह कैसे तैयार होती है और उससे क्या लाभ होता है ?

८—पशुओं की कौन-कौन सी भयंकर बीमारियाँ गाँव मे फैलती हैं ? उनसे पशुओं की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है ?

९—गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने के लिए कौन-सा उपाय काम में लाना चाहिये ?

१०—जिला बोर्ड (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) तथा कैटिल ब्रीडिंग सोसाइटी गाय-बैलों की नस्ल को सुधारने में किस प्रकार सहायक हो सकती हैं ?

११—गो-सेवा-संघ गो-वंश की उन्नति के लिए क्या कर रहा है ?

बाईसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

(Agriculture Improvement)

कृषि की गिरी हुई दशा

भारत कृषि-प्रधान देश है। देश की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है। खेती का देश के आर्थिक संगठन मे सर्वोच्च स्थान होने पर भी खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है, यह आश्चर्य की बात है। देश की निर्धनता को दूर करने के लिये जहाँ देश की औद्योगिक उन्नति करने की आवश्यकता है, वहाँ उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि भूमि की उपज बढ़ाई जावे। जैसा कि हम किसी पिछले अध्याय मे बतला आए हैं, अन्य देशों की तुलना मे भारत की प्रति एकड़ उपज सब से कम है। भारत में प्रति एकड़

कपास की पैदावार पच्चीस पोंड है जब कि मिश्र की ४०० पौंड तथा संयुक्तराज्य अमरीका की २५० पोंड है। भारत में एक एकड़ में जितना गन्ना उत्पन्न होता है उससे चौगुना जावा और छः गुना क्यूबा में उत्पन्न होता है। भारत में प्रति एकड़ इंगलैंड का एक चौथाई गेहूँ उत्पन्न होता है। यद्यपि इन देशों और भारत की खेती-बारी के ढंग में बहुत अंतर है। वहाँ खाद, यन्त्र और शक्ति के द्वारा बड़े-बड़े खेतों पर आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से खेती होती है। अतएव यह कहना कि भारत भी प्रति एकड़ इतनी ही पैदावार उत्पन्न कर सकता है, ठीक न होगा। परन्तु फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि यदि खेती बारी अधिक सावधानी से की जाये तथा आवश्यक सम्भव सुधार कर दिये जावें तो उपज बहुत-कुछ बढ़ाई जा सकती है।

अब हम उन साधनों का वर्णन करते हैं जिनकी कृषि में आवश्यकता होती है और साथ ही यह बतलाने का भी प्रयत्न करते हैं कि किस प्रकार पैदावार बढ़ाई जा सकती है।

कृषि के आवश्यक साधन

प्रत्येक उत्पादन कार्य में चार साधन आवश्यक हैं—१ भूमि (Land) २ पूँजी (Capital), ३ श्रम (Labour), ४ संगठन (Organisation) और साहस (Enterprise)।

भूमि

भूमि के अंतर्गत हमें निम्नलिखित समस्याओं का अध्ययन करना है — छोटे-छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या। खाद की समस्या।

पूँजी

पूँजी के अन्तर्गत पशुधन, खेती के यन्त्र, बीज, सिंचाई, खाद की समस्यायें आती हैं।

श्रम तथा संगठन

श्रम तथा संगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु तथा पैदावार को बेचने की समस्याओं का अध्ययन करना होगा।

छोटे-छोटे बिखरे हुए खेतों की समस्या

यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि भारतीय किसानों के पास भी थोड़ी

सी भूमि होती है। वह भी छोटे-छोटे टुकड़ो में बिखरी होती है। यह सर्वमान्य बात है कि जब तक किसान छोटे-छोटे अनेक खेतो पर खेती करने का प्रयत्न करता है, जो एक दूसरे से बहुत दूरी पर बिखरे हुए है, तब तक खेती की उन्नति होना सम्भव नहीं है। खेती की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि खेत एक चक में हों।

किसी किसी प्रदेश मे तो खेतो के ऐसे छोटे-छोटे टुकडे हो गये हैं और इतनी दूरी पर बिखरे है कि उन पर खेती करने से कोई लाभ हो ही नहीं सकता। भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित होने का खेती पर बहुत बुरा असर पड़ता है। औसत किसान अपनी शक्ति और साधन का उचित उपयोग नहीं कर सकता। एक टुकडे से दूसरे टुकडे तक उसे जाने में बहुत समय नष्ट करना पड़ता है। इन बिखरे हुए टुकडों की ठीक तरह से देख भाल भी नहीं हो सकती। बहुत सी जमीन मेड़ बनाने मे व्यर्थ चली जाती है। किसानों के खेत एक जगह न होकर बिखरे होने के कारण उसे दूसरों के खेतों में से होकर जाना पड़ता है जिससे झगड़ा होता है और मुकदमेबाजी की नौबत आती है। सिंचाई के मामले मे भी अड़चन होती है। किसान अपने सब टुकड़ों पर तो कुआँ बना ही नहीं सकता। और एक कुए से दूर-दूर के खेतों को पानी ले जाने मे दूसरों के खेतों मे से पानी ले जाना पड़ता है। बिखरे हुए खेतों के कारण अच्छे यन्त्र और औजार काम में लाये नहीं जा सकते, क्योंकि वे भारी होते है और किसान उन्हें अपने कधों पर रख कर एक टुकडे से दूसरे टुकडे पर नहीं ले जा सकता। न खेत पर वह और कोई सुधार ही कर सकता है। छोटे-छोटे खेतों मे बाडे लगाने का खर्च भी बहुत पडता है इसलिए बिना बाडे की खेती करनी होती है। किसान के पास सारी भूमि एक चक में न होने के कारण वह अन्य देशो के किसानो की तरह अपने खेत पर मकान बना कर नहीं रहता वरन् खेतो से दूर बस्ती मे रहता है। वैज्ञानिक ढग की खेती करने के लिए किसान को खेत पर ही रहना चाहिये, क्योंकि उस दशा मे वह हर एक वक्त खेतों की देख-भाल कर सकेगा, उसकी स्त्री तथा बच्चे पूर्ण रूप से सहायक हो सकेंगे। तथा खाद इत्यादि का पूरा उपयोग हो सकेगा। साराश यह है कि भूमि का छोटे छोटे टुकड़ो मे बिखरे होना खेती की उन्नति मे बहुत

अधिक है। इसमें सुधार अत्यन्त आवश्यक और पहली बात है।

यह तभी हो सकता है कि जब हर एक किसान को उसकी जमीन (जो अभी अलग-अलग टुकड़ों में बँटी है) के बराबर का एक ही बड़ा खेत दे दिया जावे और आगे इस बात का प्रबन्ध कर दिया जाय कि एक निश्चित क्षेत्रफल के बाद जमीन के टुकडे नहीं किये जा सकेंगे। पहला प्रश्न जमीन के बिखरे हुए टुकड़ों की चकबन्दी का है और दूसरा भविष्य मे जमीन के बँटवारे को रोकने का है।

चकबन्दी दो तरह से की जा सकती है—सहकारी चकबन्दी समितियों द्वारा और कानून के द्वारा। (देखो चकबन्दी समितियाँ)। चकबन्दी का अर्थ यह है कि जमीन का इस प्रकार बँटवारा किया जावे कि किसान की जितनी कुल जमीन है वह एक चक मे आ जावे। मान लो 'अ' किसान के एक टुकडे के पास 'क' 'ख' और ग' के टुकडे हैं। चकबन्दी की योजना के अनुसार 'अ' को 'क' 'ख', 'ग' के टुकडे दे दिये जावेंगे जो उन खेतो के पास है।

सहकारी चकबन्दी समिति की स्थापना तभी हो सकती है कि जब सब लोग नये बँटवारे को मानें। किन्तु कानून बनाकर जो चकबन्दी की जाती है उसमें यदि अधिक लोग नये बँटवारे को मान लेते हैं तो वह चकबन्दी की योजना गाँव भर मे लागू कर दी जाती है।

खेतों के बिखरे होने का मुख्य कारण यह है कि भारत में खेती योग्य भूमि का अकाल पड़ गया है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए उदर पूर्ति का दूसरा कोई स्थान नहीं रहा। गृह-उद्योग धन्धे (Cottage industries) मर चुके हैं और आधुनिक कारखानों मे देश की केवल एक प्रतिशत जनसंख्या काम पा सकी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि खेती पर जरूरत से ज्यादा लोग निर्भर हैं। दूसरे शब्दो मे भूमि पर जनसंख्या का भार बेहद बढ़ गया है। भारत में आज हालत यह है कि फी किसान पीछे केवल अढाई एकड भूमि का औसत पड़ता है।

खेती की सफलता के लिए किसान के पास इतनी जमीन का होना नितान्त आवश्यक है कि जिस पर उसके श्रम और साधनों का पूरा पूरा उपयोग होने की पूर्ण सम्भावना हो। भारत मे एक किसान को कम से कम एक जोड़ी बैल तो रखने ही पड़ते हैं, इनके सिवाय एक औसत कुटुम्ब में पाँच प्राणी होते हैं, ऐसी

हालत में खेती में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिए एक किसान के पास इतनी भूमि होना आवश्यक है कि जिस पर एक जोड़ी बैल और कुटुम्ब के सब व्यक्तियों के श्रम का पूरा उपयोग हो सके। इतनी भूमि को 'आर्थिक जोत'(Economic holding) कहते हैं।

भारतीय किसान के पास इससे बहुत कम जमीन है और वह भी एक जगह (चक) में नहीं, छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी रहती है और दूर-दूर बिखरी होती है।

जनसंख्या के बढ़ने और उद्योग-धन्धों में जनसंख्या को काम न मिलने से प्रत्येक व्यक्ति को भूमि पर निर्भर होना पड़ा, जिससे भूमि का बँटवारा जरूरी हो गया। संयुक्त कुटुम्ब की संस्था के टूटने से भी बँटवारा जरूरी हो गया।

उदाहरण के लिए हम एक सम्पन्न किसान को लेते हैं, जिसके पास दस दस एकड़ के चार खेत हैं और उसके चार लड़के हैं। उसके मरने पर हर एक लड़का प्रत्येक खेत का एक चौथाई भाग लेगा। क्योंकि चारों खेतों की जमीन एक-सी नहीं होती। इस प्रकार किसान के मरने पर १६ टुकड़े हो जावेंगे। और आगे चलकर इनके और भी अधिक टुकड़े हो सकते हैं।

अतएव हमारे सामने भूमि-सम्बन्धी दो समस्यायें हैं। एक तो प्रति किसान भूमि का बहुत कम होना जिस पर लाभदायक खेती नहीं हो सकती, दूसरी खेतों के बिखरे होने की समस्या। पहली समस्या तो तभी हल होगी जब कि देश में उद्योग धन्धों की उन्नति हो और खेती में लगे हुए जरूरत से ज्यादा लोग उनमें काम पा सकें। बिखरे हुए खेतों की समस्या चकबन्दी से हल हो सकती है। लेकिन चकबन्दी हो जाने से उस भूमि का आगे विभाजन नहीं होगा यह कोई ठीक नहीं। यदि एक बार चकबन्दी कर देने पर भूमि का फिर विभाजन हो जावे तो फिर किया धरा सब नष्ट हो जावेगा। इसलिए जरूरत इस बात की है कि एक ऐसा कानून बना दिया जावे कि एक सीमा के बाद भूमि का बँटवारा नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए यदि १० एकड़ भूमि को 'आर्थिक जोत (Economic holding) माना जावे तो यदि किसी के पास केवल १० एकड़ भूमि है तो उसके मरने के बाद उसका बँटवारा न हो सके। लेकिन यह सब तभी हो सकता है जब कि देश में उद्योग-धन्धों की उन्नति हो और जरूरत से ज्यादा खेतों में लगी हुई जनसंख्या उनमें काम पा सके।

सामूहिक या सहकारी खेती

बिखरे हुए खेतों की समस्या को हल करने तथा वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती की सुविधा प्रदान करने का दूसरा व्यावहारिक तरीका सहकारी या सामूहिक खेती है। रूस और पैलेस्टाइन में सहकारी खेती के द्वारा आश्चर्यजनक सफलता मिली है, अतएव भारत में भी लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। सहकारी खेती में सब किसान अपनी भूमि, श्रम और औजारों को मिलाकर एक बड़े फार्म के रूप में खेती करते हैं।

यह हम एक दूसरे स्थान पर लिख आये हैं कि उत्तर प्रदेश, मध्यभारत, पूर्वी पञ्जाब, मध्यप्रदेश में केन्द्रीय सरकार का ट्रैक्टर विभाग बञ्जर भूमि को तोड़कर उसे खेती योग्य बना रहा है। उस भूमि पर सहकारी खेती की जा रही है। उत्तर प्रदेश में गंगा, खादिर तथा नैनीताल की तराई में सहकारी खेती का आरम्भ किया गया है। इसके अतिरिक्त झाँसी जिले के नेनवारा तथा दारौना गाँव में सहकारी खेती का आरम्भ किया गया है। किन्तु सदस्य अभी तक सहकारी खेती के लिए उत्साह नहीं दिखलाते। वे व्यक्तिगत खेती करना चाहते हैं। उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त बम्बई और बिहार में भी सहकारी खेती के प्रयोग हो रहे हैं।

पञ्चवर्षीय योजना

भारत सरकार ने जो प्लैनिंग कमीशन बिठाया था उसका स्पष्ट मत है कि अन्ततः कृषि का नवीन संगठन करने के लिए भारत को "सहकारी ग्राम व्यवस्था" को अपनाना चाहिए।

समस्त गाँव की भूमि एक बड़ा फार्म या खेत होगी। उसकी व्यवस्था सहकारिता के आधार पर होगी। जो लोग उस गाँव की भूमि के स्वामी होंगे उन्हें भूमि के स्वामी होने के कारण प्रत्येक फसल पर "स्वामित्व लाभ" जो भी निश्चित कर दिया जावेगा मिल जाया करेगा। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमि को सरकारी फार्म में मिलाना होगा और सामूहिक खेती करना होगी। खेत पर भूमि के स्वामी तथा खेत मजदूर सभी कार्य करेंगे। प्रत्येक व्यक्ति को उसकी कार्य-क्षमता के अनुसार मजदूरी दी जावेगी। भूमि के मालिकों को मजदूरी के अलावा "स्वामित्व लाभ' और मिलेगा। सरकार स्वामित्व लाभ प्रति बीघा निश्चित कर देगी।

सहकारी ग्राम-व्यवस्था उस गाँव मे लागू कर दी जावेगी जिसमे कम से कम दो तिहाई भूमि के स्वामी जिनके पास कम से कम गाँव की दो तिहाई भूमि हो, इस व्यवस्था के पक्ष मे हो।

पञ्चवर्षीय योजना को बनाने वालों का यह स्पष्ट मत है कि गाँवों में "सहकारी ग्राम व्यवस्था" जल्दी स्थापित नहीं हो सकेगी। जब गाँव वाले इसके लाभ को जान जावेंगे तभी यह स्थापित की जा सकेगी। इसमे समय लगेगा। तब तक खेती इसी प्रकार छोटे छोटे टुकड़ों पर होने देना उचित नहीं है। इसके लिए पञ्चवर्षीय योजना मे कहा गया है कि छोटे छोटे किसानो को 'सहकारी खेती' अर्थात् मिल-जुलकर खेती करने के लिए उत्साहित किया जावे। वे सहकारी कृषि समितियाँ स्थापित कर लें। सरकार इन समितियो को बीज, कृषि औजार, खाद तथा पूँजी देकर सहायता करे। जिन लोगों के पास बड़े बड़े फार्म हैं वे रजिस्टर्ड फार्म बना दिए जावें। सरकार इन्हे भी समितियों की ही भाँति सहायता दे। लेकिन जब गाँव के लोग राजी हो जावें तो गाँव मे "सहकारी ग्राम व्यवस्था" ही कायम की जावे। जब गाँव मे 'सहकारी ग्राम व्यवस्था' कायम हो जावेगी तो गाँव में कौन कौन सी पैदावार कितनी होगी, कौन-से धंधे चलेंगे—इन सब की व्यवस्था सहकारी समिति ही करेगी।

खाद की समस्या (Manure)

फसल उत्पन्न करने से भूमि कमजोर पड़ जाती है। यदि खाद डालकर भूमि की उर्वराशक्ति को बनाये न रक्खा जावे तो कुछ समय के बाद भूमि अनुत्पादक हो जावेगी। खाद का उपयोग केवल भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखने के लिये ही नहीं किया जाता वरन् भूमि से अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। गाँव से जितना भी कूड़ा, मैला, पशुओं का गोबर, पेशाब, घास, पेड़ो के पत्ते, बचा हुआ चारा हो, सब खाद के रूप में परिणत किया जा सकता है। परन्तु गाँवों में जो खाद की सामग्री उपलब्ध है वह अधिकतर या तो फेंक दी जाती है या नष्ट हो जाती है। पशुओं का गोबर तथा पेशाब बहुत बढ़िया खाद में परिणत की जा सकती है। वास्तव में यदि देखा जाय तो गोबर और पेशाब किसान के पास यथेष्ट मात्रा में होती है और यदि थोड़ा सा परिश्रम करके खाद तैयार कर लें तो उससे

खेतों की पैदावार बहुत बढ सकती है। परन्तु यह अत्यन्त मूल्यवान् खाद या तो कडे (उपली) बनाकर किसान अपने घर में ही जला डालता है अथवा बाजार और शहरो में बेचकर पैसा कमाता है। किसानों की स्त्रियॉ गोबर के कडे न बनावे तो जहॉ वे उसके द्वारा कुछ पैसों की बचत करती हैं उसके एवज में उन्हें अधिक फसल के रूप मे कई गुना अधिक लाभ हो सकता है। वर्षा में जब कन्डा बन ही नहीं सकते तब किसान गोबर का उपयोग खाद बनाने में करता है और शेष आठ महीने वह कन्डे बनाकर जलाता है। यदि खेती की पैदावार को बढाना है तो किसान को पशुओं का गोबर खेतों में डालना होगा। केवल गोबर ही नष्ट होता हो यही बात नहीं है। कूडा, चारा, पेड़ की पत्तियॉ तथा अन्य वस्तुएँ जिनकी खाद बनाई जा सकती हैं वे भी गॉवों में नष्ट हो जाती हैं और उनकी खाद नहीं बनाई जाती। हवा पानी तथा पशु इस मूल्यवान् खाद को नष्ट कर देते हैं। किसान जो भी खाद इस समय तैयार करता है वह ढेर लगा कर करता है। हवा कुछ खाद को उडा ले जाती है, वर्षा के दिनों में बहुत-सा कूड़ा इत्यादि बह जाता है और पशु तथा मनुष्यों के पैरों से खाद इधर-उधर बिखरती है। साथ ही ढेरलगाकर अच्छी खाद तैयार नहीं होती है। खाद को तैयार करने का सबसे अच्छा उपाय गडहों में खाद तैयार करना है। इससे तीन बडे लाभ होंगे। गॉव का कूड़ा, गोबर, पेशाब, चारा या घास-पत्ती कुछ भी खराब नहीं जावेगा। एक बार वह गड्हे में डाल दिए जाने पर सुरक्षित रहेगा। दूसरे, गॉव मे गन्दगी नहीं रहेगी। तीसरे, खाद अच्छी तैयार होगी।

खाद की समस्या को हल करने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि किसान को गोबर जहॉ तक हो सके न जलाने के लिए कहा जावे और खाद के गडहों (Manure pits) मे खाद तैयार करने के लिए कहा जावे। लेकिन गॉव में ईंधन की बहुत कमी है। गॉव वालो से यह आशा करना कि वे ईंधन को मोल लेकर जलावेंगे भूल होगी। फिर जब गॉव में ईंधन के लिए लकडी की कमी है तो यदि कन्डे (उपले) जलाना बन्द कर दिया जावेगा तो फिर ईंधन का प्रबन्ध कैसे होगा? अतएव जब तक गॉवों मे अधिक लकड़ी उत्पन्न नहीं कर दी जाती तब तक गोबर का जलाना बन्द नहीं होगा। जरूरत इस बात की है कि हर गॉव में ऊसर तथा बजर भूमि पर जङ्गल का मुहकमा ऐसे

वृक्ष उत्पन्न करे जो जल्दी बड़े होते हों और गाँव की पंचायत उस छोटे से जङ्गल के टुकड़े की देखभाल करे। उस जङ्गल के टुकड़े में जो घास और लकड़ी पैदा होगी, हर गाँव वाले को उसमें से अपने काम के लिए लकड़ी काटने और घास छीलने का अधिकार हो। उसमें कोई अपने पशु न चरा सके। इससे गाँव में ईंधन-चारे की समस्या हल हो सकती है और तभी गोबर खाद के लिए बचाया जा सकता है।

मल की खाद

स्वास्थ्य के परिच्छेद में कहा जा चुका है कि यदि गाँव में एक और सार्वजनिक शौच-कूप (Pit latrines) बना दिया जावे तो गाँव गन्दगी से भी बच सकता है। साथ ही कुछ खाद भी मिल सकती है। कुछ लोग मल की खाद को छूने से हिचकते हैं और उसे काम में नहीं लाते किन्तु प्रचार करने से यह कठिनाई दूर हो सकती है। बड़े-बड़े नगरों में वैज्ञानिक क्रियाओं द्वारा मल को दुर्गन्धरहित और सूखा बनाया जा सकता है क्योंकि वहाँ बहुत राशि में मल होता है।

हरी खाद (Green manure)

किसान यदि चाहे तो जहाँ वर्षा अधिक होती हो अथवा जहाँ पानी आसानी से मिल सकता हो वहाँ हरी खाद का भी उपयोग कर सकता है। ढेंचा, सन, मूँगफली, गवार तथा कुछ दूसरी फसलें ऐसी हैं जिन्हें पैदा करके जोत देने से खेत उर्वर हो जाता है किन्तु यह खाद तभी उपयोगी हो सकती है जब कि भूमि में खूब नमी हो बिना पानी के खाद देना हानिकारक है।

अन्य प्रकार की खाद

पशुओं का मूत्र भी बहुमूल्य खाद है, किन्तु भारतीय किसान उसका तनिक भी उपयोग नहीं करता है। उसको चाहिये कि वह अपने पशुओं को खेत पर ही बाँधे, यदि हो सके तो वह पशुओं के बाँधने के स्थान पर मिट्टी बिछा दिया करे और उस मिट्टी को खेत में डाले।

यही नहीं घास-फूस, सूखी पत्तियाँ इत्यादि सभी को खाद में परिणत किया जा सकता है।

खली, हड्डी और मछली का भी खाद कुछ विशेष फसलों के लिए काम में

लाया जाता है परन्तु यह खाद इतना मँहगा पड़ता है कि साधारण किसान की सामर्थ्य के बाहर है अस्तु भारत में इस प्रकार की खाद का अधिक उपयोग नहीं होता।

सिंदरी—(बिहार) का कारखाना

भारत में भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढाने के लिए खाद की बहुत अधिक आवश्यकता है। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने विदेशी विशेषज्ञों के परामर्श से बिहार में सिंदरी नामक स्थान मे कृत्रिम खाद बनाने का एक बहुत बड़ा कारखाना स्थापित किया है। इसको बनाने में २८ करोड़ रुपये का व्यय हुआ है। अब यह कारखाना वर्ष मे ३० लाख टन खाद तैयार करने लगा है जो सस्ते दामों पर खेती के लिए दी जा रही है।

सिंदरी के कारखाने की सफलता से उत्साहित होकर भारत सरकार ने यह निश्चय किया है कि तीन ऐसे ही बड़े कृत्रिम खाद उत्पन्न करने के कारखाने किए जावे। इनमें से एक कारखाना भाखरा नानगल योजना के समीप स्थापित किया जावेगा। इन कारखानों के बन कर तैयार हो जाने पर भारत में यथेष्ट कृत्रिम खाद (सलफेट अमोनिया) उत्पन्न होगी और भूमि की उर्वरा शक्ति बढेगी।

भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने के दूसरे साधन

फसलों का हेर-फेर (Rotation of crops)

फसल उत्पन्न करने से भूमि के कुछ तत्व कम हो जाते है तो फसल कुछ अन्य तत्वों को भूमि मे बढा भी देती है। अस्तु, अनुभवी किसान फसलों को इस प्रकार उत्पन्न करता है कि जिससे जो तत्व एक फसल के कारण कम हो गये है वह दूसरी फसल पूरी कर दे। इसको फसलो का हेर-फेर कहते हैं। भारतीय किसान फसलों के हेर-फेर के सिद्धान्त को प्राचीनकाल से जानता है। लेकिन केवल फसलों के हेर-फेर से ही भूमि की उपजाऊ शक्ति को बनाये नहीं रक्खा जा सकता। हाँ, भूमि की उपजाऊ शक्ति को तेजी से घटने से रोका जा सकता है। यही कारण है कि किसान एक खेत पर लगातार एक सी फसल कई वर्ष तक नहीं पैदा करता। यह बदलता रहता है।

भूमि को आराम देने से भी भूमि की उपजाऊ शक्ति बढती है, क्योंकि

भूमि वायु से नाइट्रोजन इत्यादि तत्वों को ले लेती है। लेकिन इस देश में घनी आबादी के लिए भोजन इत्यादि उत्पन्न करने के कारण भूमि का यथेष्ट आराम नहीं दिया जा सकता।

फिर भी जब तक हम किसान को अपने पशुओं के गोबर, घर के कूड़े, बचा हुआ घास फूस तथा पशुओं के मूत्र से बढ़िया खाद बनाने के लिए उत्साहित नहीं करते तब तक खाद की समस्या हल नहीं हो सकती।

पशुधन (Cattle)

किसान की सबसे महत्वपूर्ण पूंजी उसके गाय और बैल हैं। जब तक किसान के बैल कमजोर हैं और गाय यथेष्ट दूध नहीं देती तब तक खेती-बारी की दशा सुधर नहीं सकती। गाय और बैलों की उन्नति कैसे हो सकती है, यह हम पिछले अध्याय में ही लिख चुके हैं।

खेती के यन्त्र (Agricultural machinery)

भारत के छोटे खेतों में ट्रैक्टर* तथा अन्य बड़े-बड़े यन्त्र काम नहीं दे सकते, अतएव भारत में इनका अधिक प्रचार नहीं हो सकता। कारण यह है कि छोटे छोटे खेतों पर बड़े बड़े यन्त्र न तो लाभदायक ही सिद्ध होंगे और न किसान उन्हें रख ही सकता है। जो सैकड़ों वर्षों से भारतीय किसान अपना देशी हल तथा अन्य यन्त्र काम में ला रहा है, उसका मुख्य कारण यह है कि देशी औजार उसकी स्थिति को देखते हुए अधिक उपयोगी हैं। देशी हल तथा औजारों में निम्नलिखित गुण हैं। १—वे बहुत सस्ते हैं, निर्धन किसान हल तथा अन्य औजारों पर अधिक व्यय नहीं कर सकता। २—वे बहुत हलके होते हैं। किसान देशी हल को अपने कंधे पर उठाकर एक खेत से दूसरे खेत पर ले जा सकता है। ३—देशी हल तथा औजार बहुत सादे होते हैं। किसान को उनके उपयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती। ४—गाँव के बढ़ई और लोहार देशी हल और औजारों की मरम्मत भली-भाँति कर लेते हैं। परन्तु आधुनिक यन्त्रों की मरम्मत गाँव के बढ़ई और लोहार न कर सकेंगे। ५—देशी हल हलके

---

* ट्रैक्टर—भूमि को जोतने के लिए भाप या तेल से चलने वाली बड़ी मशीन।

होने के कारण किसान के कमजोर बैलों से खिंच जाते हैं परन्तु भारी हल या कोल्हू इन निर्बल बैलो से खिंच ही नहीं सकते।

यही कारण है कि आरंभ में जब कृषि-विभाग ने विदेशी हलों और यन्त्रों का भारत में प्रचार करना चाहा तो वे सफल नहीं हुए। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि देशी हलों, औजारों में तनिक भी सुधार की आवश्यकता नहीं है। सुधार की आवश्यकता है, किन्तु ऊपर लिखी हुई बातो को ध्यान में रखकर ही सुधार करने से सफलता प्राप्त हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि कृषि-विभाग का इंजीनियरिंग विभाग ऐसे हलो और औजारों का निर्माण करे जो सस्ते हों, हलके हों और सादे हों। इस प्रकार के हलों और औजारों का आविष्कार करके जो ऊपर लिखी शर्तों को पूरा करे और भूमि को देखते हुए उपयोगी सिद्ध हों उन्हें अधिक संख्या मे बनाने के लिए कारखाने खोले जावें, जिससे कि वे सस्ते दामों पर बेचे जा सकें। कृषि विभाग ने अपनी पुरानी नीति को छोड़ कर अब यह नीति बनाई है, किन्तु इस दिशा में अधिक काम नहीं हुआ है। मैस्टन, हिन्दुस्तान, हिसार, राजा इत्यादि कुछ हल हैं जिनका कृषि-विभाग प्रचार कर रहे हैं। परन्तु अभी हलो में भी सुधार की आवश्यकता है। कोल्हू, गुड़ तथा शक्कर बनाने के यन्त्र, चारा काटने के औजार तथा अन्य प्रकार के औजार भी तैयार किए गये हैं, जिनका अधिकाधिक प्रचार करने की आवश्यकता है। हाँ, जब सहकारी फार्म (Cooperative farm) स्थापित हों, तब बड़े यन्त्र काम दे सकते हैं।

सरकार का केन्द्रीय ट्रैक्टर-विभाग

भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से ऋण लेकर बहुत बड़ी संख्या में ट्रैक्टर तथा अन्य कृषि यन्त्र मँगवाये हैं। यह विभाग प्रत्येक प्रादेशिक सरकार को यह यन्त्र वहाँ बंजर भूमि खेती योग्य बनाने के लिए देता है। उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और मध्यभारत में इन ट्रैक्टरों की सहायता से बंजर भूमि को खेती योग्य बनाया जा रहा है। इसके अतिरिक्त भारत में जमींदारों ने ट्रैक्टरो का खेती मे अधिकाधिक उपयोग करना आरम्भ कर दिया है।

बीज (Seed)

यह तो सभी जानते हैं कि किसान खेत में जैसा बीज डालेगा, वैसी फसल

तैयार होगी। खराब बीज डालकर कोई अच्छी फसल उत्पन्न नहीं कर सकता। इस समय अधिकतर किसान, महाजन अथवा गाँव के जमींदार से सवाए ड्योढे-पर बीज लेकर खेत में बोते हैं। महाजन खत्तियों में भरा हुआ रद्दी और घुना बीज किसान को उधार देता है। खराब बीज के कारण किसान की फसल भी अच्छी नहीं होती। बीज की समस्या को हल करने के लिये दो बातें मुख्य हैं। प्रथम अच्छा बीज उत्पन्न करना, दूसरे उस बीज को किसानों को देना। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के कृषि-विभागों ने मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण फसलों के बीज को लगातार अनुसन्धान करने के उपरान्त आशातीत उन्नति की है। प्रदेशों के कृषि विभागों ने कपास, गेहूं, गन्ना, चावल तथा जूट के बीजों में आश्चर्यजनक उन्नति की है किन्तु अभी मोटे अनाज (मक्का, ज्वार, बाजरा, जौ तथा भिन्न-भिन्न दालों) तथा सन इत्यादि के उत्तम बीज तैयार नहीं किये गये हैं। उत्तम बीज तैयार करने का कार्य विशेषज्ञों का है, और आशा है कि धीरे धीरे कृषि-विभाग ऊपर लिखी हुई फसलों के लिये उत्तम बीज उत्पन्न करेगा। परन्तु बीज की सबसे कठिन समस्या बीज का किसानो को देना है। यद्यपि कृषि विभाग सीड-डिपो (बीज भंडार) खोल कर गाँव वालों को उत्तम बीज देने का कार्य कर रहा है। सहकारी समितियाँ तथा ग्राम-सुधार के कार्यकर्ता भी इस कार्य में कृषि-विभाग की सहायता करते हैं। सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत गाँव में उत्तम बीजों की पूर्ति करने का विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। वर्ष दो वर्ष में इस काम को पूरा करने का ध्येय बना है। परन्तु यह निश्चित है कि कृषि-विभाग प्रतिवर्ष असंख्य किसानों को उत्तम बीज यथेष्ट मात्रा में नहीं दे सकता। अत-एव प्रत्येक किसान को एक बार उत्तम बीज कृषि विभाग से लेकर स्वयं प्रतिवर्ष अपना बीज तैयार करना चाहिये। जिस खेत पर बीज तैयार करना हो उसे अच्छी तरह से जोतना तथा उस पर खाद डालना चाहिये। प्रत्येक गाँव में किसान अपने लिये बीज तैयार कर ले तो अच्छे बीज की समस्या हल हो सकती है। परन्तु कुछ समय के उपरान्त उत्तम बीज भी खराब होने लगता है, अत-एव चतुर किसानों को सतर्कतापूर्वक यह देखते रहना चाहिये कि उनका बीज खराब तो नहीं होता जा रहा है। यदि उन्हें बीज के खराब होने के चिन्ह दृष्टिगोचर हों तो कृषि-विभाग से दूसरा उत्तम बीज लेकर फिर कुछ वर्षों तक

उसे अपने खेती पर पैदा करके प्रतिवर्ष बोते रहना चाहिये। किसान को अपने बीज को शुद्ध बनाने का सदा प्रयत्न करना चाहिये।

कृषि-विभाग द्वारा दिया हुआ बीज कुछ अधिक कीमती होता है। किसान को इसकी चिन्ता न करनी चाहिये। बीज का थोड़ा अधिक मूल्य देकर भी उत्तम बीज खरीदना चाहिये। फिर वह स्वय प्रति वर्ष बीज बचा कर रख सकता है, या किसी ऐसे पडोसी से वह उत्तम बीज ले सकता है कि जिसने उसको बोया हो। जो कुछ भी हो, किसान को बीज अच्छा ही डालना चाहिये।

सिंचाई (Irrigation)

भारत के अधिकाश प्रदेशों में खेती के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि वर्षा यथेष्ट नहीं होती और यदि वर्षा होती है, तो वह वर्ष के केवल तीन या चार महीनों में, अतएव रबी की फसल बिना सिंचाई के हो ही नहीं सकती। आसाम, पूर्वी बङ्गाल तथा पश्चिमीघाट के समुद्रतट के मैदान को छोड़ कर किसी भी प्रदेश में खेती सिंचाई के बिना नहीं हो सकती। अधिकतर प्रदेशों मे तो पानी का अकाल रहता है, परन्तु फिर भी किसान वर्षा से जितना लाभ उठाया जाना चाहिये, नहीं उठाता।

वर्षा का जल (Rain water)

गाँवों मे भूमि बहुत ऊबड़-खाबड होती है, कहीं-कहीं बडे गहरे नाले बन जाते हैं और कहीं भूमि अधिक ऊँची और अधिक नीची होती है। इसका फल यह होता है कि वर्षा का जल भूमि पर गिरते ही बड़ी तेजी से बहता है। उन प्राकृतिक नालो तथा निचली भूमि के कारण उसकी तेजी और भी बढ जाती है। जहाँ ऊबड़-खाबड़ जमीन अधिक होती है वहाँ वर्षा के दिनों मे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कोई बड़ी नदी तेजी से बहती हो। उस क्षेत्र का सारा जल शीघ्रतापूर्वक बह जाता है और साथ ही वह भूमि के ऊपर की उपजाऊ मिट्टी बहा ले जाता है। पानी उस क्षेत्र पर अधिक देर तक नहीं ठहरता, अतएव भूमि वर्षा के जल को सोखने मे असमर्थ रहता है। भूमि के अन्दर यथेष्ट जल न जाने से भूगर्भ मे बहने वाला जल स्रोत सूखता है, और अधिक गहराई पर चला जाता है जिसके कारण कुएँ बेकार हो जाते हैं। प्रदेश के ऊबड़-खाबड़ होने से केवल इतनी ही हानि नहीं होती, इससे भी भयङ्कर हानि यह होती है कि

शीघ्रतापूर्वक बहने के कारण जल कटाव करता है, अर्थात् भूमि को काटता है (Erosion of soil)। धीरे-धीरे और अधिक नाले बन जाते हैं और जल का उपद्रव और भी अधिक हो जाता है। कुछ समय के उपरान्त वह सारा प्रदेश ऊबड़-खाबड़ भूमि का रूप धारण कर लेता है और खेती के अयोग्य बन जाता है। जल के कटाव से भूमि की रक्षा करने का एकमात्र साधन है कि उस ऊबड़-खाबड़ प्रदेश में वृक्ष लगाये जावे और इस प्रकार जल को भूमि नष्ट करने से रोका जावे। इसके अतिरिक्त यदि गाँव की भूमि को समतल तथा चौरस करा दिया जावे और चारों ओर ऊँची मेड़ बना दी जावें तो वर्षा का जल बहुत देर तक पृथ्वी पर रहने के कारण भूमि उसे अधिक सोख ले। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब कि सारा गाँव संगठन के रूप में इस कार्य को करे। इससे तीन बड़े लाभ होंगे, एक तो भूमि यथेष्ट जल पी लेगी जिससे सिंचाई की कम आवश्यकता होगी, दूसरे उस क्षेत्र के कुओं में सिंचाई के लिए यथेष्ट जल रहेगा, तीसरे भूमि का नाश नहीं होगा।

कुओं के द्वारा सिंचाई (Well Irrigation)

भारत में कुएँ सिंचाई के मुख्य आधार हैं। यद्यपि नहर के द्वारा भी यथेष्ट सिंचाई होती है परन्तु कुओं का महत्व इस कारण है कि उनके द्वारा किसान सिंचाई के लिये स्वतंत्र हो जाता है। वह जब चाहे सिंचाई कर सकता है। कुओं का पानी नहर के पानी से फसल के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। अतएव जब किसी भी प्रदेश में मीठा पानी साधारण दूरी पर मिलता है वहाँ कुओं के द्वारा ही सिंचाई होनी चाहिये। जहाँ नहरें हैं वहाँ भी कुएँ खोदे जाने चाहिये जिससे किसान हर समय पानी पा सके।

कुएँ से पानी निकालने के लिये भारत में रहट तथा चरसा दो साधनों का उपयोग होता है। रहट (Persian Wheel) से एक लाभ यह है कि एक ही आदमी रहट चला सकता है यहाँ तक कि एक छोटा लड़का भी रहट को चला सकता है। रहट में लड़के को केवल बैलों को हाँकने का ही काम होता है। परन्तु चरसा में दो आदमियों की आवश्यकता होती है। एक बैल को हाँकता है। दूसरा चरसा (पुर) को लेता है। राजस्थान तथा मध्यभारत में चरसा (पुर) के निचले भाग में चमड़े का एक मोटा नल और जुड़ा रहता है,

उस नल का मुँह एक पतली डोरी से बँधा रहता है। डोरी का सिरा बैल हाँकने वाले के हाथ में रहता है। जब पुर कुएँ के ऊपर आ जाता है तो बैल हाँकने वाला उस डोरी को ढीला कर लेता है और पुर का पानी उस चमड़े के नल द्वारा गिर पड़ता है। इस प्रकार पुर को लेने वाले मनुष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर जो कुएँ बहुत गहरे नहीं हैं उन पर रँहट लगाना ही अधिक सुविधाजनक होता है। जहाँ वर्षा का जल इकठा हो जाता है वहाँ ढेकली से भी सिंचाई की जाती है।

उत्तर प्रदेश मे ट्यूब वेल या नल कूप

उत्तर प्रदेशीय सरकार ने लगभग दो करोड़ रुपये व्यय करके दो हजार ट्यूब-वेल खुदवाये हैं और भी खोदे जा रहे हैं। बदायूँ, मुजफ्फरनगर, एटा, बिजनौर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़ तथा मुरादाबाद जिलों में बहुत बड़ी सख्या मे ट्यूब-वेल खोदे गए हैं और गगा जी की नहर के जल से तैयार की हुई बिजली के द्वारा यह ट्यूब-वेल चलते हे। ट्यूब-वेल लगभग एक हजार एकड़ भूमि को सींच सकता है। ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने से दो लाभ हैं। प्रथम तो किसान को जब वह चाहे तब सिंचाई के लिये पानी मिल सकता है। नहर की भाँति वह इस आशा में बैठा नहीं रहता कि जब नहर में जल आवेगा तब सिंचाई हो सकेगी। नहर का पानी अनिाश्चत है और ट्यूब-वेल का पानी निश्चित है। ट्यूब-वेल के द्वारा सिंचाई करने पर जितना भी किसान लेता है सबका उपयोग होता जाता है, इस कारण किसान पानी को किफायत से खर्च करता है। ट्यूब-वेल से एक बहुत बड़ा लाभ यह होगा कि गाँवों मे जहाँ पीने के लिये शुद्ध जल की कमी है वहा शुद्ध जल मिल सकेगा। यदि प्रत्येक ट्यूब-वेल पर रेडियो लगा दिया जाय तो गाँवो के नीरस जीवन में मनोरजन तथा ज्ञानवर्धन का एक अच्छा साधन उपलब्ध हो सकता है। ट्यूब-वेल के द्वारा एक लाभ और भी है—अर्थात् जिन जिलों मे होकर नहरें गई हैं उनमें नहरो के दोनों ओर ट्यूब-वेल बनाकर नहरों मे डाल दिया जाता है जिसमे नहरों में प्रदेश के पश्चिमी जिलों के लिए यथेष्ट पानी हो जाता है। पश्चिमी जिलो मे वर्षा कम होती है और साधारण नहरों मे भी वहाँ के लिए यथेष्ट जल नहीं रहता। बात यह है कि पूर्वी जिलो में ही नहर का

जल बहुत कुछ समाप्त हो जाता है। जब पश्चिमी जिलों में नहरें पहुँचती हैं तो उनमें यथेष्ट जल नहीं रहता। अब और जिलों में ट्यूब-वेल खोदे जायेंगे। प्रादेशिक सरकार अब इस योजना को पूर्वी जिलों में चला रही है।

भारत सरकार ने १९५३ में लगभग ६६५ नल कूप बनवाये उनमें से ४५० से अधिक तो केवल उत्तर प्रदेश में ही बनाये गए। शेष बिहार, पूर्वी पञ्जाब, पेप्सू आदि में थे।

१९५६ तक भारत सरकार दो हजार नल कूप या ट्यूब वेल और बनवा रही है। यह उत्तर प्रदेश, बिहार, पूर्वी पञ्जाब, पेप्सू, में तैयार किए जा रहे हैं। इन नल कूपों से बिजली के द्वारा सिंचाई होगी।

पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत इन नल कूपों को बनाया जा रहा है। इनके बन जाने से गाँवों में सिंचाई की बहुत अधिक सुविधा हो जायेगी।

नहर के द्वारा सिंचाई

नहरों के द्वारा सिंचाई उत्तर प्रदेश में बहुत होती है। पूर्वी पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश बहुत कुछ नहरों पर ही अवलम्बित हैं। कुएँ के पानी को किसान बहुत सावधानी तथा सतर्कता से खर्च करते हैं, किन्तु नहर के पानी के प्रति वे उदासीन रहते हैं। इसका मुख्य कारण यह है, कि प्रत्येक फसल के लिए प्रति बीघा आबपाशी की दर निश्चित कर दी गई है। उदाहरण के लिए यदि एक किसान ईख की सिंचाई करता है और प्रति बीघा कम पानी खर्च करता है तो उसकी आबपाशी प्रति बीघा उतनी ही देनी होगी जितनी कि एक दूसरा किसान देता है यद्यपि वह पहले किसान से कहीं अधिक पानी खर्च करता है। अतएव प्रत्येक किसान को यह लालच होती है कि वह अधिक से अधिक पानी खर्च करे। इससे भूमि की हानि होती है। एक कारण यह भी है कि किसान को समय पर नहर से पानी नहीं मिलता। उत्तर प्रदेश में किसान की इस शिकायत को दूर करने के लिए जिला सिंचाई समिति बनेगी। उत्तर प्रदेश में शारदा की नहरों का विस्तार किया गया है। बाँदा जिले में कई बाँध बनाये गये हैं, और रिहांड बाँध बनवाया जा रहा। इनके अतिरिक्त मिर्जापुर जिले में तथा बिजनौर जिले में भी बड़े तालाब बनाये गए हैं जिनकी नहरों से सिंचाई होगी।

तालाव (Tanks)

पहाड़ी प्रदेशों में अधिकतर बाँध बनवाकर वर्षा के जल को रोक लिया जाता है और उससे सिचाई की जाती है। राजपूताने के दक्षिणी भाग, मालवा, मध्य भारत तथा दक्षिण भारत में अधिकतर तालावों से ही सिंचाई होती है, क्योंकि नहरें वहाँ निकाली ही नहीं जा सकतीं। कुओं से सिंचाई अवश्य होती है परन्तु कुओं को खोदना तथा उनको बनाना इन पहाड़ी प्रदेशों में असाध्य है। राजस्थान तथा मध्य भारत में जहाँ राज्यों ने बड़े-बड़े बाँध और तालाव सिंचाई के लिए बनवाये हैं वहाँ गाँव वालों ने सामूहिक रूप से भी छोटे-छोटे बाँध बना कर सिंचाई के साधन उपलब्ध कर लिये हैं। इन तालावों की मरम्मत भी गाँव वाले मिल कर स्वयं करते हैं। साधारणतः यह नियम होता है कि गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को एक घन फुट मिट्टी बाँध पर डालनी पड़ती है। दक्षिण में ब्रिटिश शासन से पूर्व इस प्रकार के हजार छोटे-छोटे बाँध (पट बँधा) गाँव वाले बना लेते थे किन्तु ब्रिटिश शासन काल में वे तालाव नष्ट हो गये। प्रयत्न करना चाहिये कि किसान इस प्रकार सामूहिक रूप से वर्षा के जल का जितना भी उपयोग कर सकें उतना करें।

यदि कहीं भूमि बहुत ऊँची है और नदी, तालाब अथवा नहर बहुत नीचे पर है, वहाँ बिजली, आयल एञ्जिन अथवा रहट जो भी सुविधाजनक तथा प्राप्त हों, उसका उपयोग पानी को ऊपर उठाने में किया जा सकता है। बिजली का उपयोग तो उसी क्षेत्र में किया जा सकता है जहाँ वह सस्ते दामों पर उत्पन्न की जाती हो। यह कार्य केवल सरकार कर सकती है। आयल एञ्जिन जमींदार तथा समृद्धिशाली किसान लगा सकते हैं। रहट का उपयोग प्रत्येक किसान कर सकता है।

यह अति आवश्यक है कि देश में खाद्य पदार्थों की उपज बढ़ाई जाय। हमारे यहाँ खेती की एक मुख्य कठिनाई सिंचाई भी है। नहरों और बाँधों की व्यवस्था करने में कई वर्ष लगेंगे। अतः इस बीच में तालावों की ओर ध्यान देना अति आवश्यक है। सन् १६४८ से उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों की सरकारों ने तालाव खुदाई आन्दोलन आरम्भ किया है। पिछली कई शताब्दियों से हमारे तालावों की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अतः तालाव मिट्टी

से भर गये हैं टूटी-फूटी अवस्था में हैं। प्रादेशिक सरकार इन तालाबों की पुनः खुदाई और मरम्मत तथा नए तालाबों की खुदाई के लिए प्रयत्नशील है। यह देहातियों के सहयोग से इस कार्य को आगे बढ़ा रही है।

देश में उद्योग-धन्धों तथा खेती की उन्नति करने के लिए सरकार ने बड़ी-बड़ी नदी योजनाओं को हाथ में लिया है जिनमे प्रचुर मात्रा में सिंचाई होगी तथा जलविद्युत् उत्पन्न होगी। इनमें दामोदर घाटी योजना (बिहार में), हीराकुन्ड योजना (उड़ीसा में), कोसी योजना (बिहार और नेपाल में), नायर बाँध और रिहाड बाँध (उत्तर प्रदेश में), भाखरा तथा नांनगल बाँध (पूर्वी पंजाब में) तथा तुंगभद्रा योजना (मद्रास और हैदराबाद में) मुख्य हैं। इनका विस्तृत विवरण भारत का आर्थिक भूगोल में देखिये। इनके बन कर तैयार हो जाने पर लाखों एकड़ भूमि सींची जा सकेगी और खेती का विकास होगा। सिंचाई के अतिरिक्त इनके द्वारा जलविद्युत् गाँव-गाँव पहुँचा दी जावेगी। यह नदी योजनायें पञ्चवर्षीय योजना के अन्तर्गत बनाई जा रही हैं।

पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सिंचाई की सुविधाओं को बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। केवल सिंचाई की सुविधायें प्रदान करने में ही ५ अरब ६१ करोड़ रुपए से अधिक व्यय किया जा रहा है। बड़ी सिंचाई योजनाओं अर्थात् नहरों और छोटी सिंचाई योजनाओं अर्थात् तालाबों, कुओं, ट्यूब-वेल, पम्पिंग स्टेशनों के बन कर तैयार हो जाने पर लगभग १ करोड़ ६२ लाख एकड़ नई भूमि की सिंचाई होगी। जिससे खेती की उन्नति हो सकेगी।

साख (Credit)

प्रत्येक धन्धे में साख की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन कार्य में लगे हुए प्रत्येक व्यक्तियों को पूँजी (Capital) की आवश्यकता होती है। किसान को खेती के लिए ऋण लेना पड़ता है। परन्तु भारत का किसान इतना गरीब है कि उसे अनुत्पादक (Unproductive) तथा उत्पादक (Productive) सभी कार्यों के के लिए महाजन से ऋण लेना पड़ता है। महाजन किसान की गरीबी का अनुचित लाभ उठा कर उससे बहुत अधिक सूद लेता है। ऋण इसलिए लिया जाता है कि उससे खेती की जावे और खेती के लाभ से सूद सहित ऋण चुका दिया जावे। परन्तु सूद इतना अधिक हो जितना कि खेती से लाभ हो ही न सके तब

तो ऐसा ऋण किसान को सदा के लिए ऋणी बना देता है। यही अवस्था भारतीय किसान की है। 'ग्रामीण ऋण तथा उसके कारण' शीर्षक अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा जायगा।

अतएव किसान को साख का प्रबन्ध करने के लिए अपने अपने गाँव में 'कृषि सहकारी साख समिति' (Co operative Credit Society) की स्थापना करना चाहिए। "कृषि-सहकारी साख-समिति" के विषय में एक पृथक् अध्याय में विस्तार पूर्वक लिखा जायगा।

श्रम और सगठन (Labour and Organisation)

श्रम और सगठन के अन्तर्गत किसानों का स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, फसलों के शत्रु तथा पैदावार को बेचने की समस्याओं का वर्णन होगा। ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य तथा उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में हम पूर्व ही लिख चुके हैं। जब तक किसानों का स्वास्थ्य अच्छा न होगा और उन्हें शिक्षित नहीं बनाया जावेगा तब तक वे अच्छे खेतिहर नहीं बन सकेंगे।

फसलों के शत्रु

केवल अच्छे बीज, खाद और हल बैल से ही खेती बारी की उन्नति नहीं हो जावेगी। यदि एक ओर फसलों को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जावे और दूसरी ओर फसलों के शत्रु उसे नष्ट कर दें तो सारा प्रयत्न निष्फल हो जावेगा। अतएव फसलों को उनके शत्रुओं से बचाने की बहुत आवश्यकता है। फसलों के दो प्रकार के शत्रु होते हैं। एक तो फसलों के कीडे जो फसल को नष्ट कर देते हैं दूसरे वे जगली तथा पालतू पशु और पक्षी जो फसलों को खा जाते हैं।

फसलों के कीडे बहुत भयकर होते है। प्रत्येक फसल का कोई कीड़ा होता है। जिस क्षेत्र में भी कीड़ा लग जाता है उस क्षेत्र की फसल को वह नष्ट कर डालता है। फिर कोई खेत उससे बच नहीं सकता। कभी कभी तो फसल के कीडों का ऐसा भयकर प्रकोप हो जाता है कि साधारण प्रयत्न से वह जाता ही नहीं। तब कृषि विभाग को ऐसे बीज उत्पन्न करना पड़ता है जिसमें वह कीड़ा नहीं लग सकता। भारत में ही केवल यह समस्या हो ऐसी बात नहीं है— जर्मनी और अमेरिका जैसे देश मे भी फसल के कीड़ों की समस्या उठ खड़ी होती है।

फसल के कीडे विदेशों से भी आ सकते हैं। इस कारण प्रत्येक देश ने ऐसे कानून बना दिये हैं कि जिससे ऐसी कोई खेती की पैदावार जिसमें बीमारी अथवा कीडे लगे हो देश मे आने से रोकी जा सकती है। सन् १६१४ में भारत में भी एक कानून बना दिया गया जिसके अनुसार यदि बन्दरगाह के अधिकारी किसी खेती की पैदावार को कीड़ों से युक्त पावें तो उसको देश के अन्दर न आने देवें। इस कानून के द्वारा विदेशो से कीड़ो का भारत में आने का भय तो नहीं रहा, किन्तु देश के अन्दर फसलो के कीडे तथा बीमारियों की कमी नहीं है।

फसल के कीडों को नष्ट करने अथवा उन्हें उत्पन्न ही न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि-विभाग तथा किसानों का पूरा सहयोग हो। यही नहीं, आवश्यकता पडने पर सारे गाँव को सगठित रूप में कीडों को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह ध्यान मे रखने की बात है कि यदि इस वर्ष कुछ खेतों में कीड़ा है तो अगले वर्ष वह अन्य खेतों पर भी आक्रमण करेगा। टिड्डी और फसल के कीड़ों को कृषि-विभाग के बतलाये हुए उपायों के अनुसार सामूहिक रूप से ही नष्ट कि । जा सकता है। इस कार्य में सम्पूर्ण गाँव के सहयोग की आवश्यकता होती है।

साधारणत. फसल में बीमारी अथवा कीडे लगने के वे ही कारण हैं जो कि मनुष्य के शरीर में रोग की उत्पत्ति के कारण हैं। जो खेत ठीक तरह से जोते नहीं जाते, जिनमें कम खाद डाली जाती है अथवा कम सड़ी खाद डाल दी जाती है, जिस खेत में निराई नहीं होती, आवश्यकता से अधिक अथवा बहुत कम पानी दिया जाता है, उस खेत मे फसल निर्बल होती है और उस पर बीमारी तथा कीडों का आक्रमण शीघ्र होता है। किसान को निरन्तर फसल पर अपनी दृष्टि रखनी चाहिये और जैसे ही उसे ज्ञात होता हो कि फसल में बीमारी या कीडा लग रहा है उसे तुरन्त कृषि-विभाग से सलाह लेकर उसका इलाज करना चाहिये।

फसल में कीड़ों के लगने का एक मुख्य कारण यह है कि किसान अथवा वे महाजन और जमींदार जो कि खत्तियों और कोठारों मे बीज के लिये अनाज भरते हैं, बीज की सफाई का ध्यान नहीं रखते और न उन खत्तियों या

कोठारो को ही साफ करते हैं। इसका फल यह होता है कि बीज खराब हो जाता है, उसमे कीड़ा लग जाता है और जब फसल तैयार होती है तो कीड़ा करोड़ों की सख्या मे बढ कर फसल को नष्ट करता है। बीज तथा बीज भडार को कीड़ों से मुक्त करने का यह एक सरल तथा सफल उपाय है कि जहाँ बीज रक्खा जाता है उसे हर बार जब उसमे बीज भरा जावे साफ कर लिया जावे और बीज को भी साफ कर लिया जावे। इसके उपरान्त उस कोठार को चारों ओर से गीली मिट्टी से बन्द करके अगीठी मे जलते हुये कोयलों पर गधक डाल कर उसे कोठार में रख दिया जावे। जब खूब धुआँ भर जावे तो कोठार का दरवाजा बन्द कर दिया जावे। दो दिन बन्द रखकर कोठार को साफ किया जावे तब उसमे बीज भरा जावे।

परन्तु इतने पर भी यदि किसी के खेत में अथवा अधिक खेतों में कीडे लग जावे तो उस समय से पूर्व जब कि वे अपनी वश-वृद्धि करते हे उनको नष्ट कर दिया जाना चाहिये। उनके अडे तथा नर और मादाओ को जिस प्रकार कृषि-विभाग बतलाये अवश्य नष्ट कर डालना चाहिये। इन कीड़ों को नष्ट करने तथा टिड्डी के अडों और असख्य टिड्डियों को भूमि मे खोद कर निकालने तथा उन्हे खाइयो मे दबा कर मार डालने के लिए बहुत से व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। कृषि-विभाग को भिन्न-भिन्न फसलों के कीड़ों को कब और कैसे नष्ट किया जाना चाहिये इसका प्रचार करना चाहिये और गाँव के लोगों को मिलकर कीड़ों के विरुद्ध युद्ध करना चाहिये। इस कार्य मे गाँव के स्काउट (बालचर) तथा गाँव की पाठशाला के विद्यार्थियों से खूब सहायता मिल सकती है। गाँव के बालचरों और स्कूल के विद्यार्थियो को यह बतलाया जाना चाहिये कि इन कीड़ों को नष्ट करना गाँव की सबसे बड़ी सेवा है।

जिस खेत मे कीड़ा लग चुका हो उसकी फसल काट लेने के उपरान्त उस खेत मे आग लगा देनी चाहिये और दूसरे साल नया और अच्छा बीज मोल लेकर खेत मे डालना चाहिये। इतना करने पर ही कीडे को समूल नष्ट किया जा सकता है।

परन्तु जब कोई कीड़ा बहुत बडे क्षेत्र मे बहुत दिनो तक पनपता रहता है तब इस प्रकार के सारे प्रयत्न करने पर भी वह दूर नहीं होता। उस दशा में

कृषि विभाग को ऐसा बीज उत्पन्न करना चाहिये जिसमें वह कीड़ा न लग सके।

कीड़ों के अतिरिक्त जगली पशु भी खेती को नुकसान करते हैं। बम्बई प्रदेश मे इस समस्या पर विचार करने के लिये एक कमेटी बिठलाई गई थी। उसका अनुमान था कि केवल बम्बई प्रदेश मे प्रतिवर्ष जगली पशुओं के द्वारा सत्तर लाख रुपये की खेती की हानि होती है। सुअर, गीदड़, चूर, जगली बिलाव, बन्दर तथा अन्य जगली पशु खेती को नष्ट कर डालते हैं। जगली पशुओं से फसल की रक्षा करने के दो उपाय हैं। (१) खेती के चारों ओर कॉटेदार झाड़ी अथवा मिट्टी की ऊँची बाढ बनाई जावे जिससे कि जंगली जानवर फसल को नष्ट न कर सकें। (२) गॉव वालों को ऐसे जानवरों को मारने के लिए बन्दूक के लायसेंस दे दिये जावें। किन्तु बाढ बनाना अथवा कोई कॉटेदार झाड़ी खेतों के चारों ओर लगाना श्रमसाध्य तथा खर्चीला है। यदि खेत बिखरे हुए न हो, एक चक में हो तो किसान बाढ अथवा कॉटे-दार झाड़ी लगा सकता है।

खेती की पैदावार बेचने की समस्या

किसान के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह खेत मे अधिक पैदावार उत्पन्न करे। अच्छी फसल उत्पन्न करने के साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य भी प्राप्त करे। यदि किसान खेत में अधिक पैदावार उत्पन्न कर भी ले किन्तु उसको अपनी पैदावार का कम मूल्य मिले तो उसका परिश्रम और व्यय व्यर्थ जावेगा। अतएव किसान को अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य मिलना चाहिए। परन्तु आज-कल जैसी अवस्था है, उसके कारण किसान को अपनी पैदावार को सस्ते दामों पर बेच देना पड़ता है जैसा कि क्रय-विक्रय सहकारी समितियों की आवश्यकता बतलाते हुए पहिले कहा जा चुका है।

किसान की निर्धनता उसको सस्ते दामो पर अपनी पैदावार बेचने के लिए विवश करती है। यदि वह किसी महाजन अथवा व्यापारी का ऋणी है तो उसको उस व्यापारी अथवा महाजन के हाथ पैदावार बेचनी होती है। कहीं कहीं ऋण लेते समय यह बात तय हो जाती है, कि किसान फसल सस्ते दामों पर अपने महाजन को देगा। यदि किसान अपने महाजन को बेचने के लिये बँधा

नहीं हो तो भी उसे लगान, आवपाशी तथा ऋण चुकाने के लिए फसल तैयार होते ही बाजार मे बेचनी पड़ती है। उस समय भाव गिरा हुआ होता है। अतएव किसान को सहकारी विक्रय समितियों के द्वारा ही अपनी फसल बेचना चाहिये तभी उसको अपनी पैदावार का अच्छा मूल्य मिल सकता है।

गाँवो की सडकें

इस सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। गाँवों मे पक्की सड़कें तो हैं ही नहीं, अधिकाश गाँवों की कच्ची सड़कें भी इतनी खराब होती हैं कि गाव मे पैदावार का गाड़ियो मे भरकर मडियों तक लाना बहुत कठिन होता है। बरसात में तो वे दलदल के अतिरिक्त और कुछ नहीं होतीं। गाँव की सड़कें खराब होने के कारण गाँव मे गमनागमन के साधनों का नितान्त अभाव होता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि जब तक गाँव की सड़कों का सुधार नहीं होता तब तक गाँवों की आर्थिक दशा भी नहीं सुधर सकती। परन्तु गाँव की सड़कों को सुधारने का काम इतना खर्चीला है कि जब तक किसान और जमींदार कुछ स्वय करने को तैयार न हो तब तक सरकार भी कुछ नहीं कर सकती। किन्तु सड़कों को सुधारने के लिए सारे गाँव को सगठित रूप में प्रयत्न करना होगा। कही कहीं एक से अधिक गाँवो के सहयोग की आवश्यकता होगी। सड़क सुधर जाने पर बैलो की टाँगें और गाड़ियो के पहिये नहीं टूटा करेंगे।

मंडियों का पुनर्संगठन

मडियों में किसान को कई तरह से लूटा जाता है जैसा कि पहले बताया जा चुका है दलाल अधिकतर व्यापारी को लाभ कराने का प्रयत्न करते हैं। किसान के दामों में से बहुत सा धर्मादा (गऊशाला, पाठशाला, मदिर, प्याऊ, धर्मशाला इत्यादि के लिये) तथा मनमाने खर्च काट लिये जाते है। बहुत से स्थानों पर बाट भारी रख लिये जाते हैं और तौलने मे किसानो को धोखा दिया जाता है। कभी कभी भाव तय हो जाने पर जब किसान गाड़ी खाली कर देता है और तौल शुरू हो जाती है तब यह कह कर कि अन्दर माल खराब निकला उसको मूल्य कम लेने पर विवश किया जाता है। इस प्रकार के अनेक दोष मण्डियों में है। शाही कृषि कमीशन ने यह सिफारिश की है कि प्रत्येक प्रदेश में मडी-कानून (Market Act) बना कर इन दोषो को दूर कर दिया जावे।

परन्तु इन दोषों के दूर हो जाने पर भी किसान को तो अपनी पैदावार को सहकारी विक्रय समिति के द्वारा ही बेचना चाहिये। सहकारी विक्रय समिति द्वारा अपनी फसल बेचने पर किसान को अपनी पैदावार का उचित मूल्य मिल सकेगा।

किसान को सतर्क तथा परिश्रमी होना चाहिये

खेती मे सफलता तभी मिल सकती है जब कि किसान उन सब बातों को अपनावे जिनसे अच्छी फसल उत्पन्न होने की सम्भावना हो और लगकर खेत पर परिश्रम करे। भारत मे यद्यपि अधिकाश खेतिहर जातियाँ परिश्रमी हैं, किन्तु हिन्दुओं की ऊँची कही जाने वाली जातियो के लोग अच्छे किसान नहीं होते। खेती एक बहुत महत्वपूर्ण धन्धा है। उसको नीचा नहीं समझना चाहिये। किसान को परिश्रम के अतिरिक्त बुद्धि से काम लेना चाहिये। उसे अपनी भूमि की उपजाऊ-शक्ति को ध्यान मे रखकर वही फसल बोनी चाहिये जिसमे उसे अधिक लाभ हो। बाजार की माँग (Demand) को भी उसे ध्यान मे रखना चाहिये। केवल उसे इसलिए कपास नहीं बोनी चाहिये कि वह पहले भी कपास बोता था। उसे कपास की माँग और उसके मूल्य को देखकर ही उसे बोना चाहिये। फसलों के हेर-फेर (Rotation of crops) का उसे पूरा ध्यान रखना चाहिये, जिससे कि भूमि की उपजाऊ शक्ति घटने न पावे।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत में खेती की दशा खराब क्यो है?

२—बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों से क्या हानि होती है?

३—खेतो की चकबन्दी से क्या लाभ हैं?

४—किसान गोबर की खाद क्यो नहीं बनाता? गड्ढों में खाद तैयार करने से क्या लाभ होगा?

५—किसान खेती के बड़े बड़े यन्त्रो और आधुनिक औजारों को काम में क्यों नहीं लाता?

६—भारत में किसान की जरूरतों को देखते हुए कैसे खेती के औजार और यन्त्र उपयुक्त होंगे।

७—किसान ज्यादातर कैसे बीज खेत में डालता है। किसान को अच्छा बीज कहाँ से और कैसे प्राप्त हो सकता है?

८—वर्षा के जल से भूमि का कटाव (Erosion of Soil) क्यों होता है और उससे क्या हानि होती है ?

९—ट्यूब-वेल द्वारा सिंचाई से क्या लाभ हैं ? उत्तर प्रदेश के किन-किन जिलों में ट्यूब वेल हैं ?

१०—नहर के पानी से जमीन कमजोर क्यों हो जाती है ?

११—फसलों के कौन से शत्रु हैं और उनसे क्या हानि होती है ?

१२—फसलों को उसके शत्रुओ से कैसे बचाया जा सकता है ?

१३—फसलों मे कीडे कैसे लग जाते हैं ?

१४—किसान अपनी पैदावार का अधिक से अधिक मूल्य क्यों नहीं पाता ?

१५—भारत मे मडियों के वर्तमान प्रबन्ध से किसान को क्या हानि है ?

१६—खेती के आधुनिक तरीकों पर प्रकाश डालिए। खेती की उन्नति के तरीके बताइये। (१९५३)

तेइसवाँ अध्याय

मुकदमेबाजी

आज भारत के ग्रामो मे ईर्ष्या, द्वेष, कलह का साम्राज्य है। साधारण सी बातो पर फौजदारी हो जाना, लम्बे मुकदमों के कारण घर के घर तबाह हो जाना, गाँवो मे आये दिन की बात हो गई है। मुकदमेबाजी ग्रामीण के ऋणी होने का एक मुख्य कारण है। भारतीय न्यायालयों में किसानो को किस प्रकार लूटा जाता है यह किसी से छिपा नहीं है। मुकदमेबाजी एक ऐसा भयकर रोग है कि जिसके कारण गाँवो के लोग दिवालिये होते जा रहे है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री एम० एल० डार्लिङ्ग का तो यहाँ तक कहना है, "जिस प्रकार अगरेजो का जातीय खेल क्रिकेट है उसी प्रकार मुकदमेबाजी भारतीयो का जातीय खेल प्रतीत होता है।" इसमे तनिक भी सदेह नहीं कि यह रोग यहा बुरी तरह फैला हुआ है।

यह तो सर्वमान्य बात है कि जुर्म करने की भावना का उदय सामाजिक विषमता अथवा समाज की गिरी हुई दशा के कारण होता है। यदि मनुष्य

जिस वातावरण में रहता है वह अच्छा नहीं है तो वह मनुष्य भी अच्छा नहीं बन सकता। भारतीय ग्रामीण जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करता है उसका परिणाम इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है कि आपस में लड़े और मुकदमेबाजी करे। भारतीय ग्रामीण अधिकांश मे अशिक्षित, ऋण के बोझ से दबा हुआ, अस्वस्थ, निर्धन, फिजूलीखर्ची, खराब रस्मों को माननेवाला, कहीं-कहीं नशा पीने वाला, आलसी, मनोरंजन के साधनों से हीन तथा अत्यन्त गन्दे स्थानों पर रहता है। इस प्रकार के वातावरण मे रहकर उसका हमेशा शान्तिप्रिय रहना कठिन है। यही कारण है कि कृषक जो स्वभावत शान्तिप्रिय होता है, कभी-कभी कलहप्रिय हो उठता है और अपना सर्वनाश कर देता है। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि गाँवों मे मनोरंजन के तथा खेलने के साधन न होने के कारण उसका लड़ने तथा झगड़ने में भी कुछ मन बहलाव होता है, इसी कारण सीधा सादा किसान कभी कभी लड़ बैठता है। यदि गाँवों में मनोरंजन के साधन उपलब्ध हो जावें और गाँवों की दशा मे सुधार हो जाये तो लड़ाई-झगडे तथा मुकदमेबाजी में बहुत कमी हो सकती है।

लड़ाई-झगड़े को दूर करने के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं .—

(१) लाभदायक कार्य, सुरुचिपूर्ण मनोरंजन तथा खेल, (२) आकर्षक घर और (३) संगठित गाँव।

खेती का सुधार होने के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि किसान को उद्योग-धन्धे सिखाये जावें जिससे कि वह बेकारी के समय उन धधों से कुछ कमा लें। इससे यह लाभ होगा कि वह काम में लगा रहेगा और जो साल में चार-पाँच महीने वह बेकार रहता है, वह न रहेगा। इसके अतिरिक्त मनोरंजन तथा खेल कूद के साधन भी उसको मिलने चाहिए।

आकर्षक गृह (Attractive Homes)

केवल इतने ही से काम न चलेगा, हमको गाँव में रहने वालों के घरों को अधिक सुन्दर तथा आकर्षक बना देना चाहिये। जब मनुष्य का घर मे मन नहीं लगता है, उसकी स्त्री गृहस्थी को बनाना नहीं जानती, खाना, पकाना, घर को सुन्दर और साफ रखना तथा बच्चो का लालन-पालन करना नहीं जानती तथा पति के साथ सहयोग नहीं करती तो पुरुषों मे लड़ाई-झगडे की मनोवृत्ति

उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। यदि घर सुन्दर और आकर्षक हो, गृह स्वामिनी घर का सञ्चालन सभी प्रकार करती हो और गृहस्थी सुखमय हो तो कौन अपने स्वर्ग सदृश घर को छोड़कर शराब पीने वालों अथवा लड़ाई-झगड़ा करने वालों मे सम्मिलित होगा। सुखमय घर जुर्म तथा लड़ाई-झगड़े को कम करने का मुख्य साधन है।

इसके अतिरिक्त दो बातें और है। गॉव वालों में आत्मसंयम (Self-control) तथा स्वाभिमान लेश-मात्र भी नहीं रहा है। किसी भी जाति में यह दो गुण मिल जुल कर रहने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं। परन्तु यह गुण गॉव-वालों में तभी आ सकते है जब कि गॉव की स्त्रियाँ बच्चों का लालन-पालन करना जानती हो तथा वे शिक्षित हों, जिससे कि आरम्भ में ही गॉव के बच्चों में आत्मसंयम, इत्यादि आवश्यक गुण उत्पन्न हो सकें। इस दृष्टि से ग्रामीण स्त्रियों के सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है।

घरों को अधिक सुन्दर बनाने के लिये भारत मे गृह-वाटिका (Home Garden Plot) आन्दोलन चलाना चाहिये। प्रत्येक घर के साथ एक छोटी सी वाटिका हो। उसमें तरकारी, फूल और फल के वृक्ष लगाये जावें। घर भर के लोग उसमें अवकाश के समय काम करें। गृह वाटिका से घर अधिक सुन्दर बनेगा साथ ही मन बहलाव भी होगा।

पञ्चायत अदालत

इस समय भारतीय ग्राम अत्यन्त गिरी दशा में है। प्रत्येक सभ्य देश मे गॉवों का एक संगठन होता है जो गॉव के सम्बन्ध की देखभाल करता है। भारत मे ब्रिटिश शासन के पूर्व गॉव की पञ्चायत एक जीवित संस्था थी। तब गॉवों की दशा ऐसी खराब नहीं थी। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक चार-पॉच गॉवों में एक पञ्चायत अदालत स्थापित की जाय जो गॉव में लड़ाई झगड़ों तथा मुकदमेबाजी को रोके और कोई झगड़ा हो भी जावे तो उसका निपटारा करे। यदि पञ्चायत अदालत ठीक तरह से काम करे तो गॉवों की दशा सुधर जाय और उनमें बहुत कम झगड़े हों और उनमें से भी अधिकांश का पञ्चायत ही निर्णय कर दे। निर्धन ग्रामीण उस लम्बी मुकदमेबाजी से बच जावें जो कि उनको तबाह कर देती है।

उत्तर प्रदेश में प्रत्येक पञ्चायत से पञ्चायत अदालत के लिये पाँच पञ्च चुन लिये जाते हैं। जब कोई झगड़ा उठ खड़ा होता तो पहले तो पञ्च दोनों पक्षों में समझौता कराने की कोशिश करते हैं और यदि समझौता न हो सके तो फिर पञ्चायत फैसला कर देती है। पञ्चायतों में वकीलों को आने की आज्ञा नहीं है।

अभी तक जो पञ्चायतें देश में स्थापित की गई उनके पञ्चों को सरकार नामजद करती थी और उनको १० रुपये से अधिक जुर्माना करने का अधिकार नहीं था इस कारण वे अधिक सफल नहीं हुई। अब पञ्चायत अदालत को एक सौ रुपये जुर्माना करने का अधिकार दे दिया गया है। हर्ष की बात है कि अब उत्तर प्रदेश के गाँव में हजारों पञ्चायत अदालतें स्थापित हो गई हैं। इनका कार्य अच्छी तरह से चल रहा है। कुछ दिनों में पञ्चायत अदालत का नाम न्याय-पञ्चायत हो जाएगा और ग्राम पञ्चायत के हिन्दी पढे लिखे सरपञ्च ही न्याय-पञ्चायत के पञ्च होंगे। सरकार इस ओर कानूनी कार्यवाही कर रही है। तब न्याय-कार्य अधिक अच्छा हो जाएगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—भारत के गाँवो में लड़ाई-झगडे बहुत होते हैं। इसका क्या कारण है?

२—मुकदमेबाजी से गाँव वालों को क्या हानियाँ हैं। उनको कम करने का क्या उपाय है।

३—गाँवो और गाँवो के रहने वालो की गिरी हुई दशा का लड़ाई-झगड़े और मुकदमेबाजी से क्या सम्बन्ध है?

४—यदि गाँव में एक ऐसी पञ्चायत हो जिसमें सब की श्रद्धा हो तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

५—शराबबन्दी से गाँवो में लड़ाई-झगड़े कहाँ तक बन्द हो सकते हैं?

६—यदि किसानो के घर अधिक आकर्षक बन जावें तो उसका किसानो पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

७—गाँवो में घरो को अधिक आकर्षक बनाने के लिए किन बातो की जरूरत है?

चौबीसवाँ अध्याय

ग्रामवासियों को ऋणमुक्त करना

भारत मे ग्रामीण ऋण की समस्या अत्यन्त भयकर हो उठी है और आज सरकार, राजनीतिज्ञ और जनता सभी का ध्यान महत्वपूर्ण समस्या की ओर आकर्षित हो गया है। भारत के गाँवो में रहने वाले किसान कर्ज के भयकर बोझ से इस बुरी तरह से दबे हुए हैं कि साधारण रूपों से उनके छुटकारे की कोई आशा नहीं हो सकती। ऋणी होने के कारण किसानो का राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चरित्र विषयक पतन हो रहा है। कहीं-कहीं तो दशा अपने महाजन के मोल लिये हुए दास जैसी हो गई है। यह निर्विवाद है कि देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इस समस्या को हल करना आवश्यक है। जब कि जनसख्या का एक बहुत बड़ा भाग दासता का जीवन व्यतीत करता हो तब देश की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न करना निष्फल है।

सन् १९३० मे जो केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी बैठाई गई थी उसने ब्रिटिश भारत के समस्त प्रदेशो के ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाया है। उक्त कमेटी के हिसाब से समस्त ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण उस समय ९०० करोड़ रुपये था। किन्तु १९३० से ही खेती की पैदावार का मूल्य बहुत घट गया और उसी अनुपात मे ऋण का बोझ बढ गया। अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि सन् १९३९ मे ग्रामीण ऋण उस समय से लगभग दुगुना अर्थात् १८०० करोड़ रुपये के लगभग होगा। ध्यान मे रखने की बात है कि इन अंको में देशी राज्यो के ग्रामीण ऋण के अङ्क सम्मिलित नहीं हैं। सन् १९३० मे उत्तर प्रदेशीय बैंकिंग जाँच कमेटी के अनुसार उत्तर प्रदेश का ग्रामीण ऋण १४४ करोड़ रुपये था।

सन् १९३९ में महायुद्ध आरम्भ हो गया जिसके फलस्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य बेहद बढ़ गया। इससे कर्जे का बोझ कुछ हलका जरूर हुआ। अगर इस अवसर का लाभ उठाया जाता और सरकार इस तरफ ध्यान देती तो किसान का सारा कर्ज चुकाया जा सकता था। लेकिन किसान ने उस रुपये का उपयोग चाँदी खरीदने, कपड़े तथा अन्य वस्तुओं को मोल लेने, तीर्थ यात्रा विवाह और भोजों मे किया और कर्ज वैसे का वैसे ही बना रहा।

प्रादेशिक बैंकिंग कमेटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है। सर एडवर्ड मैक्लेगन ने सन् १९११ में कहा था, "यह मानना पड़ेगा कि ग्रामीण ऋण ब्रिटिश शासन में और विशेष पिछले पचास वर्षों में बहुत बढ़ गया।" शाही कृषि कमीशन की भी लगभग यही सम्मति है। जब से खेती की पैदावार का मूल्य गिर गया है तब से किसानों के कर्ज का बोझ और भी बढ़ गया है। इस भयङ्कर बोझ को किसान किस प्रकार सँभाल सकेगा यह प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति समझ सकता है।

अभी तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि गाँव में प्रतिशत कितने कर्जदार हैं। कुछ अर्थशास्त्र के विद्वानों का मत है कि ६० से ७० प्रतिशत ग्राम निवासी कर्जदार हैं।

महायुद्ध और ऋण

सन् १९३९ के उपरान्त जब से द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तब से खेती की पैदावार का मूल्य बहुत बढ़ता गया है और कुछ अर्थशास्त्री यह मानने लग गये हैं कि किसान ऋण-मुक्त हो गये हैं। परन्तु, हम जैसा ऊपर कह आये हैं, ऐसा नहीं हुआ है। फिर भी यह मानना होगा कि ऋण का भार कुछ हल्का अवश्य हुआ है। अभी कुछ दिन हुए, मद्रास सरकार ने इस सम्बन्ध में एक जाँच करवाई थी। उससे यह ज्ञात हुआ कि २० प्रतिशत ऋण कम हुआ है और बड़े किसानों के ही ऋण में कमी हुई है, छोटे किसानों की दशा वैसी ही है। हाँ, यदि इस समय सरकार ऋण की जाँच करवा कर उसे कानून बनाकर घटा दे और उसकी अदायगी का कुछ प्रबन्ध करे तब समस्या हल हो सकती है। परन्तु यदि ऐसा कुछ न हुआ, किसान की आज की खुशहाली शादियों, सोना-चाँदी, तीर्थ यात्रा, मेलों, तमाशों पर कम हो गई और आगे चल कर खेती की पैदावार का मूल्य कम हो गया तो फिर किसान कर्ज के बोझ से ऐसा दब जावेगा कि उसका बचना कठिन होगा।

कर्जदार होने के कारण

पैतृक ऋण

किसान को कर्जदार बनाने में उसके बाप के समय का कर्ज बहुत सहायक होता है। बाप का ऋण चुकाना एक धार्मिक कर्त्तव्य समझा जाता है। बाप के

मरने पर महाजन पुत्र से पुराने कर्ज के लिये नया कागज लिखवा लेता है।

महाजन के लेन-देन करने का ढङ्ग

महाजन इतना अधिक सूद लेता है कि यदि कोई किसान एक बार महाजन के चगुल मे फँस गया तो उसका ऋण मुक्त होना असम्भव हो जाता है। गाँवों में भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे सूद की दर भिन्न है, परन्तु फिर भी साधारणतः यह कहा जा सकता है कि किसान को २५ से ७५ प्रतिशत तक सूद देना होता है। इतना अधिक सूद किसान कैसे दे सकता है? फल यह होता है कि ऋण बढ़ता जाता है। किसान जो कुछ देता है वह सूद मे ही कट जाता है और किसान भी ऋण से मुक्त नहीं हो पाता। किसान अशिक्षित होता है इस कारण महाजन कभी-कभी हिसाब में गड़बड़ कर देता है और किसान को धोखा दे देता है।

किसान के पास खेती के लिए यथेष्ट भूमि का न होना

साधारण किसान के पास इतनी भूमि नहीं कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन कर सके। देश मे उद्योग-धन्धे कम होने के कारण आवश्यकता से अधिक जनसख्या खेती बारी पर अवलम्बित है। इस कारण खेती के योग्य भूमि की बहुत कमी है। केवल यही खराबी नहीं है, जो कुछ भी भूमि किसान के पास है वह भी एक स्थान पर न होकर दूर-दूर छोटे छोटे टुकड़ों मे बिखरी होती है (Fragmented Land holdings)। इन बिखरे हुए खेतों के कारण वैज्ञानिक ढङ्ग से न खेती हो सकती है और न खेती मे लाभ हो सकता है।

अनिश्चित खेती

भारत में खेती अत्यन्त अनिश्चित है। किसी साल वर्षा कम होने से अथवा वर्षा अधिक होने से, ओला या पाला पड़ने से, या फसल में कीड़े लग जाने से अथवा अन्य किसी कारण से जब फसल मारी जाती है तो किसान को कर्ज लेना पड़ता है।

बैलों की मृत्यु

पशुओं की महामारी (प्लेग आदि) फैलने से भारत मे प्रतिवर्ष लाखो पशु मरते हैं। किसान के बैल मर जाने पर उसे कर्ज लेकर नए बैल मोल लेने पड़ते हैं।

सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में व्यय करना

भारतीय ग्रामीण विवाह, मृत्यु, जन्म तथा अन्य धार्मिक और सामाजिक कृत्यों पर कर्ज लेकर अधिक व्यय कर देता है। कुछ लोग इसको अत्यधिक कर्जदार होने का मुख्य कारण बतलाते हैं, परन्तु इसमें अतिशयोक्ति है।

मुकदमेबाजी

मुकदमेबाजी किसान के ऋणी होने का मुख्य कारण है। किसान कर्ज लेकर मुकदमा लड़ता है। भारत में मुकदमेबाजी का रोग ऐसी बुरी तरह फैला हुआ है कि इसके कारण लाखों परिवारों का सर्वनाश हो गया है। वकील, अदालतों के कर्मचारी तथा खर्चीला न्याय किसान को कर्जदार बना देता है।

लगान और मालगुजारी

मालगुजारी उचित से अधिक है, क्योंकि खेती से लाभ बहुत कम है। जब कभी फसलें नष्ट हो जाती हैं अथवा खेती की पैदावार की कीमत कम हो जाती है तो किसान को लगान देना कठिन हो जाता है। यद्यपि ऐसे समय कुछ छूट दी जाती है, परन्तु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है। निर्धन किसान को महाजन से कर्ज लेकर लगान या मालगुजारी देनी होती है। क्योंकि जमींदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बहुत सख्ती से वसूल करते रहे हैं। भूमि की कमी होने के कारण कभी-कभी किसान लम्बे पट्टे लेता है और उसके लिये बहुत अधिक लगान देना स्वीकार करता है। कभी-कभी कर्ज लेकर वह भूमि मोल ले लेता है।

किसान फसल बोने के समय महाजन से सवाये अथवा ड्योढे पर बीज लाता है। महाजन पुराना सड़ा बाज दे देता है। खाद इत्यादि डालने के लिये भी वह कर्ज लेता है। फसल तैयार होने पर उसे अपनी पैदावार तुरन्त बेचनी पड़ती है क्योंकि लगान, सरकारी आबपाशी तथा महाजन अपने कर्ज के लिये जल्दी मचाते हैं। उस समय बाजार भाव मन्दा होता है। महाजन बाजार भाव से भी बहुत सस्ते दामों पर किसान की पैदावार मोल लेता है। किसान थोडे दिन ठहर सके तो उसे अपनी पैदावार का अधिक मूल्य मिल सकता है। जूट, गन्ना और कपास इत्यादि की फसलों में तो कारखाने वाले किसान को कुछ रुपये पेशगी कर्ज दे देते हैं और बहुत सस्ते दामों पर फसल को पहले से ही मोल ले लेते हैं।

अधिकतर किसानों की स्थिति यह है कि फसल काटने के उपरान्त सब लेनदारों का रुपया चुकाने पर उसके पास केवल आठ महीने का भोजन ही बच रहता है। पिछले चार महीनों में किसान को महाजन से सवाये या ड्योढे पर अनाज उधार लेना पड़ता है। कहीं-कहीं तो कर्जदारों की स्थिति मोल लिए हुए दासों से भी गई बीती हो जाती है।

सरकार द्वारा ऋण की समस्या को हल करने का प्रयत्न

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में दक्षिण भारत, अजमेर, मेवाड़ प्रदेश तथा बिहार प्रदेश के छोटा नागपुर डिवीजन में किसान विद्रोही हो उठे। उन्होंने बहुत से महाजनों के घर जला दिये और उन्हें मार डाला। सरकार ने एक कमीशन बिठाया। कमीशन ने इन उत्पातों का मुख्य कारण किसानों की भयङ्कर कर्जदारी बतलाया। सरकार ने किसानों की रक्षा के लिए देशी कानून में सुधार किये और एक कानून बनाया जिससे अदालतों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसी भी नालिश के मुकदमे में उचित सूद की ही डिगरी दें, फिर किसान ने महाजन को चाहे जितने अधिक सूद देने का वादा क्यों न किया हो। किन्तु इस कानून से कोई लाभ न हुआ क्योंकि अदालतों का न्याय खर्चीला है और किसान निर्धन हैं।

भारतीय सरकार ने किसानों में मितव्ययता का भाव उत्पन्न करने के लिये पोस्ट आफिस सेविंग बैंक खोले। अशिक्षित किसान पोस्ट आफिस सेविंग बैंक से अधिक लाभ न उठा सका। सरकार ने कई बार सिविल लॉ में इस दृष्टि से सुधार किये कि किसानों को कुछ सुविधा दी जाये, किन्तु कानून द्वारा सरकार किसानो की कुछ भी सहायता न कर सकी।

सरकार ने देखा कि किसान को खेती-बारी का धन्धा करने के लिए साख (कर्ज) की आवश्यकता होती है। किसान को दो तरह की साख चाहिये—थोड़े समय के लिए और अधिक समय के लिए। अस्तु, भारतीय सरकार ने दो कानून बना कर प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान की दोनो प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तकावी दे सकती हैं। किन्तु तकावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानो ने तकावी का अधिक उपयोग ही किया। कारण यह है कि किसानो को तकावी पटवारी कानूनगो तथा नायब तहसीलदार की सिफारिश से मिलती है, इस कारण किसान

को रुपया समय पर नहीं मिल पाता। आवश्यकता के समय तकावी न मिलने तथा वसूली में कड़ाई होने से तकावी का अधिक प्रचार नहीं हुआ।

कर्जदार होने के कारण किसानों के हाथ से भूमि निकल कर महाजनों के पास चली जाती थी और किसान उन पर मजदूरों की भाँति कार्य करता था। पञ्जाब में इस समस्या को हल करने के लिए "पंजाब लैंड एलीनेशन ऐक्ट" पास करके गैरखेतिहर जातियों को खेती की भूमि लेने से वंचित कर दिया गया। उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड तथा मध्य प्रदेश के कुछ भागों में इसी प्रकार का कानून लागू कर दिया गया है।

यह सब कुछ हुआ, परन्तु ग्रामीण ऋण की समस्या पूर्ववत् ही बनी रही। इसी बीच में इटली और जर्मनी की सहकारी साख समितियों की आश्चर्यजनक सफलता से भारत सरकार का ध्यान सहकारी साख आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और सन् १९०४ से भारत में भी सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। सहकारी साख आन्दोलन कहाँ तक सफल हुआ है, यह तो अगले अध्यायों में लिखा जावेगा, किन्तु इतने वर्षों के अनुभव ने यह सिद्ध हो ही गया है कि सहकारी साख समितियाँ किसान के पुराने कर्जे को अदा नहीं कर सकतीं। थोड़े समय के लिए खेतीबारी में जो ऋण की आवश्यकता होती है उनका प्रबन्ध ये साख समितियाँ सफलतापूर्वक कर सकती हैं। जब तक किसान पुराना ऋण नहीं चुकाता तब तक वह महाजन के चंगुल से मुक्त नहीं हो सकता।

पुराने ऋण को चुकाने के लिए तथा अन्य कार्यों के लिए अधिक समय तक का ऋण देने के लिए भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Banks) अधिक उपयुक्त हैं। ये बैंक किसान अथवा जमींदारों की भूमि को गिरवी रख उन्हें बीस या तीस वर्ष तक के लिए ऋण देते हैं और किस्तों में वसूल कर लेते हैं। ऋण देने के लिए बहुत पूँजी की आवश्यकता होती है। यह बैंक बंधक रखी हुई भूमि की जमानत पर डिबैंचर (ऋण पत्र) बेचकर पूँजी इकट्ठी करते हैं। अभी भारत में थोड़े से ही भूमि बन्धक बैंक स्थापित हुए हैं। परन्तु ये बैंक उन्हीं किसानों को ऋण दे सकेंगे जो कि भूमि बन्धक रख सकेंगे। बहुत से प्रदेशों में किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नहीं है। वहाँ ये बैंक किसानों की सहायता न कर सकेंगे।

ऋण-परिशोध

केन्द्रीय बैंकिंग जॉच कमेटी की सम्मति में सरकार को निम्नलिखित योजना के अनुसार कार्य करना चाहिये।

प्रादेशिक सरकार इस कार्य के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त करे जो गाँव में दौरा कर के पता लगावे कि किसानो पर कितना ऋण है। इसके लिए एक कानून बनाकर महाजनो को विवश किया जावे कि वे किसान के ऋण का पूरा हिसाब बतावें। तदुपरात वह कर्मचारी ऋण को चुकाने के लिए महाजन को कम से कम रुपया लेकर किसान को ऋणमुक्त करने के लिए राजी करे। जब यह निश्चय हो जावे कि महाजन कम से कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋणमुक्त कर देगा, तब किसान का साख समिति का सदस्य बनवा दिया जावे। साख समिति किसान का कर्जा एक मुश्त अथवा किश्तों में चुका दे, तथा खेती बारी के लिये किसान को आवश्यक साख (कर्ज) देती रहे।

यदि महाजन किश्तो मे रुपया लेना स्वीकार करे तो किसान जितना स्वयं दे सके उतना चुका दे और शेष किश्तों का देने की जिम्मेदारी साख समिति ले ले। समिति किसान से किश्तें वसूल करती रहे। यदि महाजन एक मुश्त रुपया मॉगे तो सरकार को उतना रुपया समिति को उधार दे देना चाहिए। साख समिति किसान से वार्षिक किश्तें लेकर सरकार का कर्ज चुका देगी।

यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज के इस प्रकार चुकाये जाने के लिये तैयार न हों और समझौता न करें। ऐसी परिस्थिति मे कानून बना कर उन्हें विवश किया जावे।

कतिपय प्रदेशो में ऋण समझौता बोर्ड (Debt Conciliation Board) तथा भूमि बधक बैंक (Land Mortgage Banks) साथ-साथ स्थापित किये गये हैं। ऋण समझौता बोर्ड सदस्य के ऋण के विषय में महाजन से समझौता करके रकम को कम से कम करने का प्रयत्न करता है और भूमि बन्धक बैंक सदस्य की भूमि को बन्धक रख कर उस रकम को चुका देता है। तदुपरान्त किश्तों में सूद सहित सदस्य से रुपया वसूल कर लेता है। अभी ये सस्थाएँ बहुत कम सख्या में हैं और इन्हें कार्य करते अधिक दिन नहीं हुए हैं।

अभी कुछ वर्ष हुए हैं कि भिन्न भिन्न प्रदेशों में कुछ कानून किसानों की

रक्षा के लिए बनाए गए हैं। उत्तर प्रदेश में कुछ कानून इस सम्बन्ध में बनाए गए हैं। इन कानूनों के द्वारा ऋण के लिए भूमि कुर्क नहीं कराई जा सकती। अदालत सूद की दर निश्चित करके किश्त बाँध देती है किन्तु इन कानूनों से किसानो का अधिक लाभ नहीं हुआ।

ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी गम्भीर और महत्वपूर्ण है, साथ ही इतनी कठिन भी है कि वह साधारण प्रयत्नों से हल न होगी। इसके लिए कोई क्रान्तिकारी तथा साहसी प्रयोग करना होगा। इस दृष्टि से भावनगर के तत्कालीन दीवान सर प्रभाशकर पट्टनी राज्य भर के किसानों के ऋण की जाँच करवाई तो ज्ञात हुआ कि राज्य के किसानों पर छियासी लाख से कुछ अधिक ऋण है। उन्होंने राज्य भर के महाजनों को बुलवाया और उनसे बीस लाख रुपये लेकर किसानों को ऋणमुक्त कर देने को कहा। पहिले तो महाजन तैयार नहीं होते थे किन्तु जब उन्होंने देखा कि समझौता न करने पर राज्य ऐसे कानून बना देगा कि जिनके कारण किसानों से रुपया वसूल न हो सकेगा तो वे बीस लाख रुपये लेकर किसानों को ऋणमुक्त करने को तैयार हो गये। राज्य ने एक मुश्त बीस लाख रुपये देकर किसानों को महाजनों के ऋण से मुक्त कर दिया। ध्यान रहे, किसान प्रतिवर्ष लगभग पचीस लाख रुपये तो केवल सूद में देते थे। राज्य अब किश्तों में वह रुपया लगान के साथ किसानों से वसूल करता है। राज्य मे सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा रही हैं और राज्य तकावी देता है जिससे कि किसान फिर महाजनों के ऋणी न हो जावे। इस प्रकार ऋण मुक्त होने का फल भावनगर मे यह हुआ कि किसान स्वय वैज्ञानिक ढग की खेती करने लगे हैं। अच्छे हल, बैल, खाद तथा बीज का उपयोग किया जा रहा है और गॉव समृद्धिशाली बनते जा रहे है। शेष भारत मे भी अब इसी प्रकार की कोई क्रान्तिकारी योजना काम मे लाई जावेगी तभी ग्रामीण ऋणमुक्त हो सकेंगे जब तक किसान ऋणमुक्त नहीं होते तब तक उनकी स्थिति मे सुधार होना सम्भव नहीं है।

यद्यपि भावनगर राज्य की भाँति कोई क्रान्तिकारी योजना और प्रदेशों में काम में नहीं लाई गई परन्तु पिछले वर्षों में भी कुछ कानून बनाए गए हैं जिनसे कर्जदारों को बहुत लाभ और सुविधा हो गई है। इनमें नीचे लिखे मुख्य हैं:—

महाजन लायसेंस कानून (Money-Lenders Act)—पश्चिमी बङ्गाल, आसाम, मध्यप्रदेश, बिहार, बम्बई, पूर्वी पजाब में महाजन पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये हैं। इन कानूनों की मुख्य बातें एक सी हैं।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसेंस लेना होगा। प्रत्येक लायसेंसदार महाजन को नियमानुसार हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्जदार को निश्चित समय पर उसका हिसाब लिख कर देना होगा। जब कभी कर्जदार कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसकी रसीद देनी होगी।

इन कानूनों के साथ ही प्रादेशिक सरकारों ने सूद की दर भी कानून से निश्चित कर दी है। यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में सूद की दर भिन्न है, फिर भी पहले से सूद की दर बहुत कम हो गई है।

मद्रास और मध्य प्रदेश में कानून बनाकर किसान के कर्ज को कुछ प्रतिशत कम कर दिया गया है। कुछ प्रदेशों में 'ऋण समझौता बोर्ड' स्थापित करके किसान के ऋण की रकम को घटाने का प्रयत्न किया गया है।

किन्तु इन सुविधाओं से ऋण की समस्या हल नहीं हुई। आवश्यकता इस बात की है कि भावनगर राज्य की तरह ही सरकार इस समस्या को हल करने के लिए एक योजना तैयार करे और उसको शीघ्र ही लागू कर दे।

आवश्यकता इस बात की है कि सरकार इस समय ग्रामीण-ऋण की जाँच करवाये। कानून बनाकर उसे उचित मात्रा मे कम कर दे। कम करने मे यह ध्यान रखना चाहिए कि महाजन ने बहुत अधिक सूद लेकर अपनी रकम को बढा तो नहीं लिया है। अस्तु, कर्ज की रकम को सभी बातों को ध्यान में रख कर दिया जावे। जिन किसानों के बारे मे यह प्रतीत हो कि वे दस वर्ष में भी घटी हुई रकम को अदा नहीं कर सकते क्योंकि उनके पास कुछ भी बचत नहीं होती, उनको 'ग्रामीण दिवालिया कानून' (Rural Insolvency Act) बना कर दिवालिया करार दे दिया जावे और उन्हें फिर से नये सिरे से कार्य आरम्भ करने की इजाजत दी जावे। भूमि, बैलों की जोड़ी, खेती के औजार, बीज, ६ महीने के खाने के अन्न को छोड़कर जो भी उनके पास हो उसको महाजनों में बाँट दिया जावे और किसान को ऋण-मुक्त कर दिया जावे। शेष किसानों की कम की हुई रकम सरकारी बाँडों के रूप में किसानों के महाजनों को दे दी

जाय। इसका मतलब यह हुआ कि सरकार उन महाजनों की कर्जदार हो गई और जब तक सरकार महाजनों का कर्जा न चुका सके तब उस पर २ प्रतिशत सूद देती रहे। सरकार यह रकम किसान से सूद सहित किश्तों में वसूल कर ले। इस प्रकार ऋण की समस्या को हल किया जा सकता है।

महायुद्ध और ग्रामीण ऋण—महायुद्ध के फलस्वरूप खेती की पैदावार का मूल्य आकाश छूने लगा और किसान की आर्थिक स्थिति अच्छी प्रतीत होने लगी। अर्थशास्त्रियों की यह धारणा होने लगी कि या तो गाँव वालों का ऋण बिलकुल ही चुक गया होगा अथवा बहुत कम शेष रह गया होगा। परन्तु इस सबध मे सही आकडे उपलब्ध नहीं थे। केवल मद्रास मे तथा अन्य स्थानों पर इस सम्बन्ध में कुछ जाँच की गई। उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण-ऋण २० प्रतिशत कम हो गया है। किन्तु कमी केवल बड़े किसानों और जमींदारो के ऋण में हुई, वरन् किसी किसी दशा मे छोटे किसानों और खेत मजदूरा का ऋण बढ गया है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँवों में किसान किन आदमियों और सस्थाओं से ऋण लेता है?

२—भारत में ग्रामीण ऋण की समस्या इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों हो उठी है?

३—ग्रामीण के कर्जदार होने के मुख्य कारण क्या हैं? इसके उपाय बताइए। सरकार ने उन्हें ऋण-मुक्त करने के क्या प्रयत्न किये हैं? (१६४२, १६५२)

४—क्या ऋण लेना हर हालत में हानिकारक होता है? भारतीय किसान किन-किन कार्यों के लिये ऋण लेता है? (१६५०)

५—क्या यह सच है कि 'भारतीय किसान ऋण ही में जन्म लेता है और ऋण ही में मरता है'? इस भयकर कर्जदारी का उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

६—किसान के ऋणी होने से उसकी क्या हानि होती है?

७—भारतीय किसान का जो निराशावादी दृष्टिकोण बन गया है उस पर उसके कर्जदार होने का क्या असर पड़ता है?

८—'तकावी' क्या है और उससे किसान को कहाँ तक सहायता मिलती है?

९—केन्द्रीय बेंकिंग जॉच कमेटी ने ऋण की समस्या को हल करने के लिये क्या उपाय बतलाया है ?

१०—भावनगर राज्य में ऋण की समस्या को कैसे हल किया गया और उसका फल क्या हुआ ?

११—भूमि बन्धक बैंक किसे कहते हैं ? वह क्या कार्य करता है ?

१२—भारत में ब्याज की दर अधिक क्यों है ? इसे कम करने के लिये आप क्या उपाय करेंगे ? (१९४९)

१३—किसान कर्जदार क्यों हैं ? उनको कर्ज से कैसे मुक्त किया जाय और कर्जों में पुन फँसने से कैसे बचाया जाय ?,(१९५३)

पच्चीसवाँ अध्याय

गॉव में आय के साधन और गमनागमन

गॉव में खेती के सिवाय आय के दूसरे साधन नहीं के बराबर हैं। जन-संख्या के बढ़ने और भूमि की कमी के कारण प्रति किसान पीछे भूमि की इतनी कमी (ढाई एकड़) है कि एक परिवार का उस पर पालन होना साधारण समय में भी असम्भव है। फिर भारत में हर तीसरे-चौथे साल फसल नष्ट हो जाती है। सूखा, बाढ, अतिवर्षा, टीडी, ओला, फसलो के रोग, पाला इत्यादि दैवी कारणों से फसलें नष्ट हो जाती हैं और कहीं-कहीं तो भीषण अकाल पड़ जाता है। ऐसे समय मे किसान की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। यह तो हुई उन वर्षों की बात जब कि फसल खराब हो जाती है। जब फसल ठीक होती है तब भी किसान के पास इतना नहीं होता कि वह परिवार का पालन पोषण ठीक तरह से कर सके। इसलिए यह आवश्यक है कि खेती के अलावा किसान के पास आय के दूसरे भी साधन हों।

ग्रामीण धन्धे

भारत का साधारणत. किसान वर्ष मे ४ से ६ महीने बेकार रहता है। कारण, खेती का धन्धा ऐसा है कि इसमें वर्ष भर लगातार काम नहीं रहता। किन्हीं दिनों उसे बहुत अधिक काम करना पड़ता है, किन्हीं दिनों कम, और कभी वह

बिल्कुल बेकार रहता है। गाँव के मजदूरों को तो वर्ष में ४ या ५ महीने से अधिक काम मिलता ही नहीं। यह मानी हुई बात है कि कोई ६ महीने काम करके १२ महीने का भोजन नहीं पा सकता।

योरोप तथा अमेरिका जैसे देशों में जहाँ किसान के पास बड़े-बड़े फार्म हैं, किसान केवल खेती पर ही अवलम्बित नहीं रहता। वह ग्राम-उद्योगों के द्वारा अपनी आय बढाता है। ऐसी दशा में भारत में जहाँ भूमि का अकाल है किसान बिना ग्रामीण धन्धों के कैसे जीवित रह सकता है? ग्रामीण-धन्धों में निम्नलिखित गुण होने चाहिये :—

१—धन्धा ऐसा होना चाहिये जो खेती के काम में बाधक न हो अर्थात् जब खेतों पर अधिक काम हो तब उसको बिना हानि के छोड़ा जा सके।

२—धन्धा ऐसा हो जिसमें अधिक कुशलता प्राप्त करने की जरूरत न हो। नहीं तो किसान के लिए उस धन्धे की शिक्षा की समस्या उठ खड़ी होगी।

३—धन्धे में कच्चे पदार्थ की जो आवश्यकता हो वह गाँव से ही पूरी हो सके।

४—धन्धे की चीज ऐसी होनी चाहिये कि जिसकी माँग सब जगह हो और जिससे माल के बेचने में कठिनाई न हो।

५—धन्धा ऐसा होना चाहिये जिसके चलाने में अधिक पूँजी की जरूरत न हो।

६—जहाँ तक हो, ग्रामीण धन्धे ऐसे चुने जावें जिनकी होड़ मिलों में बने माल से न हो।

ऊपर दिये हुये गुणों को ध्यान में रखते हुये नीचे लिखे धन्धे गाँव के लिये उपयुक्त हो सकते हैं।

(१) दूध, घी, मक्खन का धन्धा, (२) मुर्गी पालने का धन्धा, (३) फलों का धन्धा, (४) तरकारी पैदा करना, (५) शहद उत्पन्न करना, (६) सूत कातने का धन्धा, (७) रेशम के कीड़े पालने का धन्धा, (८) भेड़ें पालने का धन्धा, (९) गुड़ बनाना, चावल कूटना, रस्सी बटना, डलिया तैयार करना, (१०) गाड़ी चलाना, तेल पेरना इत्यादि।

ग्राम उद्योग सङ्घ

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में ग्राम उद्योग सङ्घ की स्थापना हुई थी जो ग्रामीण-

धन्धों की उन्नति के लिये प्रयत्न कर रहा है। आशा है कि इससे गाँव वालों को आय का एक अच्छा साधन मिल जावेगा। सरकार का औद्योगिक विभाग भी इस ओर ध्यान दे रहा है।

खादी तथा ग्राम उद्योग बोर्ड

अभी हाल मे भारत सरकार ने खद्दर तथा अन्य ग्रामीण धन्धो की उन्नति के लिये एक बोर्ड की स्थापना की है। यह बोर्ड इन ग्रामीण धन्धों को आर्थिक सहायता देता है, उनके लिये उत्तम औजार देने तथा उत्तम माल तैयार करने के लिये धन्धा की शिक्षा का प्रबन्ध करता है। तथा तैयार माल की बिक्री की व्यवस्था करता है। आशा है कि इस बोर्ड के प्रयत्न से ग्रामीण धन्धों की उन्नति होगी।

गाँवों मे आय के अन्य साधन

खेती की उन्नति तथा ग्रामीण धन्धों के विकास मे खेती में लगे हुए किसानों की आर्थिक स्थिति मे कुछ सुधार हो सकता है। परन्तु गाँवों की स्थिति में पर्याप्त सुधार तभी होगा जब कि वहाँ गृह-उद्योग-धन्धे (Cottage Industries), जैसे—हाथकर्घे से कपडे बनाने का धन्धा, बढईगीरी, लुहारी, पीतल के बरतन, मिट्टी के बरतन बनाने तथा अन्य धन्धों की उन्नति की जावे। इसके लिए पूँजी (Capital), हल्के यन्त्रों जल विद्युत तथा अच्छे मार्गों की आवश्यकता होगी। यदि ऊपर लिखी सुविधाएँ सरकार गाँवों को प्रदान कर दे तथा इनकी सहकारी समितियों के द्वारा सगठन किया जावे तो गाँवों मे गृह-उद्योग धन्धे पनप सकते हैं और गाँवों के रहने वाले कारीगरों तथा अन्य व्यक्तियों को आय का एक अच्छा साधन प्राप्त हो सकता है।

गाँव मे जाने की असुविधा

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाँव में सड़कें न होने के कारण वे बाहरी दुनिया से अलग रहते है। गाँवों की उन्नति के लिए सड़को की उन्नति सबसे पहले जरूरी है। यदि सड़कों की उन्नति की जावे और हर एक गाँव मुख्य पक्की सड़कों से जोड़ दिया जावे तो थोडे ही दिनों मे गाँवों की कायापलट हो सकती है। उस दशा में मोटर लारियों के द्वारा गाँव की पैदावार बहुत जल्दी और कम खर्च में शहरों तक लाई जा सकती है। गाँवों का व्यापार सड़कों की

उन्नति से बहुत जल्दी बढ़ सकता है और गाँवों में और दूसरे कारबार चल सकते हैं इसलिए देश में सड़कों की उन्नति बहुत जरूरी है। हर्ष की बात है कि सरकार इस ओर अब कुछ ध्यान देने का विचार कर रही है।

किन्तु केवल सड़कों से ही काम नहीं चलेगा। डाक, तार तथा रेडियो की भी सुविधा गाँवों को मिलनी चाहिए जिससे वे दुनिया की हलचलो से परिचित हो सकें।

आज कल जो सामुदायिक विकास योजनायें चल रही है उनमें गाँवों में सड़को, डाक, तार इत्यादि की व्यवस्था की जा रही है।

गाँवों मे बेकारी

आज भारत के गाबों में बेकारी बहुत बढ़ गई है। लोगों के पास यथेष्ट काम नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि जनसंख्या बढ़ती जा रही है। घरेलू तथा ग्रामीण उद्योग धन्धे नष्ट होते गये इस कारण उनमे लगे हुए लोग भी बेकार हो गए। इसका नतीजा यह हुआ कि हर एक आदमी खेती की ओर झुका लेकिन भूमि भी कम है इसलिए प्रत्येक गाँव के रहने वाले को खेती के लिए भूमि नहीं मिल पाती। जिनके पास गाँवों मे खेती के लिए भूमि है भी, वे भी साल में ६ महीने तक बेकार रहते हैं फिर उनका क्या कहना जिनके पास खेती के लिए भूमि नहीं है या केवल एक दो बीघा है। यह लोग जुताई बुवाई के समय और फसल कटने के समय खेतों पर मजदूरी पा जाते हैं शेष महीनो मे वे बेकार रहते हैं। इन्हे खेत मजदूर कहते है। अनुमान किया जाता है कि देश मे खेत मजदूरों की सख्या तीन या चार करोड़ है।

यह तो हम पहले ही कह आये है कि किसान जो वर्ष में चार से ६ महीने बेकार रहता है उसके लिये ग्रामीण धन्धों की उन्नति करनी होगी।

खेत मजदूर—इस देश में खेत मजदूरों की दशा अत्यन्त दयनीय है वे अत्यन्त निर्धन है उन्हें एक समय कठिनाई से भोजन मिलता है। उनकी दशा में सुधार करने के लिए नीचे लिखे उपाय किये जाने चाहिये।

(१) गाँवों में घरेलू धन्धों तथा ग्रामीण उद्योग-धन्धों की उन्नति करके उनमें उनको काम दिया जावे।

(२) परती या बजर भूमि को सरकार खेती योग्य बनाकर उस पर खेत मजदूरों को बसावे ।

(३) खेतों पर काम करने के बदले उन्हें मिलने वाली मजदूरी कानून द्वारा निश्चित कर दी जावे उससे कम मजदूरी उन्हें न मिले ।

(४) खेत मजदूरों की मजदूर-सहकारी समितियाँ बना दी जावे । सरकार सड़क कूटने, इमारतो इत्यादि को बनाने मे मजदूरी का ठेका ठेकेदारों को न देकर इन खेत मजदूरों को दे ।

आचार्य विनोबा भावे का भूदान यज्ञ

राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी के मुख्य शिष्य आचार्य विनोवा भावे ने इन भूमि हीन खेत मजदूरों को बसाने का एक दूसरा ही उपाय निकाला है । वह तथा उनके अनुयायी देश में घूम घूम कर भूमि का दान लेते हैं और प्रत्येक भूमि-हीन को पाँच एकड़ भूमि खेती के लिये दे देते हैं । उनका निश्चय है कि वह देश भर में पाँच करोड एकड़ भूमि इकठ्ठी करेंगे और एक करोड़ भूमि हीन परिवारों को उस पर बसा देंगे । अभी तक उन्हें चालीस लाख एकड़ भूमि दान में मिल चुकी है । भारत में एक परिवार मे औसत पाँच व्यक्ति होते हैं । भूमि हीन खेत मजदूर केवल चार करोड़ हैं । अत. यदि विनोवा जी को पाँच करोड़ एकड़ भूमि मिल गई तो भूमि हीन खेत मजदूरों की समस्या हल हो जायगी ।

अभ्यास के प्रश्न

१—किसानों को खेती के सिवाय दूसरे आय के साधनों की क्या जरूरत है ?

२—ग्रामीण धन्धों में कौन सा विशेष गुण होना चाहिये ?

३—सड़कों की उन्नति से गाँव के जीवन पर क्या प्रभाव पडेगा ।

४—कौन से ग्रामीण धन्धे तुम अपने गाँव मे चलाना चाहोगे ? उनके सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक लिखो ।

५—गाँवो मे बेकारी को दूर किस प्रकार किया जा सकता है ?

६—खेत मजदूरों की दशा को सुधारने के लिये क्या किया जाना चाहिये ?

७—भूदान यज्ञ के बारे में क्या जानते हैं ? लिखिए ।

छब्बीसवाँ अध्याय

कृषि-विभाग के कार्य तथा खाद्य-समस्या

सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश में कृषि-विभाग की स्थापना सन् १८७५ ई० में हुई। तत्कालीन लैफ्टीनेन्ट गवर्नर सर जान स्ट्रैचे ने प्रयत्न करके प्रदेश में एक डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर और कामर्स की नियुक्ति करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर को इस आशय की आज्ञा दी गई कि वह प्रदेश के किसानों को नये तरीके से खेती करने के लाभ बतलावें और ऐसी फसलों और छोटे-छोटे धन्धों की उन्नति करने के लिये प्रयोग करें कि जिनके द्वारा किसानों का अधिक लाभ हो। आरम्भ में रेशम के कीड़े पालने तथा रेशम उत्पन्न करने के धन्धे, सन तथा तम्बाकू की ओर अधिक ध्यान दिया गया। उससे पूर्व ही प्रदेश में तीन माडल फार्म थे जो कि नव-निर्मित कृषि-विभाग ने ले लिये। रेशम के कीड़े का एक फार्म देहरादून में खोला गया, तम्बाकू का फार्म गाजीपुर में और फलों का फार्म कुमायूँ की पहाड़ियों पर खोला गया। तम्बाकू और रेशम के फार्म असफल रहे, किन्तु कुमायूँ का फार्म बहुत सफल हुआ। प्रदेशों में आलू और फलों के व्यापार की जो आशातीत उन्नति हुई उसका मुख्य कारण कुमायूँ का फार्म है।

उत्तर प्रदेश के कृषि विभाग को प्रदेश की सड़कों के किनारे पेड़ लगाने का भी कार्य सौंपा गया था जो कि आज तक कृषि-विभाग करता आ रहा है। सन् १८८० में कृषि विभाग ने अपनी एक शाखा स्थापित करके पुराने कुओं के सुधार तथा नयों को खोदने का काम भी अपने हाथ में लिया। वेल बोरिंग ब्रॉन्च (Well Boring Branch) किसी भी किसान को यह सलाह देती है कि इस क्षेत्र में कितनी दूरी पर पानी निकलेगा। यदि किसान चाहे तो वे कुएँ को खोद भी देते हैं।

इनके अतिरिक्त उस समय कृषि-विभाग ने ऊसर भूमि तथा पानी द्वारा कटी भूमि (Eroded Land) को खेती के योग्य बनाने, गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने, कपास के तथा गन्ने के बीज को उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया। यद्यपि गाय और बैलों की उन्नति करने में सीधी सफलता नहीं मिली किन्तु ऊसर भूमि के सुधार होने पर वहाँ चरागाह बन गये जिससे अप्रत्यक्ष

रूप से गाय और बैलों का सुधार हुआ और प्रदेश में डेयरी का धन्धा पनपा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक इसी नीति के अनुसार कार्य होता रहा। इस बीच में केवल दो परिवर्तन हुए। कानपुर कृषि स्कूल खोला गया। बाद को वही स्कूल कृषि कालेज में परिणत हो गया। कृषि-विभाग को अधिक आदमी देकर शक्तिशाली बनाया गया तथा प्रदेश में फार्मों की सख्या बढा दी गई।

सन् १६५० मे भारत सरकार ने घोषणा की कि वह २० लाख रुपये (जो बाद को बढाकर २४ लाख कर दिये गये) प्रति वर्ष प्रदेशों में कृषि विषयक अनुसधान, प्रयोग, प्रदर्शन तथा शिक्षा के लिए देगी। इस सहायता से प्रत्येक प्रदेश में कृषि कालेजों की स्थापना की गई और उनके अध्यापकों के पदों पर भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञ रक्खे गये। इन विशेषज्ञों का कार्य केवल कालेज के विद्यार्थियों को पढाना ही नहीं था वरन् अपने विषय के अन्तर्गत प्रादेशिक समस्याओं को हल करने के लिए अनुसधान करना भी था। उदाहरण के लिए यदि कोई विशेषज्ञ फसल की बीमारियों की शिक्षा देता है तो वह प्रदेश में होने वाली फसलों की बीमारियों के सम्बन्ध मे अनुसंधान भी करता है। प्रत्येक बडे क्षेत्र मे विशेषज्ञों द्वारा बतलाई हुई बातों का प्रयोग करने के लिए एक प्रयोग करने वाला स्टाफ (Experimental staff) रक्खा गया। इसका कार्य फार्मों पर विशेषज्ञों द्वारा बतलाई हुई बातों का प्रयोग करना और उस प्रदेश के लिए उपयोगी सिद्ध होने पर उन बातो का गाँवों मे प्रचार करना है। प्रचार-कार्य उन छोटे-छोटे प्रदर्शन फार्मों (Demonstration Farms) के द्वारा किया जाता है जो कि प्रत्येक जिले अथवा तहसीलों मे स्थापित किए गए हैं।

कृषि-विभाग का सङ्गठन और उसका कार्य

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि कृषि-विभाग का प्रधान अधिकारी डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर होता है। डायरेक्टर विभाग का सारा काम सँभालता है। कृषि विषयक शिक्षा देने के लिए कानपुर में एक प्रथम श्रेणी का कृषि कालेज (Agricultural College) है। कानपुर में कृषि कालेज मे कृषि विषयक उच्च शिक्षा तथा अनुसधान (Research) कार्य भी होता है। बीजों का सुधार, खाद, फसल के कीडे, भूमि तथा सिंचाई सम्बन्धी अनुसधान कार्य इसी कालेज के विशेषज्ञ अध्यापक करते हैं। साधारण कृषि विषयक शिक्षा ग्रामीणों तथा

कृषि विभाग के छोटे कर्मचारियों को देने के लिए प्रदेश में बुलन्दशहर तथा एक-दो अन्य स्थानों पर कृषि स्कूल खोले गए हैं।

समस्त प्रदेश को कुछ सर्किलों में बाँटा गया है। प्रत्येक सर्किल एक डिप्टी डायरेक्टर आफ एग्रीकल्चर की अधीनता मे होता है। उसका मुख्य कार्य अपने क्षेत्र मे स्थित प्रयोग फार्म (Experimental Farms), बीज फार्म (Seed Farms) तथा प्रदर्शन फार्म (Demonstration Farms) का प्रबन्ध करना तथा प्रदर्शन प्लाट्स (Demonstratidn plots) की देखभाल करना है। इनके अतिरिक्त अपने सर्किल में अच्छे बीज और खेती के औजारों को बेचना तथा कृषि सुधार विषयक प्रचार करना भी उसके जिम्मे है। इस कार्य के लिए उसकी अधीनता में इन्सपेक्टर और फील्डमैन रहते हैं जो इस कार्य को करते हैं।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि उत्तर प्रदेशीय कृषि विभाग तीन प्रकार के फार्म रखता है; एक, जिन पर विशेषज्ञों द्वारा अनुसधान की हुई बातों का प्रयोग किया जाता है, दूसरे, जिन पर अच्छा बीज अधिक राशि में उत्पन्न करके किसानो को बेचा जाता है, तीसरे, वे जिन पर अच्छी खेती करने का ढङ्ग किसानों को बताया जाता है।

प्रर्शन फार्म और प्रदर्शन प्लाट (Demonstration Farms and Demonstration plots) का प्रबन्ध फील्डमैन करता है। किसी गाँव में किसी भी किसान को जिस प्रकार फील्डमैन कहे उस प्रकार खेती करने को राजी कर लिया जाता है। फील्डमैन अपनी देख रेख मे किसान से खेती करवाता है। जब उस किसान की फसलें अपने पड़ोसियों की फसलों से अच्छी होती हैं और उसे अधिक लाभ होता है तो गाँव के अन्य किसानों को फील्डमैन की बताई हुई बातों पर विश्वास हो जाता है और वे कृषि-विभाग के द्वारा बताए हुए सुधारों को अपना लेते हैं।

कृषि विभाग अच्छा बीज बेचने और उसको अपने सीड फार्म्स (बीज उत्पन्न करने के फार्म) पर उत्पन्न करने में अपनी बहुत शक्ति लगाता है। गेहूँ, गन्ना, कपास तथा अन्य फसलों के अच्छे बीज तैयार करने मे कृषि-विभाग को बहुत सफलता मिली है। कृषि-विभाग उस अच्छे बीज को अपने फार्म पर तथा अपनी देख-रेख में किसानों के खेतों पर उत्पन्न करता है। किसानों को बीज

बेचने के लिये कृषि-विभाग ने देहातों में बहुत बड़ी सख्या में बीज भडार (Seed Depot) खोले थे जहाँ से किसानों को बीज दिया जाता था। कृषि-साख समितियों, रहन सहन-सुधार समितियों और ग्राम-सुधार आर्गनाइजरों के द्वारा भी कृषि-विभाग किसानों को अच्छा बीज बेचता था। बीज के अतिरिक्त कृषि-विभाग अच्छे हल, कोल्हू तथा खेती के यन्त्र भी बेचता रहा है।

कृषि-सुधार सम्बन्धी आवश्यक बातों का प्रचार तथा प्रदर्शन करने का काम भी कृषि-विभाग को ही करना पड़ता है। कृषि प्रदर्शनियों, मेलो तथा अन्य समारोहों पर कृषि-विभाग अपने कर्मचारियो द्वारा किसानों में प्रचार करता है। जब कहीं फसलों में कीड़ा लग जाता है तो उसको दूर करने के उपाय तथा पशुओं की नस्ल की उन्नति के उपाय भी किसानों को बताये जाते हैं।

कृषि विभाग मुर्गी, गाय, बैल, बकरी तथा अन्य पशुओ की नस्ल को सुधारने तथा खेतों के यन्त्रो मे आवश्यक सुधार करने का भी प्रयत्न करता रहा है। पिछले दिनों मे कृषि-विभाग ने गन्ने की ओर विशेष ध्यान दिया है और यही कारण है कि गन्ने की पैदावार प्रदेश मे अच्छी होने लगी है।

कृषि-विभाग के अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसधान परिषद है जो खेती के सम्बन्ध मे अनुसधान भी करवाया करती है और कृषि विभागों को सलाह-मशविरा देती है। यही नहीं, भारत सरकार को भी खेती के धन्धे के बारे मे क्या नीति बरती जावे इस सम्बन्ध में कौंसिल सलाह देती रहती है। युद्ध के उपरान्त खेती की उन्नति करने की योजना बनाई गई है। खाद, अच्छे हल और पैदावार को बढ़ाने का प्रबन्ध किया जावेगा।

प्रादेशिक विकास योजना
(Provincial Development plan)

अब तक कृषि-विभाग, ग्राम-सुधार विभाग, सहकारी विभाग तथा पशु-विभाग जिलों, तहसीलो और गाँवों मे अपनी खिचड़ी अलग-अलग पकाते थे। उनके जिला और ग्रामीण कार्यकर्त्ताओ मे कोई व्यावहारिक सहयोग नहीं स्थापित हो पाता था। खेती के तल पर किसान और काम करने वालों को उत्तम और टेकनिकल राय और नेतृत्व की आवश्यकता होती है। इसके लिए अफसरों को उपयुक्त ट्रेनिंग देनी पड़ती है और उन्हें काफी वेतन मिलता है।

परन्तु अब तक यह अफ़सर किसान तक नहीं पहुँच पाते थे। इनका अधिकांश समय आफिस की खानापूरी तथा छोटे कर्मचारियों की देख-रेख में ही बीत जाता था। यह अति आवश्यक है कि इस कमी को दूर किया जाय।

अतः अब प्रादेशिक विकास बोर्ड के अतिरिक्त प्रत्येक जिले में एक विकास अफसर नियुक्त किया गया है और प्रत्येक जिले में एक जिला विकास संघ स्थापित हो गया है, जो जिला-विकास-योजना निश्चित करेगा। इन विकास-योजनाओं का एकीकरण प्रादेशिक विकास-बोर्ड करेगा। जिला-विकास-अफसर जिला सघ की मदद करेगा और विकास-योजना को कार्यान्वित करने का कार्य करेगा। उसके नीचे उपयुक्त विभागों के जिला इन्सपेक्टर रहते हैं। प्रत्येक जिले में लगभग पन्द्रह गाँवों के विकास ब्लाक बना लिये गए हैं। इस प्रकार के लगभग ८ सौ ब्लाक बन चुके हैं। अब तक उत्तर प्रदेश के कृषि-विभाग के पास जो ८ सौ बीज स्टोर्स थे वे इन ब्लाक के लिए बनाई गई बहु-ध्येयी सरकारी समिति को दे दिए गए हैं। इन ब्लाकों के अन्दर योजना को कार्य रूप में परिणत करने की जिम्मेदारी इन समितियों पर ही है। जिला उन्नयन अफसर का इन समितियों से सीधा सम्बन्ध है और यह आशा की जाती है कि यह अफसर सब प्रकार के इन्सपेक्टरों को काम की एक योजना के अनुसार व्यवस्थित कर सकेगा। आरम्भ में इस विकास ब्लाक में तालाब की खुदाई, कम्पोस्ट की खाद उत्पादन, वृक्ष लगाने, डेरी की व्यवस्था तथा प्रौढ़ शिक्षा का कार्य किया जायगा।

भारत में खाद्य पदार्थों की कमी

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व, यद्यपि साधारणतः लोग यह समझते थे कि भारतीय कृषि का धन्धा पिछड़ा हुआ है, उसमें उन्नति की आवश्यकता है, प्रति बीघा पैदावार कम होती है। किन्तु उन्हें यह कल्पना भी नहीं थी कि भारत में खाद्य पदार्थों का ऐसा भयंकर टूटा भी हो सकता है कि विदेशों से खाद्य पदार्थ न आने पर यहाँ अकाल पड सकता है और भूख से मनुष्य मर सकते हैं। १९५३ तक देश के सामने अनाज की कमी की भयंकर समस्या खड़ी थी और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये का अनाज विदेशों से मँगाना पड़ रहा था।

बात यह थी कि सन् १९३९ के पूर्व भी देश में यथेष्ट अनाज उत्पन्न नहीं

होता था। शहरों तथा मंडियों में काफी अनाज बिकने को आ जाता था इस कारण किसी को इस कमी का आभास नहीं मिलता था। इसका मुख्य कारण यह था कि खेती की पैदावार का मूल्य बहुत गिरा हुआ था, २॥ और ३ रुपया मन गेहूँ बिकता था और लगान तथा सूद की दर बहुत अधिक थी। अस्तु, किसान को विवश होकर अपनी पैदावार को मंडियों में बेचना पड़ता था। तब जाकर वह लगान और सूद चुका पाता था, परन्तु उसके पास खाने के लिए काफी अनाज नहीं बचता था। वह आधा भूखा रहकर, दिन में एक समय भोजन करके तथा मोटा अनाज खाकर गुजर करता था। गेहूँ तो वह त्योहार तथा पर्वों के समय ही खाता था।

किन्तु आज स्थिति बदल गई है। खेती की पैदावार का मूल्य आकाश छूने लगा है किन्तु लगान, सूद तथा खेती के अन्य खर्चे में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है। अस्तु, इस बात की आवश्यकता नहीं रही कि किसान भूखे रहकर अपना समय काटे और खेत की अधिकांश पैदावार बाजार में बेंच दे। अब वह कुछ अधिक खाने लगा, साथ ही गेहूँ इत्यादि भी बहुधा खाने लगा है। इसका परिणाम यह हुआ कि खाद्य पदार्थों की कमी गाँवों से हट कर शहरों में पहुँच गई। शहरों में खाद्य पदार्थों का टूटा पड़ गया।

इसके अतिरिक्त बर्मा के जापान द्वारा अधिकृत हो जाने तथा स्वतन्त्र हो जाने के उपरान्त वहाँ गृह-युद्ध आरम्भ हो जाने के कारण यहाँ से चावल आना कठिन हो गया। फिर देश के विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान में वह प्रान्त चले गए जो खाद्य-पदार्थों की उत्पत्ति की दृष्टि से बहुत समृद्ध थे और भारत में वह प्रान्त आये जिनमें अनाज की कमी थी। फिर काश्मीर-युद्ध तथा सैनिक आवश्यकताओं के लिए अधिक अनाज भर कर रखने के कारण देश में अनाज का टूटा पड़ गया। कन्ट्रोल की अव्यवस्था, चोर बाजार तथा भ्रष्टाचार के कारण स्थिति और भी भयावह हो उठी।

खाद्य पदार्थों की कमी का अनुभव १९४२ में हुआ। "खाद्य पदार्थ अधिक उत्पन्न करो" आन्दोलन चलाया गया। कपास तथा तिलहन की पैदावार को कम करके अनाज को बढ़ाने का प्रयत्न किया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ भूमि जो पहले कपास पैदा करती थी, अनाज उत्पन्न करने के काम में

आने लगी। "खाद्य-पदार्थ अधिक उत्पन्न करो" आन्दोलन को थोड़ी सफलता हुई परन्तु अधिक सफलता नहीं मिली।

खाद्य-पदार्थों की दृष्टि से जो बहुमूल्य प्रदेश थे वहाँ से अनाज लेकर टूटे वाले प्रदेशों मे अनाज भेजा जाने लगा। साथ ही खाद्य-पदार्थों का राशनिंग भी स्थापित किया गया।

देश में अधिक खाद्य-पदार्थ उत्पन्न करने के लिए बंजर भूमि को जो बेकार पड़ी थी खेती के योग्य बनाने के लिए भारत सरकार ने एक ट्रैक्टर विभाग खोला है। इस केन्द्रीय ट्रैक्टर विभाग से मध्य भारत, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पूर्वीय पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश को ट्रैक्टर दिये गये हैं और हजारों बीघा भूमि को खेती के योग्य बनाया जा रहा है।

भारत सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों ने मिलकर खाद बनाने के दो बड़े कारखाने स्थापित करने का निश्चय किया है। जो ४॥ लाख टन खाद उत्पन्न करेंगे। एक बड़ा कारखाना सिंदरी (बिहार) में ३८ करोड़ रुपये की लागत से स्थापित किया गया है जो अब खाद बनाने लगा है।

पंचवर्षीय योजना

भारत सरकार ने देश की गरीबी मिटाने के लिये जो पचवर्षीय योजना स्वीकार की है उसमे खेती की उत्पत्ति को बढाने का नीचे लिखा कार्यक्रम है।

बड़ी-बड़ी सिंचाई योजनाओं (जैसे दामोदर, हीराकुड, भाखरा, नानगल इत्यादि) मे ८५ लाख एकड़ नई भूमि सींची जावेगी और छोटी सिंचाई योजनाओं (तालाब, ट्यूबवेल तथा साधारण कुओं) से ११२ लाख एकड़ नई भूमि सींची जावेगी। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय ट्रैक्टर विभाग की सहायता से ५५ लाख एकड़ परती तथा बंजर भूमि पर खेती की जावेगी। सिंदरी (बिहार) का खाद का कारखाना बन जाने से खाद की सुविधा तो हो ही गई है।

इन प्रयत्नों के फलस्वरूप खेती की पैदावार में सन् १९५६ तक नीचे लिखी वृद्धि होगी।

खाद्यान्न (अनाज)	८६ लाख टन
जूट (पटसन)	२१ लाख गाँठें
कपास	१२ लाख गाँठें

तिलहन	४ लाख टन
गुड़	६ लाख ६० हजार टन

पञ्चवर्षीय योजना के कार्यान्वित होने के कारण खाद्यान्न, जूट, (पटसन) कपास (छोटे फूल वाली) तिलहन और गुड का उत्पादन बढ़ा है। जहाँ तक खाद्यान्न का प्रश्न है १६५४ में ही हमने निर्धारित ध्येय को पूरा कर लिया है और भारत खाद्यान्न की दृष्टि से स्वालम्बी हो गया है। पञ्चवर्षीय योजना के १६५६ तक पूरा होने पर शक्कर, जूट और जहाँ तक छोटे फूल वाली कपास का प्रश्न है देश स्वावलम्बी हो जावेगा और तिलहन का थोड़ा अधिक निर्यात हो सकेगा।

कृषि-अनुसधान-परिषद का मत है कि देश में लगभग ३० प्रतिशत जन-सख्या को पूरा भोजन नहीं मिलता और जो भोजन भारतीय जनता को मिलता है न तो वह यथेष्ट है और न पुष्टिकर। अतएव खाद्य-पदार्थों में नीचे लिखी वृद्धि आवश्यक है। अनाज मे १० प्रतिशत, दालों मे २० प्रतिशत, घी-तेल इत्यादि में २५.० प्रतिशत, फलों में ५० प्रतिशत सब्जी में १०० प्रतिशत, दूध में ३०० प्रतिशत, अडे और मछली में ३०० प्रतिशत तथा चारे में ५५ प्रतिशत।

सामूहिक विकास योजना

भारत में ग्रामों के विकास तथा खाद्यान्नों का अधिक उत्पादन करने के लिये तथा ग्रामवासियों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा करने के लिये भारत सरकार ने सामूहिक विकास-योजना कार्यक्रम को स्वीकार किया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में सामूहिक विकास-केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं। इस सामूहिक विकास-योजना कार्य क्रम का प्रभाव १७,५०० गाँवो और लगभग एक करोड़ बीस लाख ग्राम-वासियों पर पडेगा। इस कार्य पर ६० करोड रुपया व्यय होगा।

भारत सरकार इस सामूहिक विकास-योजना कार्यक्रम को सयुक्तराष्ट्र अमेरिका की आर्थिक सहायता तथा फोर्ड प्रतिष्ठान की सहायता से कर रही है। अमेरिका ने केवल आर्थिक सहायता ही प्रदान नहीं की है वरन् टेकनिकल सलाहकार भी दिये हैं जो कि इस समय सामूहिक विकास-योजना कार्यक्रम को सफल बनाने में भारत सरकार को सहायता दे रहे हैं।

इस सामूहिक विकास योजना कार्यक्रम में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि ग्रामवासी यह अनुभव न करें कि उन्हें सुधारों को अपनाने के लिये

विवश किया जा रहा है अथवा उन्हें उन पर लादा गया है। वस्तुतः सारे कार्य-क्रम का सचालन इस ढङ्ग से किया जावेगा जिससे ग्रामवासी स्वयं ही इस कार्य-क्रम मे सक्रिय भाग लें। उन्हें स्वय करने अथवा अनुभव बढ़ाने और वैयक्तिक सफलता और उन्नति की भावना को जाग्रत करने के लिये प्रोत्साहित किया जावेगा।

प्रस्तावित कार्यक्रम में तीन प्रकार की योजनायें होंगी।

प्रस्तावित कार्यक्रम का लक्ष्य स्थूल रूप से प्रत्येक ग्राम में निम्न प्रकार होगा।

पीने के लिए पानी की व्यवस्था करने के लिये दो कुएँ अथवा अन्य कोई व्यवस्था करना। जहाँ नल कूप (ट्यूब वेल) खोदे जा सकते हैं वहाँ सिचाई के लिये ट्यूब वेल खोदे जायेंगे। अन्य प्रदेशों मे सिंचाई के लिये नहरों, तालाबों तथा कुओं का निर्माण कराया जावेगा जिससे कि गाँव की कम से कम आधी भूमि के लिये सिंचाई की व्यवस्था ठीक हो जावेगी। इसके अतिरिक्त यथासम्भव अधिक से अधिक परती भूमि पर खेती की जावेगी! गाँवों में सफाई रखने और पानी निकालने की नालियों का प्रबन्ध किया जावेगा। एक गाँव से दूसरे गाँव को मिलाने वाली सड़कें बनाई जावेंगी और प्रौढ़ शिक्षा की सुविधाएँ दी जावेंगी। एक प्राइमरी स्कूल बच्चों के लिये प्रत्येक गाँव में स्थापित किया जावेगा।

इस कार्यक्रम में कृषि-उन्नति पर विशेष बल दिया जावेगा। यह कार्य ग्राम-कार्यकर्त्ताओं (जिनको ट्रेनिंग दी जावेगी) द्वारा किया जावेगा। वे ग्रामीणों को आधुनिक कृषि उपकरणों, उत्तम बीज, खेत की खाद, हरी खाद की फसलों, रसायनिक खाद और सीधे-सादे औजारों से काम लेने की विधियाँ बतलावेंगे।

प्रत्येक १५ या २० गावो में जहाँ कोई मडी नहीं है वहाँ एक मडी खोली जावेगी। इस मडी में एक दवाखाना और स्वास्थ्य केन्द्र होगा जिसका लाभ एक चलते फिरते औषधालय के रूप मे दूर दूर तक के ग्रामों को मिल सकेगा। उसके साथ स्वास्थ्य-निरीक्षक, दाइयाँ तथा सफाई निरीक्षक भी होंगे। मडी में पशुओं का दवाखाना तथा गाड़ियों और ट्रैक्टरों की मरम्मत के अलावा, खेती की पैदावार की खरीद-बिक्री तथा खेती की पैदावार को सुरक्षित रखने के लिए गोदाम बनाने की व्यवस्था की जावेगी। एक मिडिल स्कूल होगा।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस कार्यक्रम के द्वारा पाँच वर्षों में इन

गाँवों में खाद्य उत्पादन में ५० प्रतिशत की वृद्धि होगी और प्रत्येक गाँव की नकद आमदनी में ३५ प्रतिशत की वृद्धि हो सकेगी जिसके फलस्वरूप ग्रामवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा होगा और खाद्य-पदार्थों की कमी की समस्या हल हो सकेगी। उत्तर-प्रदेश में सामूहिक विकास योजना इटावा, आजमगढ़, बलिया, गाजीपुर, गोरखपुर, देवरिया, फैजाबाद, मैनपुरी, झाँसी, अल्मोड़ा तथा चार और जिलों में चालू है।

१०० गाँवों का एक डेवलपमेंट ब्लाक होगा। डेवलपमेंट ब्लाक केन्द्र में वाटरवर्क्स, बिजली, तार, टेलीफोन, हाई स्कूल, कृषि विद्यालय, अच्छा चिकित्सालय, कृषि यन्त्र तथा ट्रैक्टर इत्यादि किराये पर देने तथा उनकी मरम्मत करने के लिए वर्कशाप, पशु-चिकित्सालय, गृह-उद्योग-धन्धों की शिक्षा देने वाला केन्द्र, यातायात की सुविधा, हल, बीज, खाद, तथा कृषि-सुधार केन्द्र आदि रहेंगे।

३ डेवलपमेंट ब्लाक की एक सामूहिक अथवा सामुदायिक योजना होगी। उसके अन्तर्गत ३०० गाँव होंगे। सामुदायिक योजना केन्द्र में डेवलेपमेंट ब्लाक में होने वाली सुविधाओं के अतिरिक्त अनुसंधान और खोज का कार्य होगा। खेती, पशु, इत्यादि के सम्बन्ध में जो भी समस्या उत्पन्न होगी उसको विशेषज्ञ हल करने का प्रयत्न करेंगे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गाँव की सारी समस्याओं को हल करने का सामुदायिक योजना में एक साथ प्रयत्न किया गया है। गाँवों में एक ग्राम-सेवक रहेगा जो कि गाँवों से सम्बन्धित प्रत्येक विभाग से गाँव की समस्याओं के हल कराने का प्रयत्न करेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—उत्तर-प्रदेश में कृषि विभाग कब खोला गया और आरम्भ में उसने क्या काम किया?

२—आजकल किसान की भलाई के लिए प्रदेश में कृषि विभाग कौन कौन से कार्य करता है? (१९५४)

३—प्रदेश में कृषि शिक्षा का कहाँ-कहाँ प्रबन्ध है और इन कृषि-स्कूलों और कालेजों से क्या लाभ है?

४—कृषि-विभाग के स्थापित होने से प्रदेश में खेती की क्या उन्नति हुई है

समाज विकास क्षेत्र और प्रशिक्षण केन्द्र
नेपाल
भूटान
बर्मा
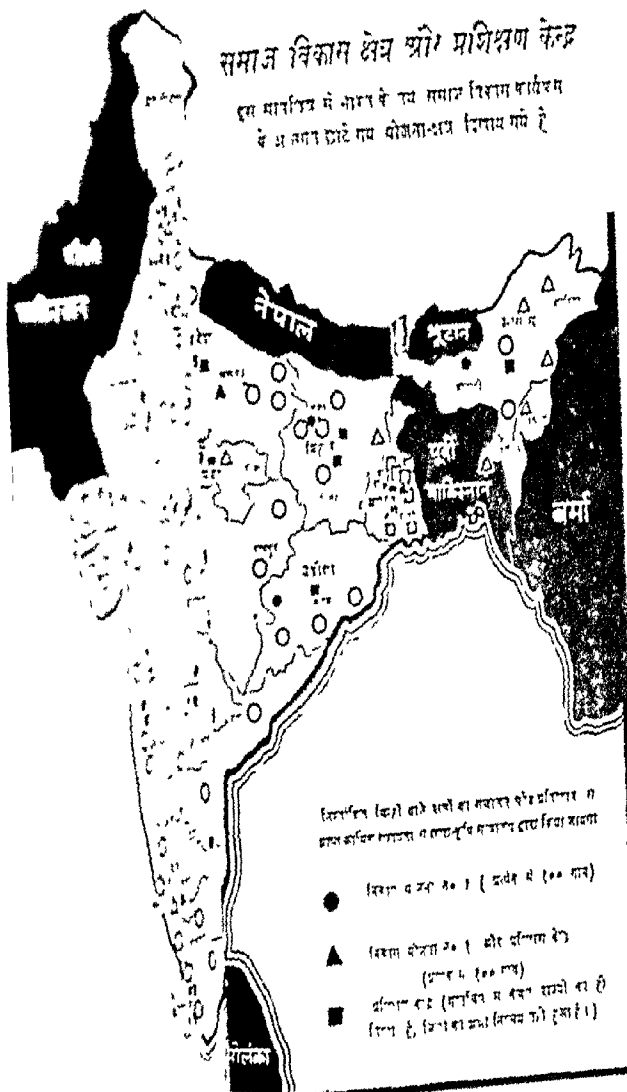
५—कृषि-विभाग अपने कर्मचारियों द्वारा किये गये आविष्कारों का प्रचार किस प्रकार करता है ?

६—अच्छे बीज पैदा करने और उसके बेचने का प्रबन्ध इस प्रदेश मे कैसा है ?

७—कृषि प्रदर्शनियो की क्या उपयोगिता है।

८—भारत में खाद्य-पदार्थों का जो अभाव है उस पर एक नोट लिखिए।

९—सामूहिक योजनाओं के बारे में आप क्या जानते हैं ? लिखिए।

सत्ताइसवाँ अध्याय

ग्राम और जिले का शासन

अब हम ग्राम और जिले का किस प्रकार शासन होता है, इस पर विचार करते हैं। अधिकाश गाँवों की दशा खराब है, पढ-लिख कर सुयोग्य हो जाने पर लोग जाकर शहरों में बस जाते हैं, वे ग्रामों का ध्यान नहीं रखते। इसी से ग्रामों की सफाई, रहन-सहन आदि मे यथेष्ट उन्नति नहीं हो पाती। देश का जो भला चाहते हैं उन्हे गाँवों की समस्याओं का सहानुभूति पूर्वक अध्ययन करना चाहिये।

ग्राम-शासन : ग्राम के मुख्य कर्मचारी

हर गाँव में तीन कर्मचारी होते हैं—मुखिया, पटवारी या लेखपाल और चौकीदार। लेखपाल या पटवारी किसानों से लगान तथा सिंचाई (आबपाशी) की रकम वसूल करता है, और उसे तहसील मे जमा कर देता है।

मुखिया

गाँव के किसी प्रभावशाली व्यक्ति को मुखिया बना दिया जाता है। मुखिया गाँव की घटनाओं का चौकीदार के द्वारा पुलिस में रिपोर्ट करवाता है। उसका तहसील से भी सम्बन्ध होता है। दौरे के समय वह राज्य कर्मचारियों के साथ सहयोग करता है।

पटवारी या लेखपाल

बडे गाँव में एक ही गाँव का, और छोटे-छोटे गाँवों मे दो-दो या अधिक

का, एक पटवारी (या लेखपाल) होता है। वह अपने गाँव के किसानों के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज तथा रजिस्टर आदि रखता है। जब खेती में कोई तबदीली हो, कोई खेत या उसका हिस्सा बिक जावे, या किसी खेत का मालिक बदल जावे या मर जावे तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है। वह खेतों के नक्शे बनाता है। वह लगान का हिसाब किताब रखता है। खेतों में कितनी पैदावार हुई है, कितनी भूमि पर अमुक फसल उत्पन्न की गई है, गाँव में कितने पशु हैं, इनके आँकडे भी पटवारी ही रखता है। लेखपाल एक जगह से दूसरी जगह भेजे जा सकते हैं। उन्हें अब कागजात के काम गाँव-सभा के निरीक्षण में करना पडेगा और पहले की सी कानूनी आजादी नहीं है। उनको अधिक वेतन और भत्ते की सुविधा भी दी जाएगी। अतः अब पटवारी या लेखपाल का भ्रष्टाचार कम हो जाएगा।

चौकीदार

चौकीदार गाँव में पहरा देता है और चौकसी करता है। यह पुलिस में प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गाँव मे उस सप्ताह के भीतर कितने आदमी मरे, कितने बच्चों का जन्म हुआ, वह गाँव की चोरी, मारपीट तथा अन्य अपराधों की रिपोर्ट करता है।

तहसीलदार

ऊपर बतलाये हुए गाँवों के कर्मचारी तहसील के अधीन होते हैं। तहसीलदार अपनी तहसील का प्रधान अधिकारी होता है। तहसीलदार के सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, कानूनगो इत्यादि होते हैं। प्रत्येक कानूनगो को एक परगना दे दिया जाता है, वह उस परगने के पटवारियो के काम की देखभाल करता है। तहसीलदार प्रजा और अपने से ऊपर के अधिकारियों को एक दूसरे के सम्बन्ध मे आवश्यक सूचना देता रहता है। उसका मुख्य कार्य तहसील की लगान वसूल करना है, जिसे वह अपने सहायक कानूनगो की सहायता से वसूल करता है। तहसीलदार फौजदारी के मामले भी सुनता है। उसे तीसरे या दूसरे दर्जे की मजिस्ट्रेटी* के अधिकार भी होते हैं। वह पचास से

*मजिस्ट्रेट—वह कर्मचारी जिसे शासन तथा न्याय सम्बन्धी कुछ अधिकार प्राप्त हों।

लेकर दो सौ तक जुर्माना और एक माह से छः माह तक की कैद की सजा दे सकता है। इन राज्य कर्मचारियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे विभाग हैं जिनका गाँव के शासन से तो कोई सम्बन्ध नहीं है वरन् गाँव की भलाई करना जिनका कर्त्तव्य है। इन विभागों के कर्मचारियों का भी गाँव से सम्पर्क रहता है, उदाहरण के लिये आबपाशी, कृषि-विभाग, सहकारिता विभाग, ग्रामसुधार विभाग तथा स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी। इन कर्मचारियों का गाँव की सेवा करना मुख्य कार्य है।

देहाती बोर्ड और जिला कौंसिल

देहातों में प्रारम्भिक शिक्षा और स्वास्थ्य आदि का कार्य करने वाली मुख्य संस्थाएँ बोर्ड कहलाती हैं। इनके तीन भेद हैं। किसी-किसी प्रदेश में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं और कहीं-कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं।

१—लोकल बोर्ड—यह कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिवीजनल-बोर्ड—यह एक ताल्लुके या सब-डिवीजन में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देखभाल करता है।

३—जिला बोर्ड—इसे किसी प्रदेश में जिला कौंसिल भी कहते हैं, यह एक जिले में होता है और जिले भर के लोकल-बोर्डों (या ताल्लुका बोर्डों) का निरीक्षण करता है।

इन बोर्डों का संगठन कुछ म्युनिसिपैलिटियों की ही भाँति होता है। यद्यपि बोर्डों में अधिकतर चुने हुए सदस्य ही होते हैं, तथापि कहीं-कहीं नामजद सदस्य भी काफी होते हैं। किस जिला-बोर्ड में कितने सदस्य हों तथा उसका सभापति चुना हुआ रहे या नियुक्त किया जावे, यह प्रत्येक प्रदेश के जिला बोर्ड कानून से निश्चित किया हुआ है। उत्तर प्रदेश में सभापति चुना हुआ एवं गैर सरकारी होता है।

निर्वाचक और सदस्य

जिला बोर्डों के लिए निम्नलिखित व्यक्ति निर्वाचक या मतदाता नहीं हो सकते —(क) जो स्वतन्त्र भारत की प्रजा न हों, (ख) जो अदालत से पागल ठहराये गये हों और (ग) जो इक्कीस वर्ष से कम के हों। इन्हें छोड़कर साधारणतया ऐसा प्रत्येक व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) निर्वाचक हो सकता है जो कि लगान अथवा

कर देता हो शिक्षित हो। शिक्षा कौन से दर्जे तक हो यह भी निश्चित है।

निर्वाचकों को चाहिये कि खूब सोच-समझ कर वोट दें। उन्हें ऐसे उम्मीदवार को ही अपना वोट देना चाहिए जो कि गाँव वालों की सच्ची सेवा करना चाहता हो और सदस्य बनने के सर्वथा योग्य हो और जिससे गाँवों का विशेष हित होने की आशा हो। किसी स्वार्थवश वा किसी प्रकार के लिहाज के कारण अयोग्य आदमियो को कभी वोट न देना चाहिये।

बोर्ड के चुनाव के लिये जिले को भिन्न-भिन्न निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से एक सदस्य बोर्ड में जाता है। बोर्ड के सदस्य गाँव के हित के लिए बहुत कुछ काम कर सकते ह, उन्हें गाँव वालो की सेवा का बहुत अवसर मिलता है। यदि सच्चाई और ईमानदारी से सदस्य ग्रामवासियों की सेवा करना चाहें तो वे बहुत कुछ कर सकते हैं। अतएव उन्हीं लोगों को चुनाव के लिए उम्मेदवार खड़ा होना चाहिए जो योग्य हों, और समय देकर गाँव वालो की सेवा करना चाहें।

जिला बोर्ड के कार्य

बोर्ड का कर्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र मे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि के अतिरिक्त कृषि और पशुओं की उन्नति करना है। इस प्रकार इनके मुख्य कार्य ये हैं :—१ सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना। उन पर पेड़ लगवाना और उन पेड़ो की रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार और प्रबन्ध करना (देहातो में प्राइमरी या मिडिल स्कूल जिला बोर्ड के ही होते हैं)। ३—चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिए पशु चिकित्सालय की व्यवस्था करना ४—बाजार, मेला, नुमाइश था कृषि-प्रदर्शनी का प्रबन्ध करना। ५—पीने के लिये तालाब या कुएँ खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—काँजी हौस अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि की हानि करने वाले जानवर रोक रखे जाते हैं। जिस आदमी का पशु नुकसान करते है वह उन्हें काजी हौस भेज देता है। जब पशु का मालिक उसे लेने जाता है तो उसे निर्धारित जुर्माना देना पड़ता है। ७-घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना।

जिला बोर्डों की आय

स्वतन्त्र भारत में बोर्डो के क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या इक्कीस करोड़ से भी अधिक है। उपर्युक्त कार्यों तथा इस जनसंख्या को देखते हुए उनकी कुल वार्षिक आय जो लगभग सोलह करोड़ रुपये है बहुत कम है। यह अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया गया है और जो सरकारी वार्षिक लगान के साथ ही प्राय एक आना या अधिक फी रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इनके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिये सरकार बोर्डों को कुछ रकम कुछ शर्तों पर प्रदान करती है। आय के अन्य साधन, तालाब, घाट, सड़क पर महसूल, पशु-चिकित्सा और स्कूल की फीस, काँजी हौस की आमदनी, मेले, नुमाइशों पर कर तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमिकर हैं। प्राय. लोकल बोर्डों की कोई स्वय की आय नहीं होती। उन्हें समय पर जिला बोर्डो से ही कुछ रुपया मिल जाता है। वे उस रुपये को जिला बोर्ड की इच्छा या सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

सरकारी नियंत्रण

डिप्टी कमिश्नर (या कलेक्टर) अथवा कमिश्नर इनके काम की देख-भाल करते हैं। कलेक्टर को इनके सम्बन्ध मे बहुत अधिक अधिकार हैं। जब वह समझे कि जिला बोर्ड का कोई काम या कोई प्रस्ताव आदि ऐसा है जिससे सार्वजनिक हित की हानि होती है तो वह उस काम को बन्द कर सकता है तथा उस प्रस्ताव को अमल में लाये जाने से रोक सकता है। यदि प्रदेशीय सरकार यह समझे कि कोई बोर्ड अपना कार्य ठीक तरह से नहीं करता तो वह उसे तोड सकती है। उस दशा में बोर्ड में नया चुनाव होता है। उत्तर-प्रदेश की सरकार जिला बोर्डों के सम्बन्ध में एक नया कानून बनाने जा रही है। उसके अनुसार बोर्डों के कार्य में कलेक्टर या कमिश्नर को हस्तक्षेप करने का भविष्य में अधिकार नहीं रहेगा और न बोर्ड में नामजद सदस्य ही रक्खे जावेंगे। स्वायत्त शासन विभाग का मन्त्री (Minister Local Self Government) ही बोर्डों का नियन्त्रण करेगा।

नागरिक भावों की आवश्यकता

हमें यह भी भली-भाँति समझ लेना चाहिये कि यदि हमारे गाँव में अशिक्षा,

गन्दगी और लड़ाई-झगड़ा रहेगा तो हमारी उन्नति कभी नहीं हो सकती। अतएव हमें अपने गाँव और जिले की भलाई का ध्यान रखना चाहिये। अस्तु, प्रत्येक गाँव के व्यक्ति को जिला बोर्ड के काम में दिलचस्पी लेनी चाहिये और यह देखते रहना चाहिये कि निर्वाचित सदस्य गाँवों की भलाई के लिये क्या-क्या कार्य कर रहे हैं! जब मतदाता (वोटर) इतने सतर्क रहेंगे तभी बोर्ड अधिक उपयोगी प्रमाणित हो सकेगा।

जिले का शासन

यह तो हम पहले ही बतला चुके हैं कि ग्राम के कर्मचारी तहसीलदार के अधीन होते हैं। तहसीलदार सब-डिवीजनल अफसर के अधीन और सब डिवीजनल अफसर जिला मजिस्ट्रेट (कलेक्टर) के अधीन होते हैं। जिला मजिस्ट्रेट को पूर्वी पजाब, तथा मध्यप्रदेश में डिप्टी कमिश्नर कहते हैं और शेष प्रदेशों में कलेक्टर कहते हैं।

मद्रास प्रदेश को छोड़कर अन्य प्रदेशों में कुछ-कुछ जिलों की एक कमिश्नरी है। उसका प्रधान अधिकारी कमिश्नर कहलाता है। यह अपनी कमिश्नरी के जिलों के प्रबन्ध की देखभाल करता है। अब हम जिले का शासन कैसे होता है इसका वर्णन करते हैं।

शासन-व्यवस्था मे जिले का स्थान

स्वतंत्र भारत में कुल मिलाकर करीब २५० जिले हैं। जिलों का क्षेत्रफल, जनसंख्या और सरकारी आय भिन्न-भिन्न है। तथापि राज्य की कल जैसी एक जिले मे चलती हुई दिखाई देती है वैसी प्राय. अन्य जिलों में भी है। जैसे अफसर एक जिले में काम करते है वैसे ही औरों में भी हैं। जनता के काम-काज का केन्द्र जिला होता है। ग्रामीण जो अधिकतर प्रवासभीरु होते हैं उन्हें भी जिलों में काम पड़ता है। जिले के शासन-प्रबन्ध को देख कर ही देश के शासन का अनुमान किया जा सकता है।

जिला मजिस्ट्रेट के कार्य

प्रत्येक जिले का प्रधान जिला मजिस्ट्रेट कहलाता है। उसे कलेक्टर या डिप्टी कमिश्नर भी कहते हैं। उस पर जिले की मालगुजारी वसूल करने की जिम्मेदारी होती है। इसलिये उसे कलेक्टर कहते हैं। अपने जिले की भूमि

सम्बन्धी मामलों पर विचार करता है, सरकार और प्रजा के सम्बन्ध का ध्यान रखता है, और किसानों आदि के झगड़ों का फैसला करता है। दुर्भिक्ष, बाढ़ तथा फसल के नष्ट हो जाने पर अथवा अन्य आवश्यकताओं के समय कृषकों को सरकारी सहायता उसकी सम्मति के अनुसार ही मिलती है। जिले के खजानों का यही उत्तराधिकारी है।

उसे म्युनिसिपैलिटियों तथा जिला बोर्ड की निगरानी का अधिकार है। उसे अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट के भी अधिकार प्राप्त हैं जिससे वह एक अपराध पर दो साल की कैद और एक हजार रुपये तक जुर्माना कर सकता है। जिले की सब प्रकार की सुख-शान्ति का यही उत्तरदाता है। वही स्थानीय पुलिस की नगरानी भी करता है। इस बात का निश्चय करने में कि कहाँ पुल, सड़क, इत्यादि बनने चाहिये, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए, तथा जिले के किन-किन स्थानों को स्थानीय स्वराज्य मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रामाणिक मानी जाती है। जिले में जिस बात का प्रबन्ध ठीक न हो उसका सुधार करना, और हर एक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्त्तव्य है। जिले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहात में दौरा करना होता है।

जिले के अन्य कर्मचारी

जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, जैसे शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, मालगुजारी वसूल करना, सड़क, पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना रोगियों का इलाज करना, म्युनिसिपैलिटी, जिला बोर्डों की निगरानी रखना, जेलखाने और स्कूलों का निरीक्षण करना। इन विविध कार्यों के लिए जिले में कई अफसर रहते हैं, जैसे स्कूल के डिप्टी इन्सपेक्टर या पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट या पुलिस कप्तान, अस्पताल का सिविल सार्जन, जेलों का सुपरिन्टेन्डेन्ट, निर्माण कार्य के लिए एग्जीक्यूटिव इन्जीनियर और न्याय कार्य के लिए जिला जज आदि होते हैं। ये अफसर अपने पृथक्-पृथक् विभागों के कर्मचारियों के आधीन होते हैं। परन्तु शासन के विचार से जिला जज और मुंसिफ आदि को छोड़कर सब पर जिला मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है।

जिला मजिस्ट्रेट के कार्य में सहायता देने के लिये डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट भी रहते हैं।

प्रायः प्रत्येक जिले के कुछ भाग होते हैं जिन्हें सब डिवीजन कहते हैं। हर एक सब-डिवीजन एक डिप्टी कलेक्टर अथवा अतिरिक्त असिस्टेंट कमिश्नर के अधीन रहता है। सब डिवीजनों के अफसरों के अधिकार जिला मजिस्ट्रेट की भाँति होते हैं।

कमिश्नर

पहिले कहा जा चुका है कि मद्रास प्रदेश को छोड़कर प्रत्येक बड़े प्रदेश में कुछ कमिश्नरियाँ होती हैं। इनके प्रधान अफसर को डिवीजनल-कमिश्नर या कमिश्नर कहते हैं। वह शासन सम्बन्धी कोई विशेष कार्य नहीं करता है। केवल अपने अधीन जिला अफसरों के कार्य की जाँच परताल करता है। जिलों से जो रिपोर्ट या पत्र आदि प्रदेशीय सरकार के पास जाते हैं वे सब कमिश्नर के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नर माल (रेवन्यू) के मुकदमों की अपील सुनता है। लगान के बन्दोबस्त में इसका काम केवल परामर्श देना है, पर विशेष दशाओं में उसे लगान की वसूली रोकने का अधिकार है।

कमिश्नरों को अपनी अपनी म्युनिसिपैलिटियों के काम देखने-भालने के भी कुछ अधिकार होते हैं। परन्तु उनका विशेष सम्बन्ध लगान के प्रबन्ध के लिये होता है। पूर्वी पंजाब और मध्य प्रदेश में सर्वोच्च अधिकारी फाइनेंशियल कमिश्नर है और उत्तर-प्रदेश, बिहार और बंगाल में रेवन्यू बोर्ड है। रेवन्यू बोर्ड में एक से लेकर चार मेम्बर होते हैं। फाइनेंशिशल कमिश्नर और रेवन्यू बोर्ड कमिश्नरों और कलेक्टरों के कार्य की देखभाल करते हैं। माली मामलों में यह कमिश्नरों के निर्णय के विरुद्ध अपील भी सुनते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गाँव के मुख्य कर्मचारी कौन से होते हैं और वे क्या कार्य करते हैं ?

२—तहसीलदार और उसके अधीन कर्मचारी क्या काम करते हैं ?

३—जिला बोर्ड किसे कहते हैं और वह कैसे बनता है ?

४—जिला बोर्ड क्या-क्या काम करता है ?

५—जिला बोर्ड के पास खर्च करने के लिए रुपया कहाँ से आता है ?

६—यदि तुम कभी अपने जिला-बोर्ड के चेयरमैन चुने जाओ और बहुमत तुम्हारे पक्ष में हो तो तुम गाँवों की दशा सुधारने के लिए क्या करोगे ?

७—जिले का शासन किस प्रकार चलता है? पटवारी या मुखिया का इसमें क्या स्थान है ? (१९४३)

८—जिला मजिस्ट्रेट और कमिश्नर क्या काम करते हैं ?

९—गाँव वालों का कौन से सरकारी विभाग से अधिक काम पड़ता है ?

१०—अपने जिले की शासन-व्यवस्था का विशद वर्णन कीजिये। ग्रामीणों लिये चौकीदार, पटवारी और तहसीलदार का क्या काम और महत्व है ?(१९४५)

११—जिला बोर्ड जनता की सेवा के लिए क्या करते हैं ? उनकी आय के लिए क्या साधन हैं ? (१९५२)

अट्ठाइसवाँ अध्याय

ग्राम-पंचायत

यद्यपि गाँव की दशा अत्यन्त गिरी हुई है और हानिकारक रूढ़ियों के कारण उनकी दशा और भी खराब हो गई है, फिर भी गावों में सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी अच्छाइयां हैं जो आज भी नष्ट नहीं हुई हैं। यदि गाँव की उन अच्छी रस्मों के आधार पर गाँव में कार्य किया जावे तो वहाँ बहुत कुछ सुधार हो सकता है। गाँवों के सामाजिक जीवन का अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि गाँव वालों के पारस्परिक सम्बन्ध को समझ लिया जावे।

गाँव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध

गाँव में भ्रातृभाव तथा सहयोग की भावना अब भी बहुत कुछ अंशों में शेष है। सारा गाँव एक बड़े कुटुम्ब के समान होता है और समय पड़ने पर सब लोग एक दूसरे की सहायता के लिए तैयार रहते हैं।

यदि किसी किसान के यहाँ लड़की का विवाह होता है तो गाँव भर के लोग अनाज, लकड़ी, दही, दूध तथा टीके के रुपयों से उसकी सहायता करते हैं। विवाह का सारा कार्य बिरादरी तथा गाँव की अन्य स्त्रियाँ मिलकर कर लेती हैं। पुरुष भी बारात की सेवा में भरसक सहायता देते हैं। खेतों की बोवाई,

सिंचाई और कटाई के समय भी किसान एक दूसरे का काम करते हैं जिससे कि काम हलका हो जाता है। प्रत्येक बिरादरी की एक पञ्चायत होती है, जो कि अपनी बिरादरी के सामाजिक जीवन का नियन्त्रण करती है। किसी-किसी प्रदेश में जहाँ कि पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा है, गाँव का सारा आर्थिक और सामाजिक संगठन ही सहयोग के आधार पर खड़ा हुआ मिलता है। राजपूताने के गाँवों में सिंचाई के लिए गाँव के तालाब की मरम्मत गाँव के प्रत्येक पुरुष और गाँव की बहू (गाँव की लड़कियाँ इस श्रम से मुक्त हैं) को करनी पड़ती है। गाँव के मन्दिर के व्यय के लिए घर पीछे पाव भर रुई, सवा सेर तेल और छटाँक भर घी लिया जाता है। गाँव के झगड़ों का फैसला पञ्चायत करती है, और शिक्षा तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए ग्राम-पञ्चायत घर पीछे कर उगाहती है। एक प्रकार से सारा स्थानीय शासन ही गाँव की पञ्चायत करती है। गाँव के लोग फिर चाहे वे भिन्न-भिन्न जातियों के ही क्यों न हों एक दूसरे को अपने भाई के समान ही मानते हैं। एक क्षत्रिय का लड़का भी एक कहार को जो उससे आयु में बड़ा है चाचा या दादा कहकर पुकारता है। पहले तो गाँवों का जीवन सुन्दर, मधुर और सहयोग का आदर्श जीवन था। किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमी सभ्यता के मूल आधार व्यक्तिवाद* (Individualism) के प्रभाव के कारण तथा आर्थिक और सामाजिकपन के कारणों से गाँवों का यह सुन्दर सामाजिक संगठन नष्ट होता जा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि गाँवों को इन अच्छी रस्मों और भ्रातृभाव को नष्ट होने से बचाया जावे और गाँवों को नवजीवन प्रदान किया जावे।

गाँवों की संस्थाएँ और उनका महत्व

भारतीय ग्रामों की मुख्य संस्था पञ्चायत थी। ब्रिटिश शासन से पूर्व पञ्चायत वस्तुतः गाँव का शासन करती थी और प्रत्येक गाँव इस दृष्टि से स्वावलम्बी था। ब्रिटिश शासन काल में उनका महत्व जाता रहा। पञ्चायत के विषय में नीचे विस्तारपूर्वक लिखा जाता है। भविष्य में सम्भवतः पञ्चायतें फिर महत्वपूर्ण हो जावेंगी।

---

*व्यक्तिवाद—इस सिद्धान्त को मानने वाले केवल अपने स्वार्थों की ओर ही ध्यान देते हैं।

दूसरी महत्वपूर्ण संस्था जो किसी किसी गाँव में पाई जाती है वह है सहकारी समिति। सहकारी समितियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। साख-समिति, उत्पादक समिति, क्रय विक्रय-समिति, रहन-सहन सुधार समिति तथा उपभोक्ता भंडार-समिति इत्यादि। सहकारी समितियाँ गाँव वालों को ऋण देने तथा उनकी आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने का प्रयत्न करती हैं। इनके विषय में सहकारिता के अध्याय में विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

थोड़े दिनों से गाँवों में प्रदेशीय सरकारों की ओर से ग्राम-सुधार का कार्य हो रहा है। जिस गाँव को ग्राम सुधार कार्य के लिये छाँटा जाता है वहाँ एक ग्राम-सुधार पञ्चायत का चुनाव कर लिया जाता है। आर्गनाइजर इन पञ्चायतों के सहयोग तथा परामर्श से ग्राम-सुधार का कार्य करते हैं।

इनके अतिरिक्त किसी किसी गाँव में स्वतन्त्र पञ्चायतें होती हैं जो पुरानी पञ्चायतों के अवशेष चिह्न मात्र होती हैं। वे सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं होती हैं, परन्तु गाँव के सार्वजनिक कार्यों की देखभाल करती हैं तथा उन पर नियन्त्रण रखती हैं। गऊशाला, मन्दिर, प्याऊ तथा कहीं-कहीं पाठशालाओं को भी ये पञ्चायतें चलाती हैं। परन्तु इस प्रकार की भी पञ्चायतें बहुत कम हैं।

पञ्चायतें

प्राचीन काल में यहाँ प्रत्येक गाँव और नगर में प्रभावशाली पचायतें रहती थीं जो सारा स्थानीय शासन स्वयं करतीं और केन्द्रीय (Central) सरकार अर्थात् राजा के सामने अपने क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती थीं। पञ्चायत स्थानीय रक्षा के लिये अपनी पुलिस रखती, स्वयं भूमि-कर वसूल करके राज-कोष में भेजती, गाँव और नगर की सफाई का प्रबन्ध करती थी। अपने क्षेत्र के धार्मिक स्थान, जलाशयों तथा पाठशालाओं की देख-भाल तथा उनका सचालन करती थी, और अपने गाँव नगर में छोटे छोटे दीवानी और फौजदारी के झगड़ों का निपटारा करती थी। भारत में पञ्चायतों का यहाँ तक विश्वास और प्रभाव था कि अब तक भी "पंच-परमेश्वर" की कहावत चली आती है। हिन्दू राजाओं के जमाने से ही यहाँ पञ्चायतें थीं, मुसलमानी अमलदारी में भी वे एक महत्त्वपूर्ण संस्था के रूप में रहीं। परन्तु अँग्रेजी शासन काल में उनकी आय तथा अधिकार प्रान्तीय सरकार ने ले लिये। पुलिस तथा फौजदारी अदालतें स्थापित

कर दी गई जिससे पचायतों का क्रमशः ह्रास हो गया। अब भी कहीं कहीं पचायतें हैं जो धर्मशाले, मन्दिर, जलाशय तथा अन्य धार्मिक हित के कार्य करती हैं, किन्तु ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिह्न मात्र हैं।

कुछ वर्षों से भारतीय ग्रामों की इस सस्था का महत्व सरकार ने समझा है और पचायतों को पुन नवीन रूप से स्थापित करने का उद्योग किया जा रहा है। इनके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रदेशो मे नये नये कानून वनाये गये हैंऔ र धीरे-धीरे इनकी स्थापना की जा रही है।

पंचायत की सफलता के उपाय

पचायतों से ग्राम-सुधार तथा न्याय सम्बन्धी बहुत कुछ काम हो सकता है। लोगो का मुकदमेवाजी मे जो अपरिमित धन और शक्ति नष्ट होती है। वह बहुत कुछ बच सकती है। हाँ, ऐसी सस्थाओं की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने उत्तरदायित्व को समझें। वे अधिकारियों के दबाव में न रहें, अपने नैतिक वल से कार्य करें, तभी जनता का उन पर यथेष्ट विश्वास हो सकता है और उन्हे लोगों का समुचित सहयोग मिल सकता है। पच ऐसे आदमी होने चाहिये जिनके लिये जनता की सम्मति हो, जिन्होंने सर्व साधारण की सेवा की हो तथा भविष्य मे भी जो लोक हित के अभिलाषी हों। पचों का कर्तव्य है कि वे अधिकार की भावना न रखकर अपने कार्य को कर्तव्य समझ कर सेवा-भाव से काम करें, जनता के अधिकाधिक सम्पर्क में आवें, और उनकी आवश्यकताओं और परिस्थितियों की यथेष्ट जानकारी रखें। अभी तक पचायतों को बहुत कम अधिकार दिये गये थे इसी कारण उनका कोई विशेष महत्व नहीं था। जनता की माँग है कि भविष्य मे पचायतों को अधिक अधिकार दिये जावें। सम्भवत. अब जब कि जनता के प्रतिनिधि ही प्रदेश का शासन कर रहे हैं तब सब प्रदेशों मे पचायतों के अधिकार अवश्य बढा दिये जावेंगे।

उत्तर प्रदेश का पञ्चायत राज्य कानून

सन् १९४७ में उत्तर-प्रदेश का पञ्चायत-राज्य विधान स्वीकार हो गया और २७ दिसम्बर सन् १९४७ से लागू कर दिया गया। इस विधान के अनुसार गाँव की पञ्चायतों को गाँव के शासन मे बहुत कुछ अधिकार मिल गये हैं और वे स्थानीय शासन को अपने हाथ मे ले रही हैं।

इस विधान के अन्तर्गत नीचे दी हुई सस्थायें स्थापित हो गई हैं जो गॉव का शासन प्रबन्ध करती हैं :—

गॉव-सभा

उत्तर प्रदेश की सरकार ने गॉवों मे गॉव-सभाएँ स्थापित कर दी है। प्रत्येक गॉव-सभा मे वे सब प्रौढ सम्मिलित होते हैं जो उस क्षेत्र के स्थायी निवासी हैं। लेकिन ऐसा कोई प्रौढ उसका सदस्य नहीं हो सकेगा यदि—

(क) उसका दिमाग खराब हो।

(ख) उसको कोढ हो।

(ग) वह दिवालियेपन से बरी नहीं किया गया हो।

(घ) सरकारी नौकर हो वा आनरेरी मजिस्ट्रेट, आनरेरी मुन्सिफ या आनरेरी असिस्टेन्ट कलेक्टर हो जिसके अधिकार क्षेत्र मे किसी गॉव-सभा का क्षेत्र हो।

(ङ) उसे चुनाव सम्बन्धी किसी अपराध के लिये दड दिया जा चुका हो या

(च) उसको किसी नैतिक अपराध मे दण्ड दिया जा चुका हो या नेक चलनी के लिये जमानत जमा करने की आज्ञा दी गई हो।

गॉव सभा की वर्ष मे दो बैठकें होती हैं, एक खरीफ की बैठक दूसरी रबी की बैठक। आवश्यकता पड़ने पर सभापति स्वय अथवा $\frac{1}{5}$ सदस्यों की लिखित मॉग पर स्वय बैठक बुला सकता है।

गॉव सभा की खरीफ की बैठक मे सभा का बजट तैयार करके विचारार्थ उपस्थित किया जाता है तथा रबी की बैठक मे वर्ष का हिसाब रक्खा जाता है।

गॉव-सभा अपने सदस्यो मे से एक को सभापति और दूसरे को उपसभापति चुनती है जो तीन वर्ष तक अपने पद पर रहता है।

गॉव-सभा अपने सदस्यों में से कम से कम ३० व्यक्तियों की एक "गॉव पञ्चायत' चुनती है जो सभा की कार्यकारिणी होती है। गॉव-सभा का सभापति और उपसभापति क्रमश गॉव पञ्चायत के सभापति और उपसभापति होते हैं।

गॉव पञ्चायत के कार्य

(क) सडकों को बनवाना, उनकी मरम्मत कराना, उनकी सफाई तथा रोशनी का प्रबन्ध करना।

(ख) चिकित्सा का प्रबन्ध करना।

(ग) गाँव की सफाई करवाना तथा सक्रामक रोगों को न फैलने देना तथा दूर करने का उपाय करना।

(घ) जन्म, मृत्यु तथा विवाहों का रजिस्टर रखना।

(ट) मेलों तथा बाजारों का प्रबन्ध करना।

(च) गाँव मे प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करना।

(छ) चरागाहों को छोड़ना और उनका प्रबन्ध करना।

(ज) कुओं तथा तालाबों का सार्वजनिक उपयोग के लिए बनवाना तथा उनकी मरम्मत कराना।

(झ) खेती-बारी, व्यापार और उद्योग धन्धो की उन्नति मे सहायता करना।

(ञ) आग लग जाने पर लोगों के जीवन तथा उनकी सम्पत्ति की रक्षा करना।

(ट) सूतिका (बच्चा उत्पन्न कराने) और शिशुओं का हित साधन करना।

(ठ) खाद इकट्ठा करने के लिए स्थान नियत करना।

(ड) मार्गों पर तथा अन्य स्थानों पर पेड़ लगवाना।

(ढ) मवेशियों की नस्ल सुधारना, उनकी चिकित्सा और उनके रोगों की रोक थाम करना।

(ण) गाँव की रक्षा करने तथा गाँव पचायत की सहायता करने के लिए गाँव स्वयसेवक दल का सगठन करना।

(त) गाँव मे मनोरजन के साधन उपलब्ध करना तथा पुस्तकालय इत्यादि स्थापित करना।

गाँव पचायत के कर

इन कार्यों को करने के लिए गाँव सभा निम्नलिखित कर वसूल कर सकती है—

(१) एक आना फी रुपया मालगुजारी पर टैक्स किसानों से वसूल करेगी।

(२) अधिक से अधिक ६ पाई फी रुपया मालगुजारी पर जमींदार से वसूल करेगी।

(३) एक टैक्स खुदकाश्त या सीर पर भी लगाया जावेगा।

(४) एक टैक्स व्यापार, कारबार और पेशों पर जो ऐसी दर से अधिक न होगा जो नियत किया जावे, लगाया जावेगा।

(५) एक टैक्स उन इमारतों पर जो ऐसे व्यक्तियों के स्वामित्व में हों जो ऊपर दिये हुये कोई टैक्स न देते हों, लगाया जावेगा। उसकी दर सरकार निश्चत करेगी।

करों द्वारा जो धनराशि इकट्ठी होगी वह "गाँव-कोष" में जमा की जावेगी और गाँव सभा द्वारा बजट की स्वीकृति हो जाने पर गाँव-पचायत द्वारा ऊपर लिखे कामों पर खर्च की जावेगी।

'गाँव पञ्चायत' पटवारी, चौकीदार तथा अन्य सरकारी कर्मचारियों के कार्य से यदि असन्तुष्ट हो तो उनकी शिकायत उन विभागों के उच्च अधिकारियों से कर सकेगी और वह अधिकारी जाँच करने के उपरान्त अपना निर्णय गाँव-पञ्चायत के पास भेज देगा।

पचायत अदालत

उत्तर-प्रदेश की सरकार ने जिले को बहुत से क्षेत्रों मे बाँट दिया है और प्रत्येक क्षेत्र मे एक 'पञ्चायत अदालत' स्थापित की गई है।

किसी क्षेत्र की प्रत्येक 'गाँव-सभा' उस क्षेत्र की पञ्चायत अदालत में पञ्चों की हैसियत से काम करने के लिए अपने सदस्यों में से पाँच सदस्य चुनती है। किसी क्षेत्र की सारी 'गाँव-सभाओं' के चुने हुये पञ्चों का एक 'पञ्च मडल' होता है।

इस प्रकार सब चुने हुए पञ्च पञ्चायती अदालत के 'सरपञ्च' का काम करने के लिये अपने में से एक व्यक्ति को चुनते हैं।

सरपञ्च प्रत्येक मुकदमे के लिए पञ्च मडल में से पाँच पञ्चों का एक बेंच नियुक्त करता है। पञ्चायत अदालत में अभी तक कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता था किन्तु अब यह रोक उठा दी गई।

पञ्चायत अदालतों को माल, दीवानी तथा फौजदारी सभी के मुकदमे लेने का अधिकार है परन्तु कानून के अनुसार कुछ धारायें दे दी गई हैं केवल उन्हीं के अन्तर्गत अदालत मुकदमों का फैसला कर सकती है।

इस विधान से गाँव की दशा में विशेष सुधार होगा। गाँव वालों को स्थानीय शासन के अधिकार प्राप्त होगे और अदालतों में जाकर जो उनका भयंकर शोषण होता है, उनके समय और धन की जो बर्बादी होती है वह दूर होगी।

कांग्रेस सरकार ने गाँव-पचायत राज्य विधान बनाकर ग्रामीण जनता की बहुत भलाई की है।

उत्तर प्रदेश पंचायत राज्य संशोधन बिल

मार्च १९५४ में उत्तर प्रदेश की एसेम्बली ने पचायत राज्य कानून में सशोधन करने के लिए एक बिल स्वीकार किया है। इसके अनुसार नीचे लिखे महत्वपूर्ण सशोधन किए गए हैं।

(१) यदि गाँव सभा दो तिहाई बहुमत से स्वीकार करे तो पचायत प्रत्येक ग्राम वासी से महीने मे अधिक से अधिक चार दिन और वर्ष मे २४ दिन गाँव के लाभ के लिए अनिवार्य रूप से बिना मजदूरी दिए काम ले सकती है।

(२) आगे से गाँव पचायतो के चुने हुए सदस्यों मे से सरकार गाँव अदालत को नियुक्त करेगी।

(३) पचायतो का कर लगाने के जो अधिकार हैं उनमें कुछ वृद्धि की गई है। व्यापार, पेशे और धन्धों पर अधिक से अधिक ६ रुपया वार्षिक फीस लगाई जा सकेगी। चलने फिरने वाले सिनेमा या अन्य मनोरजन के साधनों पर एक या दो रुपया प्रति दिन कर लगाया जा सकेगा। हाट, बाजार या मेले में आने वाली दूकानों पर कर लग सकेगा, किराये पर चलने वाली गाड़ियों पर कर लगाया जा सकेगा इत्यादि।

(४) ग्राम पचायत का सभापति हिन्दी पढ़ना लिखना जानता हो।

अभ्यास के प्रश्न

१—जमींदार और किसानों का पहिले कैसा सम्बन्ध था और आज कैसा सम्बन्ध है ?

२—गाँवों के रहने वालों मे भाई-चारे का जो सम्बन्ध आज तक चला आ रहा है उससे क्या हानि लाभ है ?

३—गाँव में महाजन का क्या उपयोग है।

४—पञ्चायत किसे कहते हैं और वह क्या कार्य करती है ? उसकी शक्तियाँ क्या हैं ? (१९४२, १९४९, १९५३)

५—उत्तर प्रदेश मे पञ्चायतों को क्या क्या अधिकार दिये गये हैं ?

६—प्राचीन काल मे पञ्चायतों का गाँव के सगठन में कैसा स्थान था ?

७—सरकार द्वारा स्वीकृत पचायतों में छोटे-छोटे मुकदमों का फैसला किस प्रकार होता है ?

८—क्या पचायतो के अधिकारों को बढ़ाने की जरूरत है ? यदि है तो कौन से अधिकार उन्हें दिये जाने चाहिये ?

९—पंचायतों के कर्तव्य क्या हैं ? भारतीय ग्रामीण जीवन में उनका क्या महत्व है ? (१९४७)

१०—अपने ग्राम पचायत की सफलता का वर्णन कीजिए। इसकी सफलता के क्या कारण हैं ? (१९५१)

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारिता तथा सहकारी साख समितियाँ

(Co operation & Co-operative Credit Societies)

सहकारिता के मूल सिद्धांत

आधुनिक काल में समाज ने आर्थिक जीवन मे प्रतिस्पर्धा या होड़ (competition) के सिद्धान्त को अपना लिया है। जो निर्बल हैं उनके लिये समाज में कोई स्थान नहीं है। उदाहरण के लिये जुलाहा कपडे की मिल की प्रतिस्पर्धा में असफल होता है, किसान को महाजन से ७५ प्रतिशत सूद पर ऋण मिलता है जब कि कोई सेठ अथवा जमींदार किसी बैंक से सात या आठ प्रतिशत पर ऋण पा सकता है। निर्धन मजदूर या किसान मजदूर किसी दूकान पर सौदा लेने जाता है क्योंकि वह पैसे दो पैसे का सौदा लेता है इस कारण दूकानदार उसे खराब चीज अधिक दामों पर देता है। धनी व्यक्ति अच्छी वस्तु सस्ते दामों पर पा सकते हैं क्योंकि वे अधिक खरीदते हैं। इसका अर्थ यह है कि निर्धन व्यक्ति फिर चाहे वह सम्पत्ति उत्पादन (Production) करने वाला हो अथवा उपभोग (Consumption) करने वाला हो वह आधुनिक प्रतिस्पर्धा के कारण लूटा जाता है। सहकारिता इन निर्धनों को भाई-चारे के आधार पर सगठित कराके वे ही सुविधाये प्रदान करना चाहती है जो कि धनी और ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों को प्राप्त हैं। उदाहरण के लिये सहकारिता आन्दोलन

बहुत से जुलाहों को भाई-चारे के आधार पर सगठित करके उन्हे मिलों की प्रतिस्पर्धा में सफल बनाने का प्रयत्न करता है। निर्धन किसानों को साख समिति स्थापित करके उन्हें उचित सूद पर ऋण दिलाने का प्रबन्ध करता है। साराश यह कि आज के इस होड़ (प्रतिस्पर्धा) के जमाने में जो सुविधाये केवल धनी और समाज के सबल सदस्यों को ही प्राप्त हैं, सहकारिता आन्दोलन उन्हें सहकारी संगठन के द्वारा निर्धन और समाज के निर्बल सदस्यों को भी पहुँचाती है।

यहाँ हम उदाहरण देकर यह समझाने की चेष्टा करेंगे कि सहकारिता किसे कहते हैं। सहकारिता का अर्थ है मिलकर एक साथ कोई काम करना। मान लो कि एक गाँव से पच्चीस किसान जिनके पास गाय या भैंस है अपना-अपना दूध शहर के हलवाइयों के पास प्रातः तथा सायकाल ले जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पचीसो किसान प्रतिदिन तीन या चार घटे समय अपना थोड़ा सा दूध हलवाई के पास ले जाने में व्यय करते हैं। यदि यह नियम बना लें कि उनमें से केवल एक किसान प्रतिदिन बारी से सब का दूध शहर ले जावेगा तो हर एक दिन शेष चौबीस किसानों का तीन या चार घटा समय नष्ट होने से बच जावेगा और सबों का दूध भी यथासमय शहर पहुँच जाया करेगा। यही नहीं यदि वे पचीस किसान एक साथ मिलकर अपना दूध बेचें तो हलवाइयों से उन्हें दूध के अच्छे दाम मिल सकते हैं।

हम इस प्रकार के सगठन को सहकारी समिति कहेंगे। जुलाई के महीने में यदि तुम अपने दर्जे के लड़कों को इस बात के लिए राजी कर लो कि वे अलग-अलग पाठ्य-पुस्तकें शहर के बुकसेलरों से न खरीद कर एक साथ मिल कर प्रकाशकों से खरीदें तो तुम लोगों को पुस्तकें कम कीमत में मिल जावेंगी और तुम्हारा यह सगठन विद्यार्थियों की सहकारी समिति कहलावेगा। बस, अब तो तुम समझ ही गये होगे कि किसी काम को एक साथ मिलकर करने को सहकारिता कहते हैं।

सहकारिता आन्दोलन क्या है, यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगा। कल्पना कीजिए कि एक अन्धा भिखारी एक अनजान स्थान पर पहुँच जाता है और अधा होने के कारण भीख माँगने का काम नहीं कर सकता। साथ ही वहाँ एक लूला व्यक्ति भी है जिसकी दोनों टाँगे बेकार हो गई हैं, इस कारण

वह भी भीख मॉगने से मजबूर है। अब दोनों सहकारिता के सिद्धान्त को अपनावें और अंधा लूले को अपने कन्धे पर बिठाले तो लूले की आँखें और अंधे की टाँगें एक दूसरे से सहयोग कर उन दोनों का काम निकाल सकती हैं। संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जब हम भाई-चारे के आधार पर संगठित प्रयत्न करे और होड (मुकाबिले) और शोषण को दूर कर दे तो हम उसे सहकारिता कहेंगे।

भिन्न-भिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ

ऊपर हम यह बतला चुके है कि सहकारिता का क्या अर्थ है। किसी ने ठीक ही कहा है कि "सहकारिता तो निर्धनों का बल है" जो निर्धन हैं वे ही सहकारिता की शरण में आते हैं और अपना संगठन करते हैं क्योंकि ऐसा किये बिना आज की होड़ (मुकाबिले) में वे धनी शक्तिवानों के विरोध में खड़े नहीं रह सकते। अतएव प्रत्येक आर्थिक कार्य के लिए सहकारिता आन्दोलन की सहायता ली जा सकती है। यही कारण है हमें बहुत प्रकार की सहकारी समितियाँ देखने को मिलती हैं। नीचे हम मुख्य सहकारी, समितियों का वर्णन करते हैं :—

(१) उपभोक्ता सहकारी समितियाँ या उपभोक्ता स्टोर(Co-operative Consumer's Stores)—जब ग्राहक स्वयं मिलकर अपनी दैनिक आवश्यकता की चीजों को प्राप्त करने के लिए दूकान स्थापित करते हैं तो उसको उपभोक्ता सहकारी स्टोर कहते हैं।

(२) उत्पादक सहकारी समितियाँ—जब छोटे छोटे कारीगर अथवा मजदूर या किसान आपस में सहकारित के आधार पर संगठित होकर अपने धन्धे या खेती का संगठन करते हैं और बड़े पूँजीपति उत्पादकों की होड़ में खड़े रहने का प्रयत्न करते हैं तब उसे उत्पादक सहकारी समिति कहते हैं।

(३) साख सहकारी समितियाँ—जब निर्धन किसान, कारीगर अथवा मजदूर सहकारिता के आधार पर संगठित होकर (कर्ज) प्राप्त करने के लिये समिति का सङ्गठन करते हैं तो उसे साख समिति कहते हैं।

(४) अन्य प्रकार की समितियाँ—इनमे क्रय-विक्रय समितियाँ, भूमि की चकबन्दी समितियाँ, रहन-सहन सुधार समितियाँ, इत्यादि सभी अन्य समितियाँ आ जाती हैं।

आगे हम इनके सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

सहकारी साख समितियाँ

(Co operative Credit Societies)

सहकारी साख आन्दोलन की जन्मभूमि जर्मनी मे दो प्रकार की साख-समितियाँ कार्य कर रही हैं (१) रैफिसन ग्राम्य सहकारी साख समितियाँ जिनके जन्मदाता श्री रैफिसन महोदय थे । (२) शुल्ज समितियाँ जो विशेषतः नगरों मे मध्यवर्ग तथा छोटे-छोटे कारीगर व्यापारियों के लिए स्थापित की गई। भारत मे सहकारी आन्दोलन जर्मनी से नकल किया गया। इस कारण यहाँ भी दो प्रकार की सहकारी समितियाँ स्थापित की गई। प्रथम रैफिसन प्रणाली की कृषि सहकारी साख समितियाँ (Agricultural Co-operative Credit Societies) जो गाँवों मे स्थापित की गई, दूसरी शुल्ज प्रणाली के पिपुल्स बैंक जो कि नगरों मे स्थापित किये गये। गैर साख कृषि सहकारी समितियों के विषय मे अगले परिच्छेद मे विस्तारपूर्वक लिखा जायगा। कृषि साख समितियों और पिपुल्स बैंकों (नगर साख समितियों) मे मुख्य अन्तर निम्नलिखित है :—

१—कृषि साख समितियों में हिस्से या तो नहीं होते अथवा बहुत कम मूल्य के होते हैं। नगर साख समितियो मे हिस्से अधिक मूल्य के होते हैं।

२—कृषि साख समितियों का दायित्व अपरिमित* (Unlimited liability) होता है परन्तु नगर साख समितियो का दायित्व परिमित (Limited liability) होता है।

---

*अपरिमित दायित्व (Unlimited liabity).—अपरिमित दायित्व वाली समितियो के सदस्य व्यक्तिगत रूप से समिति के सारे ऋण को चुकाने के लिये जिम्मेदार होते हैं। उदाहरण के लिये यदि एक साख समिति टूटती है और उस पर बाहर वालों का कर्जा चढ़ जाता है तो समिति के लेनदार (Creditors) किसी एक सदस्य से सारे कर्जे वसूल कर सकते है। परिमित दायित्व वाली समितियों के सदस्यो की ऋण चुकाने की जिम्मेदारी उनके हिस्से के मूल्य से परिमित होती है। यदि सदस्य ने अपने हिस्से का मूल्य चुका दिया है तो समिति का लेनदार सदस्य से कुछ वसूल नहीं कर सकता है।

३—कृषि साख समितियों में लाभ नहीं बाँटा जाता (किसी विशेष दशा में बाँटा जाता है) नगर साख समितियों मे लाभ बाँटा जाता है।

४—कृषि साख समितियो मे किसी भी सदस्य को समिति का कार्य सच चन के लिये कोई वेतन नहीं मिलता परन्तु नगर साख समितियों मे प्रबन्ध करने वाले सदस्यो को वेतन दिया जा सकता है।

रैफिसन और शुल्ज प्रणालियों को भारत की परिस्थिति के अनुसार कुछ सशोधन करके अपना लिया गया है। दोनों प्रकार की समितियाँ अपने सदस्य को उचित सूद पर ऋण देने का प्रबन्ध करती हैं।

प्रारम्भिक कृषि सहकारी साख समितियाँ

सन् १९०४ में जब सहकारिता आन्दोलन का यहाँ आरम्भ हुआ तो उसका उद्देश्य केवल गाँव वालों की साख समस्या को हल कर देना था। अन्य धधों की भाँति खेती-बारी में पूँजी उधार लेने की आवश्यकता है। कृषक महाजन से पूँजी उधार लेकर उसका दास बन जाता है। अतएव पूँजी की समस्या के हल के लिये ही कृषि सहकारी साख समितियाँ स्थापित हो गई। आरम्भ में साख की समस्या को हल करने की ओर विशेष ध्यान होने के कारण सहकारिता विभाग ने कृषि-सहकारी-साख समितियों को अधिक सख्या मे स्थापित किया। इसी का फल है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अन्य सब प्रकार की समितियों से सख्या मे अधिक हैं।

कृषि साख-समिति के उद्देश्य

कृषि साख समिति का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को खेती-बारी तथा अन्य उपयोगी कार्यों के लिये ऋण देना है। सदस्यों को ऋण देने के लिये समिति गाँव वालों से डिपाजिट (जमा) लेती है अथवा सेन्ट्रल सहकारी बैंकों से ऋण लेती है। इसके अतिरिक्त कृषि साख-समिति अपने सदस्यो के लिए बीज, खाद, हल तथा अन्य खेत के औजारों को खरीदती है तथा वैज्ञानिक खेती किस प्रकार हो सकती है इसका प्रचार करती हैं।

समिति की सदस्यता

समिति के कम से कम दस सदस्य होते हैं। यदि सदस्यों की सख्या दस से कम हो जावे तो रजिस्ट्रार* उस समिति को तोड सकता है। समिति का सद-

*रजिस्ट्रार सहकारिता विभाग का प्रधान कर्मचारी है जो समिति की रजि-

स्य वही बनाया जाता है जिसका चरित्र अच्छा हो, जो ईमानदार हो, शराब न पीता हो और जुआ न खेलता हो। समिति के सदस्य बनाते समय उसके चाल चलन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। कृषि साख-समिति के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो एक ही गाँव अथवा पास के गाँव में रहते हों अथवा एक ही जाति या पेशे के हों।

अपरिमित उत्तरदायित्व (Unlimited Liability)

कृषि साख समिति का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना कर्जा चुकाने का जिम्मेदार नहीं होता परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उसे समिति का सारा कर्ज चुकाना होता है। उदाहरण के लिये मान लिया जावे कि अनन्तपुर नामक गाँव की साख-समिति दिवालिया हो जाती है, समिति के अधिकतर सदस्य अदा नहीं कर सकते। केवल दो या तीन सदस्य ही ऐसे हैं जिनके पास सपत्ति है। ऐसी दशा में समिति के लेनदार (Creditors) उनमें से किसी एक से अथवा सबों से समिति का पूरा कर्जा वसूल कर सकते हैं। उन धनी सदस्यों को अपनी सारी सम्पति बेच कर भी समिति का कर्ज चुकाना होता है।

इसी कारण यह नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा माली हालत से भली-भाँति परिचित हो। यदि सदस्य एक दूसरे को भली-भाँति न जानते हों तो वे अपरिमित दायित्व स्वीकार न करेंगे। अपरिमित दायित्व के अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से चुकाने के लिये बाध्य है।

जब कोई नवीन सदस्य समिति में आना चाहता है तो वह सर्व सम्मति से ही लिया जा सकता है। एक गाँव मे अधिकतर एक ही समिति होती है किन्तु यदि गाँव बड़ा हो तो एक से अधिक समितियाँ भी हो सकती हैं।

समिति का प्रबन्ध

समिति के कार्य सचालन का पूर्ण अधिकार जनरल मीटिंग (साधारण

स्ट्री, आय-व्यय निरीक्षण, देख-भाल करता है और समितियों को तोड़ भी सकता है।

सभा जिसमें समिति का प्रत्येक सदस्य होता है) को होता है। प्रत्येक सदस्य केवल एक वोट ही दे सकता है फिर उसके पास समिति के कितने भी हिस्से क्यों न हों। जनरल मीटिंग अपने में से एक पञ्चायत चुन देती है जो समिति का सारा कार्य करती है। पञ्चायत के पाँच या सात सदस्य होते हैं। जनरल मीटिंग सब महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत दे देती है और साधारण नीति निर्धारित कर देती है। पंचायत वस्तुतः सारा कार्य करती है। पंचायत का चुनाव करने के अतिरिक्त जनरल मीटिंग डिपाजिट पर कितना सूद दिया जावे, सदस्यों से ऋण पर कितना सूद लिया जावे, अधिक से अधिक प्रत्येक सदस्य को उसकी हैसियत के अनुसार कितना ऋण दिया जा सकता है तथा समिति सेन्ट्रल बैंक से अधिक से अधिक कितना ऋण ले—इन बातों का निश्चय करती है।

समिति की पंचायत के कार्य

१—पंचायत सदस्यों को हिस्से देकर उन्हें समिति का सदस्य बनाती है।

२—गाँव से डिपाजिट आकर्षित करने का प्रयत्न करती है तथा सेन्ट्रल अथवा जिला बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। पञ्चायत को समिति के सदस्यों से तथा अन्य ग्रामवासियों से अधिक से अधिक मात्रा में रुपया जमा करने को कहना चाहिये।

३—पंचायत यह भी निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिये कर्ज दिया जावे। पंचायत उस समय के अन्त में ऋण वसूल करती है।

४—पंचायत समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है।

५—पंचायत रजिस्ट्रार से समिति सम्बन्धी कार्यों में लिखा पढ़ी करती है।

६—सदस्यों के लिये सम्मिलित रूप से आवश्यक वस्तुएँ खरीदती है तथा उनकी पैदावार को बेचती है।

७—पंचायत सरपंच तथा मन्त्री का निर्वाचन करती है। सरपंच समिति की देख भाल रखता है।

समिति की पूँजी (Capital)

कृषि साख समितियों को कार्यशील पूँजी (Working Capital) निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त होती है —

१—समिति प्रवेश फीस।

२—हिस्सो का मूल्य जो सदस्य देते हैं।

३—डिपाजिट जो सदस्यों तथा गैर सदस्यों से मिलती है।

४—सेन्ट्रल बैंक या जिला बैंको से लिया हुआ ऋण।

५—रक्षित कोष (Reserve Fund)

प्रवेश फीस नाम मात्र को एक रुपया ली जाती है जो कि शुरू के खर्च के काम आती है।

कुछ प्रदेशों में सदस्यों को हिस्से खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रदेशों में हिस्से नहीं होते। पञ्जाब, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास मे समितियॉ हिस्से वाली होती हैं। अन्य प्रदेशों मे समितिॉ हिस्से तथा गैर हिस्से वाली दोनों ही प्रकार की होती हें। उत्तर प्रदेश मे एक हिस्सा दो रुपये का होता है। कम से कम एक हिस्सा प्रत्येक सदस्य को लेना होता है। हिस्से का मूल्य छमाही एक रुपये की क़िश्त में दस वर्षों मे चुका दिया जाता है।

साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रकम से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है। समितियों को अधिकतर पूँजी के लिये सेन्ट्रल बैंको पर ही निर्भर रहना पड़ता है, क्योंकि अभी तक वे डिपाजिट अधिक आकर्षित नहीं कर सकी हैं। जितनी ही अधिक कोई समिति डिपाजिट आकर्षित करे उतनी ही उसकी सफलता समझी जानी चाहिये, क्योंकि डिपाजिट तभी अधिक जमा होगी जब कि जनता को समिति का भरोसा होगा और उसकी आर्थिक स्थिति में विश्वास होगा। जब तक कि साख-समितियाँ अपनी आवश्यकता के अनुसार डिपाजिट आकर्षित करके पूँजी जमा नहीं कर सकतीं तब तक उनको निर्बल ही समझना चाहिये।

कृषि सहकारी साख-समितियों में साधारणतः लाभ सदस्यों में बाटा नहीं जाता। हॉ, जब रक्षित कोष (Reserve fund) एक निश्चित रकम से अधिक हो जावे तो प्रदेशीय सरकार से अनुमति लेकर तीन-चौथाई लाभ सदस्यों में बॉटा जा सकता है। फिर भी २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करना ही पड़ता है।

कृषि सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध व्यय लगभग कुछ न होने के कारण तथा लाभ न बॉटने के कारण रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिये रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक कि

समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे तब तक वह सफल नहीं बन सकती। रक्षित कोष किसी अवस्था में भी सदस्यों को बाटा नहीं जा सकता। उसका उपयोग समिति के कार्य मे हानि हो जाने पर उसे पूरा करने में होता है। यदि समिति भङ्ग हो जावे अथवा तोड़ दी जावे तो रक्षित कोष किसी अन्य सहकारी समिति को दे दिया जावेगा या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक हित के कार्य में व्यय कर दिया जावेगा।

समिति के लाभ को न बाँटने से समिति की आर्थिक व्यवस्था शीघ्र उत्तम हो सकती है। अधिकतर गरीब व्यक्ति ही समिति बनाते हैं अत आरम्भ में समिति की अपनी रकम बहुत कम होती है। उसका कार्य दूसरे साधनों से मिलने वाले धन से चलता है। समिति दूसरों पर निर्भर रहती है। यह कमजोरी शीघ्र से शीघ्र दूर होनी चाहिये। द्वितीय, यदि लाभ बँटने लगेगा तो आरम्भ से ही सदस्य लाभ के फेर में पड़ जाएगे। इसी प्रकार रक्षित कोष जारी करने का अभिप्राय उससे सहकारी-आंदोलन की वृद्धि करना था। इसी कारण कोष अविभाजित रहता है।

समिति के कार्यकर्त्ताओं का अवैतनिक होना

समिति के पञ्चों को कोई वेतन नहीं दिया जाता। यदि सदस्यों मे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो कि समिति का हिसाब इत्यादि रख सके, तो गाँव के किसी शिक्षित व्यक्ति को थोड़ा सा वेतन देकर वैतनिक मन्त्री रख लिया जाता है, किन्तु वैतनिक मन्त्री को समिति की मीटिंग मे कोई सम्मति देने का अधिकार नहीं होता है। सदस्य मन्त्री को कोई वेतन नहीं मिलता। गाव के पटवारी को कभी मन्त्री न बनाना चाहिये क्योंकि उसका गाव में बहुत प्रभाव होता है और वह पञ्चों पर दबाव डाल सकता है।

समिति की साख निर्धारित करना

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि जनरल मीटिंग समिति की अधिकतम साख निर्धारित करती है, उससे अधिक पञ्चायत ऋण नहीं ले सकती। समिति की साख निर्धारित करने के लिये सब सदस्यों की हैसियत का लेखा प्रतिवर्ष तैयार किया जाता है, सब सदस्यों की हैसियत के एक चौथाई से आधी

तक समिति की साख मानी जाती है। किसी भी सदस्य की सम्पत्ति का पचास प्रतिशत से अधिक उसको उधार नहीं दिया जाता।

समिति द्वारा ऋण देने का कार्य

कृषि साख सहकारी समिति केवल सदस्यों को ही ऋण देती है। जो भी सदस्य ऋण लेना चाहता है। वह एक प्रार्थना पत्र पञ्चायत को देता है। दरख्वास्त मे उसे यह भी बतलाना पडता है कि वह किस कार्य के लिये ऋण लेना चाहता है। ऋण लेने वाले सदस्य को दो व्यक्तियों की जमानत देन होती है। ऋण देते समय कर्ज लेने का उद्देश्य तथा सदस्य को चुकाने की शक्ति का अनुमान करके ही समिति कर्जा देना निश्चित करती है।

सहकारिता आन्दोलन का यह सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक कार्यों के लिये न दिया जावे, किन्तु भारत में कृषि सहकारी साख समितियाँ विवाह, श्राद्ध तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी रुपया उधार दे देती हैं। पञ्चायत का मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जाँच करे कि सदस्य ने जिस कार्य के लिये ऋण लिया है उसी पर व्यय कर रहा है अथवा नहीं। यदि सदस्य किसी दूसरे काम में रुपया लगावे तो पञ्चायत को रुपया वापस माँग लेना चाहिये। यदि पञ्चायत ऐसी रोक न लगावे तो गरीब ग्रामीण कोई भी कारण बता कर ऋण लेंगे और उसे अपनी वर्तमान अनुत्पादक आवश्यकता पर व्यय कर देंगे।

पञ्चायत ऋण देते समय ही सदस्य की स्थिति को दृष्टि मे रखते हुए किश्त बाध देती है क्योंकि सदस्यों को किश्तों द्वारा ऋण चुकाने मे सुविधा होती है। पचायत को किश्तें समय पर वसूल करनी चाहिये, किन्तु फसल नष्ट हो जाने पर अथवा अन्य अनिवार्य कारण उपस्थित होने पर किश्त की मियाद बढा दी जाती है।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे हुए कार्यों के लिये ऋण देती हैं :—

१—खेती बारी के लिये, मालगुजारी तथा लगान देने के लिये।

२—भूमि का सुधार करने के लिये।

३—पुराने ऋण को चुकाने के लिये।

४—गृहस्थी के कार्यों के लिये।

५—व्यापार के लिये।

६—भूमि खरीदने के लिये।

अब क्रमशः कृषि साख सहकारी समितियाँ पुराने ऋण को चुकाने के लिये तथा भूमि खरीदने के लिये कम ऋण देने लगी है क्योंकि समितियों ने अब यह नीति बना ली है कि वे अधिक समय के लिये कर्ज न देंगी।

समितियों का आय-व्यय निरीक्षण

साख समितियों का आय-व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार की अधीनता में होता है। रजिस्ट्रार सहकारी विभाग के आय-व्यय निरीक्षकों (आडिटरों) से समितियों के आय-व्यय की जाँच करता है। किसी प्रदेश में आय-व्यय निरीक्षण का कार्य प्रदेशीय यूनियन की अधीनता में भी होते हैं। उस दशा में भी प्रदेशीय यूनियन के आय-व्यय-निरीक्षकों (आडिटरों) को जब तक रजिस्ट्रार लायसेंस न दे दे तब तक वे आय-व्यय की जाँच नहीं कर सकते। आडिटर हिसाब की जाँच तो करता ही है परन्तु इस बात की भी जाँच करता है कि समिति नियमानुसार कार्य करती है या नहीं, परन्तु भारत मे आय-व्यय निरीक्षण का कार्य भली-भाँति नहीं होता।

आय-व्यय निरीक्षण के अतिरिक्त साख समितियों की देख भाल तथा उनका नियन्त्रण रजिस्ट्रार तथा उनके सहायक कर्मचारी और प्रादेशीय सहकारी यूनियन दोनों ही करते हैं।

कृषि सहकारी साख समितियों को मिली हुई सुविधाये

यदि समिति ने किसी सदस्य को बीज या खाद उधार दिया है अथवा उसको मोल लेने के लिये रुपया उधार दिया है तो समिति को उसके द्वारा उत्पन्न की हुई फसल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा सदस्य का कोई दूसरा लेनदार उस फल को कुर्क नहीं करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, खेती तथा अन्य धन्धों में काम आने वाले यन्त्र तथा धन्धों के लिये कच्चा माल उधार दिया है तो उन वस्तुओं पर तथा उस कच्चे माल के तैयार किये हुए पक्के माल पर समिति का प्रथम अधिकार होगा।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स (आयकर) नहीं लिया जाता और न सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है। सहकारी समितियों को एक

स्थान से दूसरे स्थान पर मनीआर्डर द्वारा रुपया भेजने पर पोस्ट आफिस एक रेट पर उनका रुपया भेज देता है।

समिति के सदस्य का हिस्सा उसका कोई लेनदार (Creditors) कुर्क नहीं करवा सकता। किसी भी सदस्य के जमा किये हुये रुपये तथा लाभ के हिस्से को समिति ऋण के बदले में ले सकती है, कोई दूसरा लेनदार उसे कुर्क नहीं करवा सकता।

रजिस्ट्रार को यदि विश्वास हो जाये कि समिति की दशा अच्छी नहीं है तो वह उसे भग कर सकता है।

क्या कृषि साख समितियाँ सफल हो रही हैं?

साख समितियाँ सफल हो रही हैं अथवा नहीं इसमें कुछ मतभेद हो सकता है, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वे अभी तक बहुत निर्बल हैं और वे वास्तव में सहकारी नहीं हैं। एक बार बेंकिंग के एक प्रसिद्ध जानकार ने कहा था—"इन समितियों में सहकारिता के सिद्धान्तों की नितान्त अवहेलना की जाती है। ऋण ठीक समय पर कभी नहीं चुकाये जाते, आय-व्यय निरीक्षण ठीक नहीं होता तथा इन समितियों की देखभाल भी ठीक तरह से नहीं होती।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऊपर लिखे हुए दोष इन समितियो में अवश्य हैं। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि अधिकतर सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अच्छी नहीं है, किन्तु सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कर्मचारी इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं। शाही कृषि कमीशन की सम्मति है कि आन्दोलन की आर्थिक स्थिति अच्छी है। हाँ, समितियों का कार्य दोषपूर्ण है।

सहकारी कृषि साख समितियों की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को समझें। भारत में गाँव के सदस्य यह समझते हैं कि सहकारी साख समितियाँ सरकार द्वारा खोले हुये बैङ्क हैं जो उन लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वप्न में भी नहीं सोचते कि यह हमारी समिति है और हम सम्मिलित साख के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक सदस्यों में स्वावलम्बन का यह भाव जाग्रित नहीं होता तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता।

सहकारी साख समितियों को जो पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी उसके तीन

मुख्य कारण हैं—गाँव वालों का अशिक्षित होना, उनका एड़ी से चोटी तक महाजन का ऋणी तथा अत्यन्त निर्धन होना और योग्य कार्यकर्त्ताओं का अभाव। जब तक सेवा-भाव के सच्चे और ईमानदार कार्यकर्त्ता इस आन्दोलन के लिये नहीं मिलते तब तक यह पूर्णत. सफल नहीं हो सकता।

लाभ—कृषि साख समितियाँ बहुत सफल नहीं हुई हैं इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उनसे ग्रामीण जनता को कोई लाभ ही नहीं हुआ। कृषि समितियों ने बहुत सी कार्यशील पूँजी (Working Capital) इकट्ठी कर ली है जो किसानों को उचित सूद पर दी जाती है। इन समितियों की पूँजी कुल ३५ करोड़ रुपये के लगभग है। जहाँ साख समितियाँ खुल गई हैं उन क्षेत्रों में प्रतिद्वन्द्विता के कारण महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है। साधारण किसानों में सहकारिता का ज्ञान बढ़ रहा है। सदस्यों में किफायतशारी उत्पन्न हो रही है और किसान स्वावलम्बी बन रहे हैं। अशिक्षित किसान जो कि साख तथा व्यापार के विषय में नितान्त अनभिज्ञ थे, उनमें व्यापारिक ज्ञान बढ़ रहा है। बहुत से उदाहरण ऐसे हैं जहाँ कि वृद्ध पञ्चों ने इसलिए पढ़ना-लिखना सीखा कि वे समिति का कार्य भली भाँति कर सकें, कुछ शराब के पीने वालों ने केवल इस लिए शराब छोड़ दी कि जिससे वे समिति मे लिये जा सकें। सहकारी साख समिति के कारण गाँव मे भ्रातृ भाव फैलता है। यदि प्रत्येक गाँव में एक सहकारी साख समिति की स्थापना हो जावे और सफलतापूर्वक कार्य करने लगे तो ग्रामीण जनता का उद्धार हो सकता है।

भारत में कृषि साख सहकारी समितियों की संख्या १,१७००० है और उनके सदस्यों की संख्या ४८ लाख के लगभग है। इन समितियों की कार्यशील पूँजी (जिसमें हिस्सा पूँजी, रक्षित कोष, डिपाजिट और सेन्ट्रल सहकारी बैंकों से लिया हुआ कर्ज सम्मिलित है) ३५ करोड़ रुपये के लगभग है। इन अंकों को देखकर साख सहकारी समितियों के विषय में निराश होने का कोई कारण नहीं है।

बहु उद्देश्य सहकारी समितियाँ
(Multi-purpose Co operative Societies)

कुछ समय से भारत में इस बात पर बहुत जोर दिया जाने लगा है कि गाँव में एक साख सहकारी समिति के स्थान पर एक बहु-उद्देशीय-सहकारी

समिति हो जो गाँव की सर्वाङ्गीण उन्नति का प्रयत्न करे और केवल कर्जा देने का ही कार्य न करे। विद्वानों का कहना है कि केवल किसान को उचित सूद पर ऋण मिल जाने से ही उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो जावेगा। इसके लिये बहु उद्देश्य-समितियों की स्थापना की आवश्यकता होगी।

बहु-उद्देश्य समितियाँ खेती के धन्धे के लिए साख देंगी, किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए, उनकी पैदावार को बेचने, उनके लिए बढ़िया हल, बैल, बीज और खाद खरीदने, किसानों की दैनिक आवश्यकता की चीजों को उन्हें ठीक मूल्य पर दिलाने के लिए, उनसे आर्डर लेकर उन्हे वे वस्तुएँ ठीक मूल्य पर देंगी। मुकदमेबाजी को कम करने के लिये पञ्चायत स्थापित करेंगी! भूमि की चकबदी करके, अच्छे बीज, औजारों और खाद का प्रचार करके खेती की पैदावार को बढाने, खेती के अतिरिक्त बेकार समय में गौण तथा सहायक धन्धों के द्वारा उनकी आय को बढाने का प्रयत्न करेंगी और जीवन सुधार को हाथ मे लेकर स्वास्थ्य, औषधि वितरण उपचार सामाजिक कृत्यों में अधिक धन व्यय न करने तथा गाँव में सफाई रखने का प्रबन्ध करेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि बहु-उद्देश्य-समिति गाँव की सभी मुख्य समस्याओं को हल करके गाँव वालों को सुखी और समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न करेंगी। केवल साख ही नहीं देंगी वरन् गाँव की आर्थिक दशा सुधारने और सामाजिक उन्नति करने का प्रयत्न करेंगी। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गाँव की सभी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ने से ही गाँव की सर्वाङ्गीण उन्नति हो सकती है।

सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वाले सभी कार्यकर्ता इस बात पर एकमत है कि सहकारिता आन्दोलन के अधिक सफल न होने का एक यह भी कारण है कि उसने किसानों को कर्ज देने पर ही अधिक ध्यान दिया और किसान की आर्थिक स्थिति को अच्छा बनाने के लिए अन्य उपाय नहीं किये। अब भारत में सभी प्रदेशों मे बहु-उद्देश्य सहकारी समितियो की स्थापना की जा रही है।

उत्तर प्रदेश मे बहु उद्देश्य-सहकारी समितियाँ

उत्तर-प्रदेश मे बहु-उद्देश्य-सहकारी समितियों के द्वारा गाँवों की उन्नति

करने का एक व्यापक रूप से प्रयोग चल रहा है।

उत्तर प्रदेश में एक विकास योजना (Development plan) बनाई गई है, जिसका आधार बहु-उद्देश्य-सहकारी समिति है। विकास योजना इस प्रकार है.—

प्रत्येक जिले में एक जिला विकास समिति स्थापित की गई है जो कि जिले में विकास योजना को कार्यान्वित करेगी। इस समिति में जिले के सभी प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्ता तथा उन विभागों के कर्मचारी जिनका विकास कार्य से सम्बन्ध है, रक्खे गए हैं। ऊपर एक प्रदेशीय विकास बोर्ड है जो प्रदेश भर में इस कार्य की देखभाल करता है।

इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक गांव में एक बहु-उद्देश्य सहकारी-समिति स्थापित की गई है। जब गांव के ७० या ८० प्रतिशत परिवार समिति के सदस्य बन जाते हैं तभी समिति स्थापित की जाती है।

बहु-उद्देश्य-सहकारी समिति में गांव में खेती की उन्नति, दूध, घी के धन्धे की उन्नति, पशुपालन में सुधार, सूत कातने तथा कपड़ा बीनने के धन्धे तथा अन्य सहायक गृह-उद्योग धन्धों का सङ्गठन, गांव की सफाई, स्वास्थ्य-रक्षा इत्यादि का कार्य करती है। पन्द्रह या बीस गांवों के बीच में कृषि विभाग ने एक बीज गोदाम स्थापित कर दिया। यह बीज गोदाम उस क्षेत्र की बहु-उद्देश्य सहकारी समितियों को उत्तम बीज, हल इत्यादि देता है तथा खेती सम्बन्धी सलाह भी देता है। आगे चलकर योजना यह है कि उस क्षेत्र की १५ या २० समितियाँ मिलकर एक विकास यूनियन बना लेंगी और यह यूनियन इस बीज भंडार को ले लेगी। यूनियन केवल इस भंडार में बीज, औजार, खाद्य सामग्री ही नहीं रक्खेगी वरन् चर्खा, कपड़ा, शक्कर, सीमेंट, तेल इत्यादि आवश्यक पदार्थों को भी रक्खेगी जो कि समितियों के सदस्यों को बेचे जाएँगे। एक प्रकार से वह उपभोक्ता स्टोर का भी काम करेगी और सदस्यों की खेती की पैदावार को बेचने का भी काम करेगी और सदस्यों की खेती की पैदावार को बेचने का काम करेगी।

बहु-उद्देश्य-सहकारी समिति में गांव के सभी परिवारों को सदस्य बनाने का प्रयत्न किया जावेगा और ७० या ८० प्रतिशत परिवारों के सदस्य बिना

बने समिति स्थापित नहीं की जावेगी। प्रत्येक परिवार का मुखिया समिति का सदस्य होगा।

उत्तर प्रदेश में इस समय तक बीस हजार से अधिक बहु उद्देश्य सहकारी समितियाँ स्थापित हो चुकी है।

उत्तर प्रदेश मे यह आन्दोलन अभी प्रारम्भिक अवस्था मे है। इस कारण बहु-उद्देश्य सहकारी समितियाँ कहाँ तक सफल हुई हैं यह कहना कठिन है।

बहु-उद्देश्य सहकारी समितियाँ अन्य सभी प्रदेशों मे स्थापित हो चुकी हैं। पश्चिमी बगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, अजमेर, मेवाड़, बम्बई तथा मद्रास मे भी स्थापित हो चुकी है।

अभ्यास

१—सहकारिता का क्या अर्थ है?

२—उदाहरण देकर बतलाओ कि सहकारिता किसे कहते है? मान लो कि एक गाँव मे तीस किसान हर रोज अपना दूध बेचने पास के शहर मे आते है। यदि वे आपस मे समझौता कर लें कि पारी पारी से एक किसान सबों का दूध गाँव से शहर ले जाकर बेच आया करेगा तो क्या इसको सहकारिता कहेगे?

३—कृषि साख समिति और पिपुल्स बैंक (नगर साख समिति) का मुख्य कार्य क्या है और उसमे क्या अन्तर है?

४—अपरिमित और परिमित दायित्व की व्याख्या कीजिये।

५—कृषि साख समिति का सदस्य कौन हो सकता? क्या भिन्न-भिन्न गाँवों में रहने वाले लोग एक कृषि साख समिति के सदस्य हो सकते हैं?

६—साख समिति का प्रबन्ध किस प्रकार होता है? जनरल मीटिंग और पंचायत के कार्य बतलाइये।

७—कृषि साख समिति का लाभ सदस्यों मे नहीं बाँटने से और समिति के टूट जाने पर रक्षित कोष को भी सदस्यों में न बाँटने से क्या लाभ हैं?

८—साख समिति मे यह नियम क्यों बनाया गया है कि सदस्य जिस काम के लिये कर्ज ले उसी पर खर्च करे?

९—कानून के अनुसार कृषि साख समितियों को कौन सी सुविधायें प्राप्त हैं?

१०—क्या कृषि साख समितियाँ सफल कही जा सकती हैं?

११—सहकारी साख समिति क्या है ? यदि आपने एक ऐसी समिति स्थापित करने को कहा जाय तो आप कैसे आरम्भ करियेगा ? (१६४३)।

१२—सहकारिता के मुख्य सिद्धान्त क्या हैं ? इससे देश के ग्रामीणों को किस प्रकार लाभ पहुँचा है ? (१६४६)।

१३—प्राइमरी कृषि साख समिति की व्यवस्था तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये। समितियों को किन साधनों से पूँजी मिलती है ? (१६४५)।

१४—किसानों को सहकारी समितियों से जो लाभ होते हैं उनकी संक्षेप में विवेचना कीजिये (१६४६)।

१५—प्राइमरी कृषि साख समिति की व्यवस्था तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये। किसानों को इनसे जो लाभ होते हैं उनकी विवेचना कीजिये। (१६४७)

१६—साख समिति और बहु-उद्देश्य समिति में से आप किसे पसन्द करते हैं और क्यों ? आपके प्रदेश की सरकार इस ओर क्या कर रही है ? (१६५०)

१७—उत्तर प्रदेश में साख समितियों की असफलता के मुख्य कारण क्या हैं ? (१६४६)

१८—आप अपने गाँव में बहु-उद्देश्य साख समिति को किस प्रकार से सफलता पूर्वक चलायेंगे। (१६५१)

१६—आप गाँव में साख समिति किस प्रकार स्थापित करेंगे ? उसके संगठन, प्रबन्ध, चालू पूँजी और कार्यो पर प्रकाश डालिये। (१६५२)

तीसवाँ अध्याय

गैर साख कृषि सहकारी समितियाँ

(Agricultural Non-Credit Soceities)

भारत में जब सहकारिता आन्दोलन का आरम्भ किया गया था उस समय साख की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण समझी गई और वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। इसी कारण १६०४ के कानून के अनुसार केवल साख समितियों के ही स्थापित करने की सुविधा प्रदान की गई। परन्तु आगे चल कर कार्य-कर्त्ताओं को ज्ञात हुआ कि गाँव वालों का उद्धार केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही

नहीं हो जावेगा। अपनी फसल बेचने में, खेती के लिए आवश्यक चीजों को खरीदने मे व्यापारी उनको लूटते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कृषि सम्बन्धी कार्यों को सहकारी समितियों के द्वारा सुविधा-पूर्वक किया जा सकता है। यही कारण है कि पिछले वर्षों मे गैर साख कृषि सहकारी समितियों की अधिकाधिक स्थापना की गई है। फिर भी इन समितियो की सख्या साख समितियों की तुलना में नहीं के बराबर है।

साख (Credit) केवल किसान की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, अतएव साख का प्रबन्ध हो जाने में बहुत सी आवश्यकताओं मे से एक पूरा हो जाती है, किन्तु किसान की और भी आवश्यकताएँ हैं, जिनका पूरा होना आवश्यक है। सिंचाई, खेतो की चकबन्दी, स्वास्थ्य और सफाई की उन्नति, पशुओ के जीवन का बीमा, दूध धन्धा, कृषि की आवश्यक वस्तुओं को मोल लेना तथा खेती की पैदावार को बेचना—ये कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिनको सहकारी समितियों के द्वारा भली प्रकार हल किया जा सकता है। कुछ वर्षो से कृषि विभाग तथा सहकारिता आन्दोलन मे कार्य करने वालों ने इन समितियों का महत्व समझा है और अब उनकी सख्या बढ़ रही है।

अन्य देशों में प्रत्येक गाँव मे सब कार्यों के लिए केवल एक सहकारी समिति के सिद्धात को अधिकाधिक अपनाया जा रहा है। किसान की जितनी भी आवश्यकताएँ हैं उन सबको केवल एक सहकारी समिति ही पूरा करती है। उदाहरण के लिए एक समिति ही साख, क्रय विक्रय तथा स्वास्थ्य और सफाई का कार्य करती है, परन्तु भारत में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिये भिन्न-भिन्न समितियाँ एक ही गाँव मे स्थापित करने की पद्धति चल पड़ी है। सिद्धात से एक समिति जो किसान की आवश्यकताओं को पूरा करती हो, वह अधिक उपयोगी तथा साहूकार की शक्ति को नष्ट करने में अधिक सफल हो सकती है।

भारत में लगभग पाँच हजार गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ भिन्न भिन्न प्रदेशों में कार्य कर रही हैं। परन्तु अभी यह आन्दोलन निर्बल है।

सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ

(Co operative Sale and Purchase Societies).

किसानों के लिये साख के बाद, खेती की पैदावार को अच्छे मूल्य पर बेचना

तथा आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर खरीदना महत्वपूर्ण कार्य हैं । भारत में किसान को बीज, यन्त्र, खाद, बैल तथा दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुएं गाँव के बनिये अथवा दुकानदार से खरीदने पड़ते हैं । अधिकांश मे वह ऊपर लिखी हुई वस्तुओं को उधार (credit) खरीदता है और यदि वह साख समिति से ऋण लेकर भी इन वस्तुओं को खरीदे तो भी उसे उन वस्तुओं के लिए अधिक मूल्य देना पड़ता है । किसान बेचने की कला को भी नहीं जानता, इसलिए वहाँ भी वह गाँव के बनिये तथा मंडियों के दलालों और व्यापारियों द्वारा लूटा जाता है और उसको अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है ।

यदि हम चाहते हैं कि किसान की आर्थिक दशा सुधरे तो केवल साख का प्रबन्ध कर देने से काम नहीं चलेगा । उसके लिए क्रय-विक्रय समितियों की आवश्यकता होगी । नहीं तो जहाँ हम साख समितियो के द्वारा किसान को महाजन के हाथों से बचाते हैं वहाँ वही महाजन किसान को आवश्यक वस्तुएँ बेचने में और उसकी पैदावार खरीदने मे लूटता रहेगा । इस कारण क्रय विक्रय समितियाँ स्थापित किये बिना किसान की स्थिति सुधर ही नहीं सकती है ।

क्रय समितियाँ (Purchase Societies)

किसान के लिये आवश्यक वस्तुओं को खरीदने का कार्य तीन प्रकार की समितियाँ करती हैं । (१) सहकारी साख समितिया (२) सहकारी क्रय समितियां (३) सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ ।

सहकारी साख समितियो के द्वारा यह कार्य अत्यन्त सफलता-पूर्वक किया जा सकता है । समिति का जब कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिए ऋण ले तब उसे रुपया न देकर उसकी वह वस्तु खरीद कर दी जावे । कृषि साख सहकारी समितियाँ बीज, खाद और हल इत्यादि इकट्ठे खरीद कर सदस्यों को उचित मूल्य पर देती हैं ।

जहाँ शुद्ध क्रय समितियाँ स्थापित की गई हैं, वहा यह तरीका है कि समिति का मन्त्री सदस्यों से आर्डर इकट्ठे कर लेता है । सब आर्डर इकट्ठे कर लेने पर चीज एक साथ मँगवा कर सदस्यो में बाँट दी जाती है । केवल नाम मात्र का कमीशन ले लिया जाता है । इससे यह लाभ होता है कि समिति थोक मूल्य पर वस्तुएँ खरीदती है और सदस्यों को वे वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिल जाती हैं ।

क्रय सहकारी समिति की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि मन्त्री अथवा प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य बाजार का अध्ययन करते रहें। बाजार भाव के उतार-चढाव का अध्ययन करने से यह लाभ होगा कि समिति मन्दी के समय उन वस्तुओं को खरीद कर रख लेगी जिनकी सदस्यों को बहुत आवश्यकता पड़ती है। समिति के कार्य कर्त्ताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि आरम्भ से केवल उन्हीं वस्तुओं को खरीदा जावे जिनकी सदस्यों में अधिक माँग हो

क्रय समिति परिमित दायित्व* (Limited liability) वाली होती हैं। प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक हिस्सा खरीदना पड़ता है। सब सदस्यों की एक साधारण सभा होती है जो फिर पञ्चायत अथवा प्रबन्धकारिणी समिति का चुनाव करती है। यह पञ्चायत ही समिति के कार्य का सचालन करती है। यदि समिति बहुत बड़ी होती है तो एक वैतनिक मैनेजर रखा जाता है, नहीं तो अवैतनिक मन्त्री ही कार्य चलाता है।

सदस्यों के आर्डर आ जाने पर मैनेजर उन आर्डरों को पचायत के सामने रख देता है। पञ्चायत के आदेशानुसार मैनेजर पञ्चायत के एक सदस्य की सहायता से वस्तुएँ खरीदता है। समिति उन वस्तुओं को सदस्यों के हाथ वेच देती है। लाभ सदस्यों मे खरीद के हिसाब से बाँट दिया जाता है।

शुद्ध क्रय समितियाँ भारत मे बहुत कम पाई जाती हैं। बम्बई प्रदेश में कुछ क्रय समितियाँ खाद, बीज तथा खेती के यन्त्रो के खरीदने के लिये स्थापित की गई थीं किन्तु उनकी दशा अच्छी नहीं है, वे सफल नहीं हुईं। इन समितियों की असफलता का मुख्य कारण दोषपूर्ण प्रबन्ध और सदस्यों की उदासीनता है। सदस्यों के उदासीन रहने का कारण यह भी है कि शुद्ध क्रय समितियाँ वर्ष में कुछ ही समय कार्य करती है। खेती के लिये आवश्यक वस्तुएँ खरीद लेने के उपरान्त उनका कोई कार्य नहीं रह जाता। जो समितियाँ क्रय विक्रय दोनों ही कार्य कर रही हैं वे कुछ सफल अवश्य हुई हैं।

---

*परिमित दायित्व :—समिति के ऋण को चुकाने की सदस्यों की जिम्मेदारी हिस्से के मूल्य तक परिमित होती है।

बेचती है। समिति के सदस्य उन्हें एक-सा अच्छा बीज देते हैं। फसल काटने पर सदस्य अपनी कपास समिति को दे देते हैं। समिति उन्हें काम चलाने के लिये कुछ रुपया पेशगी दे देती है और फसल को इकट्ठी करके अपने गोदाम में रखती है। समिति के कार्यकर्ता बाजार का अध्ययन करते रहते हैं और बम्बई तथा अन्य बाजारों में कपास को ऊँचे दामों पर बेंच देते हैं। किसान फसल काटते ही उसे बेच देता है क्योंकि उसे रुपये की तुरन्त आवश्यकता होती है, परन्तु समिति रुक सकती है, इस कारण उसे पैदावार का अच्छा मूल्य मिलता है। गुजरात की समितियों ने एक संघ कायम किया है जो इन समितियों की देख भाल करता है।

बङ्गाल मे जूट समितियों ने अपनी एक होल-सेल सोसायटी बनाई है। यह होल-सेल सोसायटी एक विशेष नौकर रखती है जो कि बाजार भाव का अध्ययन करता है और होल-सेल सोसायटी से सम्बन्धित समितियों को सलाह देता है।

उत्तर प्रदेश और बिहार में गन्ना बेचने वाली समितियाँ अधिक सख्या में स्थापित हो गई हैं। इन समितियों का मुख्य कार्य यह है कि कृषि विभाग के परामर्श के अनुसार गन्ने की खेती की उन्नति करना तथा मिलो मे समझौता करके उनको सदस्यों की पैदावार बेच देना। गन्ने का मूल्य तो सरकार निश्चय करती है, इस कारण कीमत के तय करने मे कोई अड़चन नहीं होती। अभी थोड़ा समय हुआ उत्तर प्रदेश में विशेष कर इटावा तथा पश्चिमी जिलों मे बहुत बड़ी सख्या मे घी समितियाँ स्थापित हो गई हैं। ये समितियाँ सदस्यों का घी इकट्ठा करके बेचती हैं।

उत्तर प्रदेश में लगभग चार हजार गन्ना बेचने वाली सहकारी समितियाँ हैं जो अपने सदस्यों का गन्ना मिलों को बेचती हैं।

गन्ना समितियों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में लगभग एक हजार घी समितियाँ हैं जो आगरा, एटा, इटावा, मेरठ, मैनपुरी, बुलन्द शहर, बाँदा, और जालौन जिलों से फैली हुई हैं। ये समितियाँ अपने सदस्यों का घी बेचती हैं। इन समितियों के दस हजार से ऊपर सदस्य हैं और प्रतिवर्ष लाखों रुपये का घी बेचती हैं।

खेती की पैदावार विशेषकर अनाज को बेचने के लिए प्रदेश मे दो सौ के

लगभग सहकारी विक्रय यूनियन स्थापित की गई हैं जो सदस्यों की पैदावार को मंडी में बेचती हैं। ये विक्रय यूनियन मंडियों में स्थापित हैं।

अनाज की बिक्री के अतिरिक्त प्रदेश में आलू, फल और अंडों की बिक्री के लिये भी कुछ सहकारी विक्रय समितियां स्थापित हुई हैं।

देहरादून में बरसाती चावल की भी एक विक्रय समिति स्थापित हो गई है जो १५ गाँवों में उत्पन्न होने वाले बरसाती चावल को बेचती है।

इनके अतिरिक्त पूर्वी पंजाब में कुछ सहकारी समिति कमीशन (शाप) दूकान स्थापित की गई हैं जो सदस्यों और गैर सदस्यों की पैदावार को बेचती हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वी पंजाब में नव विक्रय समितियाँ भी स्थापित की गई हैं जो अधिक सफल नहीं हुईं। मदरास, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा तथा उत्तर-प्रदेश में भी क्रय विक्रय समितियाँ हैं किन्तु ये अधिक सफल हुई हैं।

विक्रय-समितियों का संगठन

विक्रय समितियाँ परिमित दायित्व (Limited liability) वाली होती हैं। प्रत्येक सदस्य को एक हिस्सा खरीदना होता है। किन्तु विक्रय समितियाँ तभी सफल होती हैं जब कि उनके सदस्य अधिक हों। इसी कारण विक्रय समितियाँ तीन चार गाँवों की पैदावार बेचती हैं। छोटी समितियों के सदस्य वे ही हो सकते हैं जो कि फसल स्वयं उत्पन्न करते हों। जो लोग कि कुछ बेचना नहीं चाहते उन्हें सदस्य नहीं बनाया जाता। सदस्यों की जनरल मीटिंग एक मैनेजिंग कमेटी का चुनाव करती है यही मैनेजिंग कमेटी समिति का कार्य संचालन करती है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि मैनेजिंग कमेटी में वे ही लोग रक्खे जावें जो व्यापार से परिचित हों। इन समितियों को अधिक राशि में वस्तुओं को बेचने से ही लाभ हो सकता है। इसलिये जितने भी अधिक सदस्य हों अच्छा है। प्रत्येक सदस्य केवल समिति के द्वारा ही अपनी फसल बेच सकता है, स्वतन्त्र रूप से नहीं। इस नियम का कड़ाई के साथ पालन होना चाहिये, नहीं तो उस गाँव के व्यापारी समिति को भंग करने के लिये सदस्यों को उनकी पैदावार का अधिक मूल्य उन्हें देकर उन्हें फोड़ लेंगे।

फसल काटने पर सदस्य अपनी पैदावार समिति में जमा कर देता है। समिति उसे काम चलाने के लिये अनुमानतः आधा मूल्य उसी समय दे देती

है और शेष पैदावार के बिक जाने पर चुकाती है। समिति इकठ्ठी वस्तु को बाजार में यथा समय अच्छे दामों पर बेचती है। समिति लाभ का २५ प्रतिशत नियमानुसार रक्षित कोष मे जमा करती है, शेष सदस्यों में उनकी पैदावार के अनुपात से बाँट देती है। इन समितियों को व्यापारियों से प्रतिद्वन्द्विता करनी पड़ती है। इस कारण अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इन्हे होल सेल सोसायटी* बना लेनी चाहिये जिसके वे अधिक राशि में पैदावार को बेचकर व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता मे टिक सकें। यह होल सेल सोसायटी समितियों को व्यापारिक परामर्श देती रहेगी।

क्रय-विक्रय समितियों के सामने निम्नलिखित कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं।

(१) छोटी होने पर वे व्यापारियों की प्रतिद्वन्द्विता में टिक नहीं सकतीं। (२) इन समितियो मे व्यक्तियों को सदस्य बनाने मे यह खतरा है कि व्यापारी अपने आदमियो को उनका सदस्य बनाकर समिति को भग करने का प्रयत्न करते हैं। अस्तु, केवल साख सहकारी समितियाँ ही उसकी सदस्य बनाई जावें किन्तु यह नियम रक्खा जावे कि जो साख समिति के सदस्य नहीं हैं उनकी पैदावार को समिति कमीशन पर बेचेगी (३) इन समितियों के सामने पूँजी की समस्या भी खड़ी होती है। समिति को निजी पूँजी बहुत कम होती है और सेन्ट्रल बैङ्क सहकारी पूँजी के बराबर ही ऋण देते हैं। किसान कुछ रुपया पेशगी चाहता है अतएव पूँजी की कमी रहती है।

क्रय-विक्रय समितियों की ओर सरकार तथा जनता दोनों को ही ध्यान देना चाहिये क्योंकि बिना उसके यथेष्ट सख्या में स्थापित किये किसानों को दलालो तथा व्यापारियों की लूट से नहीं बचाया जा सकता। और जब तक उसे अपनी पैदावार का उचित मूल्य नहीं मिलता तब तक उसकी आर्थिक स्थिति नहीं सुधर सकती।

भूमि की चकबन्दी करने वाली समितियाँ
(Consolidation of Land Holdings Societies)

यह तो पहले ही लिखा जा चुका है कि भारत मे किसानो के पास जो भी

*होल सेल सोसायटी—थोक बिक्री करने वाली समिति जिससे गाँव की समितियाँ सम्बन्धित होती हैं।

भूमि है वह छोटे-छोटे खेतों में बँटी हुई है और ये खेत एक दूसरे से दूर हैं। बिखरे हुये छोटे-छोटे खेतो पर अच्छी तरह से खेती नहीं हो सकती क्योंकि किसान को इन बिखरे हुये खेतों पर खेती करने से बहुत सा समय, शक्ति, श्रम तथा पूँजी नष्ट होती है। यदि सब खेत एक ही स्थान पर हों तो किसान कम खर्च में अधिक पैदावार उत्पन्न कर सकता है। अर्थशास्त्र का कहना है कि जब तक बिखरे हुये खेतो की समस्या को हल नहीं किया जाता तब तक खेती का सुधार हो ही नहीं सकता। भारत में सबसे पहले पूर्वी पंजाब में सहकारिता विभाग ने चकबंदी सहकारी समितियाँ स्थापित करके बिखरे हुए खेतों की समस्या को हल करने का सफल प्रयत्न किया। अब हम चकबन्दी सहकारी समितियों के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से लिखते हैं।

खेती की चकबन्दी करने का सिद्धान्त यह है कि गाँव मे जितने भी खेतों के मालिक हैं उन सबके खेतों को इस तरह अदल-बदल दिया जावे कि हर एक को अपने सब खेतों के बराबर ही भूमि एक चक में या दो या तीन चकों में मिल जावे।

चकबन्दी समिति की स्थापना

किसी गाँव में चकबन्दी समिति स्थापित करने के पहले सहकारिता विभाग के कर्मचारी गाँव में जाकर किसानों को बिखरे हुए खेतों से होने वाली हानियाँ और चकबन्दी के लाभ समझते हैं। यदि सहकारिता विभाग का कर्मचारी प्रचार करने के बाद यह समझता है कि उस गाँव के लोग चकबन्दी कराने के लिये राजी हैं तो वह एक सभा करता है और गाँव वालों को बतलाता है कि चकबन्दी किस प्रकार की जावेगी। यदि सब गाँव वाले तैयार होते हैं तो समिति बना ली जाती है और पंचायत चुन ली जाती है। समिति का सदस्य मौरूसी किसान हो सकता है।

समिति के सदस्यों को निम्नलिखित बातें स्वीकार करनी पड़ती हैं :—

१—खेतों की चकबन्दी करने के लिए बिखरे हुए खेतों का नया बँटवारा होना जरूरी है।

२—यदि नये बँटवारे को दो तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह बँटवारा सब को स्वीकार करना होगा।

३—नये बँटवारे के अनुसार वह अपने खेतो को सदा के लिए छोड़देगा।

४—यदि किसी प्रकार का झगड़ा खड़ा होगा तो पंच नियुक्त कर दिये जावेंगे और उनका फैसला सब को मानना होगा।

चकबन्दी करने में भी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। सर्वप्रथम सहकारिता विभाग का कर्मचारी गॉव मे कितनी प्रकार की भूमि है, यह निश्चित करता है। नये बँटवारे मे जमीन की भिन्न-भिन्न उपजाऊ शक्ति का ध्यान रखना पड़ता है, कुओं मे किसानो का हिस्सा निर्धारित किया जाता है और पेड़ों (यदि खेतों पर हों) का मूल्य निश्चित करने के बाद नये बँटवारे का नकशा बनाया जाता है। यह नकशा सब सदस्यो के सामने रखा जाता है। यदि सब सदस्य नये बँटवारे को मान लेते हैं तब तो वह लागू हो जाता है, नहीं तो फिर से नया नकशा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी-कभी तीन-चार बार नक्शे तैयार करने पडते हैं फिर भी सारा परिश्रम केवल एक किसान के हठ से नष्ट हो जाता है।

यद्यपि नियम २ के अनुसार यदि दो तिहाई सदस्य नये बँटवारे को मान लें तो बाकी को उसे मानना पड़ता है, परन्तु इस नियम को काम मे नहीं लाया जाता और किसी को भी अपना खेत छोडने पर विवश नहीं किया जाता। ऐसा करने से काम बहुत धीरे होता है। पूर्वी पजाब मे इस नियम को कड़ाई के साथ काम में लाने लगे हैं। जब नये बँटवारे को सब लोग मान लेते हैं तो उन्हे नये खेत दे दिये जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

किन्तु चकबन्दी कराने मे बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती है। जिस योजना मे सब किसानों का राजी करना जरूरी हो उसका सफल होना सन्देह-जनक हो जाता है। बुड्ढे किसान अपने बाप-दादों की जमीन छोड़ना ही नहीं चाहते, हर एक किसान को अपनी जमीन अधिक उपजाऊ मालूम होती है। जिस किसी के पास एक या दो खेत है उसे चकबन्दी से कोई लाभ नहीं दिखाई देता। मोरूसी काश्तकार यह समझता है कि यदि उसने अपना खेत बदल लिया तो उसके सारे हक छिन जावेंगे। गॉव का पटवारी भी चकबन्दी का विरोध करता है क्योंकि वह समझता है कि चकबन्दी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। इन कठिनाइयो के रहते हुए भी यदि कार्यकर्ता धैर्य तथा सहानुभूति से कार्य करें तो वह किसानों को राजी कर सकते हैं।

चकवन्दी आन्दोलन का प्रारम्भ पूर्वी पञ्जाब में हुआ और वहीं वह सबसे अधिक सफल हुआ है। अनुमान किया जाता है कि विभाजन के पूर्व प्रतिवर्ष दो लाख एकड भूमि की पूर्वी पञ्जाब मे चकबन्दी हो गई थी। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर तथा बिजनौर जिलों मे चकबन्दी समितियाँ स्थापित की गई हैं जो सफलतापूर्वक चकवन्दी का काम कर रही हैं, किन्तु इनकी सख्या अधिक नहीं है। बड़ौदा और काश्मीर में भी चकवन्दी समिनियाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

कुछ विद्वानों का कहना है कि बिखरे खेतों की समस्या ऐसी विकट है कि केवल सहकारी चकवन्दी समितियों से ही वह हल न होगी, क्योंकि समितियो के द्वारा कार्य बहुत धीरे होता है। अतएव उनकी राय में सरकार एक कानून बनाकर बिखरे हुये खेतों की चकवन्दी कर दे। मध्यप्रदेश, पूर्वी पञ्जाब तथा उत्तर-प्रदेश मे इस आशय का एक कानून बनाया गया है।

सहकारी कृषि समितियाँ

(co-operative Farming Societies)

चकवन्दी के पश्चात् भी खेतों का क्षेत्र इतना बडा नहीं होगा कि बड़ी मात्रा की खेती की जा सके अथवा उन्नत कृषि साधनों का उपयोग किया जाय। इसके अतिरिक्त शरणार्थियों को खेती के क्षेत्र मे बसाने तथा देश की भोजन सम्बन्धी कमी पूरी करने के लिये अधिक भूमि मे खेती करने की आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश की सरकार इस समय तराई, गगा खादर और बुन्देलखण्ड के प्रदेशों में ट्रैक्टरो द्वारा भूमि तैयार करके सहकारी ढङ्ग पर खेती करने के लिये किसानों को जमीन दे रही है। प्रत्येक किसान सहकारी कृषि समिति का सदस्य होता है। समिति उसके लिये बीज, औजार आदि का प्रबन्ध करती है तथा उनकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी करती है। किसान को अपने माल की बिक्री समिति के द्वारा ही करनी पड़ती है। समिति किसान की फसल-योजना का भी निश्चय करती है। गङ्गा खादर में प्रत्येक परिवार को दस-दस एकड़ भूमि और बैल खरीदने के लिये पेशगी रुपये दिये गये हैं। प्रदर्शन और बीज के सहकारी फार्म खोले जा रहे हैं।

अन्य-प्रदेश में जो सहकारी खेती के प्रयोग हो रहे हैं। कुछ विद्वानों का

कथन है कि इसके स्थान पर रूसी ढङ्ग पर कृषि व्यवस्था होनी चाहिये। उनके अनुसार सहकारी खेती असफल सिद्ध होगी। कम से कम उन क्षेत्रों में जहाँ खेती हो रही है इसकी असफलता रहेगी। दर-असल सहकारी खेती का प्रयोग होना चाहिये तभी सफलता का पता चलेगा।

रहन-सहन सुधार समितियाँ
(Better Living Societies)

रहन-सहन सुधार समितियाँ (Better living Societies) सर्वप्रथम पूर्वी पञ्जाब में स्थापित की गई और क्रमशः ये अन्य प्रदेशों मे स्थापित होती जा रही हैं।

रहन-सहन सुधार समितियों का प्रधान उद्देश्य गाँवों में प्रचलित बुरी रस्मों को बन्द करना, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए कर्ज लेकर फिजूल खर्च करने की आदत को रोकना, गाँव मे सफाई रखना, खेती बारी को उन्नत करने के उपायों का प्रचार करना, कुओं की मरम्मत करवाना, गाँव की गलियों को ठीक करना, खाद के गड्हे बनवाना, ट्रेंड दाइयों को गाँव में रखना, घरों में हवा तथा रोशनी के लिये खिड़की तथा रोशनदान लगाने का प्रचार करना तथा जेवर पर व्यय न करने के लिये गाँव वालों को समझाना है।

इन समितियों का सङ्गठन बहुत सहल है। सदस्यों को हिस्सा नहीं खरीदना पड़ता और न समिति की कोई हिस्सा पूँजी (Share capital) ही होती है। प्रत्येक गाँव का रहने वाला जो समिति के सिद्धात और नियमों का पालन करने को तैयार हो वह समिति का सदस्य बन सकता है। सदस्य को केवल नाम मात्र की प्रवेश फीस देनी होती है। सदस्यों से कोई चन्दा भी नहीं लिया जाता। साधारण सभा (General meeting) जिसमे सब सदस्य होते हैं, कुछ उप नियम बनाती है जिनका पालन प्रत्येक सदस्य के लिये अनिवार्य होता है। उदाहरण के लिये समिति यह निश्चय कर देगी कि शादी, मृत्यु तथा अन्य धार्मिक कार्यों पर अधिक से अधिक एक सदस्य कितना रुपया खर्च कर सकता है। जो भी सदस्य इस नियम की अवहेलना करेगा उसे दण्ड स्वरूप जुर्माना देना होगा। प्रतिवर्ष गाँव के सुधार के लिये समिति एक वार्षिक योजना स्वीकार करती है और उसके सम्बन्ध में नियमादि बना देती है। जो भी सदस्य उन

नियमों का पालन नहीं करता उनको दण्ड दिया जाता है। प्रति वर्ष गाँव की सफाई का प्रोग्राम बनाया जाता है, सदस्यों को अपनी खाद गड्ढों मे रखने के लिये कहा जाता है। रहन-सहन सुधार समितियाँ (Better Living Societies) वास्तव में ग्राम-सुधार कार्य को करती हैं। इनके द्वारा ग्राम-सुधार कार्य अधिक सगठित तथा सुचारु रूप से चल सकता है।

पञ्जाब और उत्तर प्रदेश मे ये समितियाँ अधिक सफल हुई हैं और सख्या में अधिक हैं। पूर्वी पञ्जाब के सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन गाँवों में समितियाँ स्थापित हो गई हैं वहाँ के रहने वालों को उनके द्वारा हजारों रुपये की बचत होती है। जो भी इन समितियो के सदस्य होते हैं वे नियमानुसार इस प्रकार अपव्यय कर ही नहीं सकते, साथ ही वे अन्य किसी भी गाँव वाले के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते, जहाँ इस प्रकार अपव्यय किया जावे। इस प्रकार समिति का प्रभाव गैर सदस्यों पर भी पड़ता है। पूर्वी पञ्जाब तथा उत्तर प्रदेश मे ये समितियाँ गाँव की सफाई करवाती हैं, गलियो को साफ तथा एक सा करवाती हैं तथा गाँव वालों को हवा तथा रोशनी का महत्त्व बतलाकर मकानों मे खिड़की और रोशनदान लगवाती हैं। पूर्वी पञ्जाब मे ये समितियाँ जेवर के बनवाने का भी विरोध करती है क्योंकि इससे रुपये का नुकसान तो होता ही है, साथ ही चोरी का भी भय रहता है। उत्तर प्रदेश तथा पूर्वी पञ्जाब दोनों ही में ये समितियाँ सदस्यों को खाद गड्ढों मे रखने के लिये विवश करती हैं जिससे कि गाँव गन्दा न हो और खाद उत्तम तैयार हो। पञ्जाब में एक समिति ने गोबर के कन्डे न बनाने का और सारे गोबर की खाद बनाने का निश्चय किया है। पूर्वी पञ्जाब में तीन सौ से ऊपर रहन-सहन सुधार समितियाँ किसी न किसी रूप में ग्राम सुधार कार्य कर रही हैं।

उत्तर प्रदेश में रहन सहन सुधार समितियों की सख्या पूर्वी पञ्जाब से बहुत अधिक है और साथ ही वे पूर्वी पञ्जाब से अधिक क्रियाशील भी हैं। ऊपर लिखे हुये कार्यों के अतिरिक्त वे कहीं कहीं अस्पताल चलाती हैं, प्रौढ़ों के लिये रात्रि पाठशालाएँ खोलती हैं, ट्रेंड दाइयाँ रखती हैं, अच्छा बीज खरीद कर बेंचती हैं और कुएँ बनवाती हैं। उत्तर प्रदेश में रहन-सहन सुधार समितियाँ प्रदेश के पूर्वीय भाग में अधिक हैं। उत्तर प्रदेशीय सहकारिता विभाग ने परतापगढ़ तथा

मसौधा (फैजाबाद) में रहन-सहन सुधार समितियों (परतापगढ में १५० के लगभग तथा मसौधा में ७० के लगभग समितियाँ हैं जो ग्राम-सुधार कार्य करती हैं) के द्वारा सगठित रूप में ग्राम सुधार कार्य किया है और उनमें उसे सफलता भी मिली है।

यदि देखा जावे तो रहन-सहन सुधार समिति अत्यन्त उपयोगी संस्था है और ग्राम सुधार कार्य में इसका बहुत उपयोग हो सकता है।

उपभोक्ता सहकारी भंडार*

(Consumers' Co-operative Stores)

मनुष्य समाज का प्रत्येक सदस्य उपभोक्ता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करना पड़ता है, इस कारण प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ वस्तुओं का उप भोग करना होता है। यदि देखा जावे तो सम्पत्ति का उत्पादन करने वालों तथा उसको उपभोग करने वालों का घनिष्ट सम्बन्ध है। वे एक दूसरे पर निर्भर हैं किन्तु उत्पादन करने वालों के बीच मे इतने दलाल (Mddlemen) हैं कि वे एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं। व्यापारी (दलाल) वस्तुओं के उत्पन्न करने वालों को उनका जो मूल्य देते हैं उससे बहुत अधिक मल्य उपभोक्ताओं से वसूल करते हैं। यही नहीं कि वस्तुओं का मूल्य अधिक देना पड़ता है, वरन् वस्तुओं में मिलावट भी की जाती है। निर्धन उपभोक्ताओं जैसे किसान और मजदूर को ये व्यापारी (अर्थात् दूकानदार) खूब ही ठग ते हैं। विशेषतः औद्योगिक केन्द्रों में काम करने वाले मजदूर किसी बनिये से ही अपनी सामग्री उधार खरीदते हैं और वेतन मिलने पर दाम चुका देते हैं। बनिये इन्हें खूब लूटते हैं। उन्हें दूकान में जो सबसे रद्दी वस्तु होती है उसे अधिक मूल्य पर देते हैं। सहकारी भंडार इन दलालों (व्यापारियों) को अपने स्थान से हटा कर उपभोक्ताओ को उचित मूल्य पर अच्छी चीज देने में सफल हुए हैं।

ससार को सहकारी स्टोर्स जैसी उपयोगी सस्था देने का श्रेय इगलैंड के राकडेल नामक स्थान के अट्ठाइस बुनकरों को है। सन् १८४४ ई० में राकडेल

*सहकारी भंडार —ऐसी दूकान जिसको बहुतों से सदस्यों ने अपनी आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर प्राप्त करने के लिये स्थापित किया हो।

के उन अट्ठाइस फलालैन बुनने वालों ने जो कि अत्यन्त निर्धन थे, एक दूकान खोली। उन २८ जुलाहों (बुनकरों) ने एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रक्खा। २ पैसे प्रति सप्ताह किश्त लेकर दो वर्षों मे २८ पौंड पूँजी इकट्ठी की और आरम्भ में केवल पाँच वस्तुओं (मक्खन, शक्कर, ओट का आटा, गेहूँ का आटा तथा मोमबत्ती) को वेचने का प्रबन्ध किया। स्टोर्स सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुयें शुद्ध तथा तौल में पूरी होती थीं। प्रत्येक सदस्य का एक वोट था। लाभ खरीदारी के अनुपात में बाँटा जाता था। उदाहरण के लिए एक सदस्य ने वर्ष में पचास पौंड की चीज और दूसरे ने सौ पौड की खरीदी तो दूसरे को दुगुना लाभ मिलता था। सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपने लाभ का हिस्सा स्टोर्स में जमा करा दें। इस प्रकार स्टोर्स की पूँजी बढती गई। सदस्यों को उस जमा किये हुये रुपये पर सूद मिलता था।

राकडेल स्टोर्स सफल हो गया, क्रमशः स्टोर्स सब वस्तुएँ सदस्यों को वेचने लगा। राकडेल स्टोर्स की इस आश्चर्यजनक सफलता को देखकर इंगलैंड में शीघ्र ही बहुत से स्टोर्स खुल गये।

इन स्टोर्स की सफलता देखकर फुटकर विक्रेता (दूकानदार) चौंके और उन्होंने उनका विरोध करना शुरू किया। उन्होंने मिलकर थोक व्यापारियों पर जोर डाला कि वे स्टोर्स को अधिक मूल्य पर वस्तुएँ दें। अब सहकारी स्टोर्स के सामने एक कठिन समस्या उपस्थित हुई। किन्तु उन्होंने आपस में मिल कर होल-सेल सोसायटी स्थापित कर ली। होल-सेल सोसायटी सीधे कारखानों से वस्तुएँ मोल लेकर स्टोर्स को थोक मूल्य पर वेचती हैं। इस प्रकार स्टोर्स ने थोक व्यापारियों के लाभ को भी छीन लिया। प्रत्येक स्टोर्स इस होल-सेल-सोसायटी का सदस्य होता है। सोसायटी का वार्षिक लाभ स्टोर्स में अपनी खरीदारी के अनुपात में बाँट दिया जाता है। अन्त मे होल-सेल सोसायटी ने उन वस्तुओं को जिनको स्टोर्स खरीदते थे स्वय ही कारखाने खडे करके बनाना आरम्भ कर दिया। बूट, साबुन, कपड़ा धोने का साबुन, मोजे, बनियाइन, कपड़ा, फर्नीचर, सिगरेट, लोहे, टिन की वस्तुएँ, छापेखाने, तेल, आटा, मक्खन, मोमबत्ती तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ बनाने के कारखाने खोले गये। सोसायटी ने अनाज, तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिये फार्म खोले। आसाम में चाय के बाग मोल लिये। कहने

का तात्पर्य यह है कि वह प्रत्येक वस्तु को स्वय उत्पन्न करने लगी। इस प्रकार उपभोक्ताओं ने स्टोर्स को स्थापित करके फुटकर दूकानदारी, थोक व्यापारियों तथा कारखाने के लाभ को भी छीन लिया।

सहकारी स्टोर्स (भंडार) के मुख्य-नियम

(१) सहकारी स्टोर्स परिमित दायित्व (Limited Liability) वाली संस्था होती है।

(२) प्रत्येक सदस्य को स्टोर्स के हिस्से खरीदने होते हैं, किन्तु वोट देने का अधिकार हिस्से के हिसाब से नहीं होता है। प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट देने का ही अधिकार होता है।

(३) प्रत्येक सदस्य को उन वस्तुओं को जो स्टोर्स बेचता है, स्टोर्स से ही खरीदनी पड़ती है।

(४) स्टोर्स उधार नहीं बेचता और बाजार भाव पर ही शुद्ध और अच्छी वस्तुएँ देता है। भाव में कमी नहीं करता।

(५) एक चौथाई लाभ रक्षित कोष में जमा किया जाता है और शेष सदस्यों में उनकी खरीदारी के अनुपात में बाँट लिया जाता है।

(६) सदस्यों की सभा जनरल मीटिंग कहलाती है। स्टोर्स की नीति वही निर्धारित करती है और उसके प्रबन्ध करने के लिये एक प्रबन्धकारिणी समिति (Managing Committee) चुन देती है। प्रबन्धकारिणी समिति स्टोर्स का प्रबन्ध करती है।

भारत में उपभोक्ता भण्डार

भारत में अभी तक उपभोक्ता स्टोर्स असफल हो रहे हैं। यदि कहीं-कहीं थोडे से स्टोर्स सफल दृष्टिगोचर होते हैं तो भी आन्दोलन सफल नहीं कहा जा सकता। अधिकतर कालिजों और रेलवे के स्टोर्स सफल हुये है। इन स्टोर्स को दूकानदारों से प्रतिस्पर्धा नहीं करनी पड़ती तथा उन्हें बहुत सी अन्य सुविधाएँ प्राप्त होती हैं।

भारत में प्रथम योरोपीय महायुद्ध के समय बहुत से स्टोर्स खोले गये। क्योंकि उस समय भोज्य पदार्थों का नियन्त्रण सरकार ने अपने हाथ में ले लिया था और इन वस्तुओं का मूल्य बहुत बढ गया था। किन्तु युद्ध के उपरान्त सर-

कारी नियन्त्रण हट गया और कुछ समय के बाद वस्तुओं का मूल्य भी घट गया। स्टोर्स की सख्या घटने लगी। बहुत से स्टोर्स बन्द हो गये और बहुतों का दिवाला निकल गया। सन् १६३६ के उपरान्त युद्ध के कारण फिर हजारों की सख्या में स्टोर्स खुल गये हैं किन्तु कन्ट्रोलों के समाप्त हो जाने पर उनकी क्या दशा होगी यह कह सकना कठिन है। मद्रास में होल-सेल सोसायटी भी बन गई है।

भारत मे भण्डारों की असफलता के मुख्य कारण

यह तो सर्वविदित है कि धनी व्यक्ति तो भंडार की ओर आकर्पित नहीं होते क्योंकि यदि उन्हे अपनी वस्तुओं की खरीदारी पर वर्ष के अंत में कुछ लाभ मिलता है तो वह उनके लिये कोई अधिक बचत नहीं होती। इगलैण्ड में स्टोर्स आन्दोलन ने अधिकतर मजदूरों और निचले मध्यवर्ग के लोगों को आकर्पित किया है। भारत में कारखानों के मजदूर अशिक्षित और निर्धन हैं इस कारण सङ्गठन के महत्व को नहीं समझते। वे अधिकतर दूकानदारों के ऋणी हैं। साथ ही वे स्थायी रूप से कारखानों में काम नहीं करते। कुछ वर्षों के बाद वे अपने गाँवों को चले जाते हैं। इस कारण वे स्टोर्स के हिस्से लेकर उसके सदस्य नहीं बनना चाहते।

रहा मध्यवर्ग वह भी स्टोर्स की ओर आकर्पित नहीं होता क्योंकि व्यापारिक तथा औद्योगिक केन्द्रों में प्रत्येक वस्तु की इतनी अधिक दूकानें होती हैं कि थोक और फुटकर मूल्य में अधिक अन्तर नहीं होता, प्रत्येक दूकानदार महीने के अन्त में मूल्य लेता है और परचूनी वाले घर पर ही सामान पहुँचा देते हैं। ये सुविधाएँ स्टोर्स नहीं दे सकते।

भारत में सहकारी स्टोर्स के साथ पूँजी की भी कठिनाई होती है। सदस्यों के लिये हुए हिस्सों से इतनी पूँजी इकट्ठा नहीं होती कि काम चल जाए और सेन्ट्रल तथा डिस्ट्रिक्ट बेंक उन्हें ऋण नहीं देते। एक कमी और है जिसके कारण भारत में स्टोर्स आन्दोलन पनप नहीं सका वह है होल-सेल सोसायटी की कमी। स्टोर्स थोक व्यापारियों से माल खरीदते हैं पर थोक व्यापारी उनसे मूल्य अधिक लेते हैं इस कारण स्टोर्स को अधिक लाभ नहीं हो सकता। यदि होल-सेल सोसायटी स्थापित हो जावें तो थोक व्यापारियों का लाभ भी सदस्यों के लिये सुरक्षित किया जा सकता है।

ऊपर लिखे कारणों से स्टोर्स आन्दोलन भारत में न फैल सका, अब हम उन कारणों को लिखते हैं जिनसे वे थोड़े से स्टोर्स जो खोले गए थे असफल हो गये।

स्टोर्स की असफलता का मुख्य कारण यह है कि सदस्य स्टोर्स आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि स्टोर्स सस्ती चीजें बेचने के लिये खोला गया है। इसका फल यह होता है कि जब बाजार भाव सस्ता हो जाता है तो स्टोर्स की दशा खराब हो जाती है और सदस्य स्टोर्स में चीजें न खरीद कर दूकानदार से खरीदने लगते हैं। स्टोर्स असफल हो जाता है।

सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुएँ बाजार भाव पर बेची जायें किन्तु चीजें अच्छी हों और तौल में पूरी हों। असफलता का दूसरा मुख्य कारण है सौदा उधार देना। स्टोर्स को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियों से माल उधार लेना पड़ता है।

असफलता का तीसरा मुख्य कारण प्रबन्ध का ठीक न होना और व्यय का अधिक होना है। सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रबन्धकारिणी समिति तथा सदस्य स्टोर्स के कार्य में दिलचस्पी नहीं लेते और न अपना समय ही देते हैं। फल यह होता है कि वैतनिक मैनेजर तथा सेल्समेन ही स्टोर्स के कर्ताधर्ता बन जाते हैं।

१९३९ के उपरान्त महायुद्ध के कारण खाने-पीने की चीजों का दाम अब बहुत बढ़ गया और कहीं-कहीं उन वस्तुओं का मिलना भी कठिन हो गया तब सहकारी स्टोर्स स्थापित करने की ओर लोगों का ध्यान गया। इसी कारण पिछले दो-तीन वर्षों में सैकड़ों की सख्या में उपभोक्ता स्टोर्स प्रत्येक देश मे स्थापित हो गये हैं और होते जा रहे हैं। यह कहना कठिन है कि नियन्त्रण के हटने पर जब सब चीजें आसानी से मिलने लगेंगी तब भी ये स्टोर्स रहेंगे या टूट जावेंगे।

मदरास और बम्बई प्रदेशों में इन स्टोरों की होल-सेल यूनियनें भी स्थापित हो गई हैं जो अपने सम्बन्धित स्टोरों के लिए थोक माल खरीदती हैं और स्टोरों को बेच देती हैं।

मद्रास का ट्रिपलीकेन स्टोर

भारत मे केवल ट्रिपलीकेन स्टोर ने आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की है। यह

स्टोर ६ अप्रैल १६०४ को खोला गया। आरम्भ में केवल आठ-आठ रुपये के दो कर्मचारी रक्खे गए। स्टोर के जन्मदाताओं ने स्टोर की देखभाल में बहुत समय देना शुरू किया। जहाँ तक हुआ व्यय कम किया गया। स्टोर सफल हुआ। आज स्टोर की बीस शाखायें काम कर रही हैं। ६ के पास अपनी निजी इमारतें हैं। स्टोर वर्ष में ग्यारह या बारह लाख रुपये की वस्तुएँ बेचता है। स्टोर की चुकाई हुई पूँजी एक लाख रुपये से अधिक है और रक्षित कोष (Reserve Fund) डेढ़ लाख रुपये के लगभग है।

मद्रास और मैसूर में स्टोर कुछ सफल हुए हैं। बंगलोर का स्टोर भी एक अत्यन्त सफल संस्था है, परन्तु वह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। भारत में स्टोर्स की संख्या बहुत कम है। उत्तर प्रदेश में नए स्टोर्स खुल रहे हैं। भारत के अधिकतर स्टोर्स असफल हैं।

महायुद्ध और स्टोर

द्वितीय महायुद्ध के समय भी कंट्रोल के कारण तथा आवश्यक वस्तुओं के न मिलने के कारण बहुत बड़ी संख्या में सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स खोले गये थे। अभी यह कह सकना बहुत कठिन है कि जब यह कन्ट्रोल इत्यादि टूट जावेंगे तब ये स्टोर्स व्यापारियों की होड़ में टिक सकेंगे या नहीं। कम से कम इस समय तो प्रादेशिक सरकार की नीति राशन तथा कन्ट्रोल की वस्तुओं का वितरण उपभोक्ता स्टोर्स के द्वारा कराने की है। शहर और गाँव में स्थान-स्थान पर ये स्टोर्स खोले जा रहे हैं। सन् १६४८ के आरम्भ में जब कन्ट्रोल हटाया गया था, सरकार को विश्वास दिलाया गया था कि व्यापारी-गण अब धोखाधड़ी और बेईमानी नहीं करेंगे। परन्तु सरकार को धोखा हुआ और अब सरकार व्यापारियों के हित-अहित का ध्यान छोड़कर सहकारी स्टोरों की व्यवस्था कर रही है। उत्तर प्रदेश में कई हजार सहकारी स्टोर्स स्थापित किये जा चुके हैं परन्तु उनकी सबसे बड़ी कमजोरी सहकारी शिक्षा का अभाव तथा कम प्रचार है।

अभ्यास के प्रश्न

१—गैर साख कृषि सहकारी समितियों को क्यों स्थापित किया गया ? उनक आवश्यकता क्यों पड़ी ?

२—केवल साख कृषि सहकारी समिति से ही किसान की सारी समस्यायें क्यों हल नहीं हो सकतीं ?

३—गाँव वालों को गाँव के बनिये से चीजें खरीदने मे क्या हानि होती है ? यदि वे क्रय-समिति बना लें तो उनको क्या लाभ होगा ?

४—यदि तुमसे कहा जावे कि तुम अपने गाँव में एक क्रय-समिति बनाओ तो तुम उसका सगठन किस प्रकार करोगे ?

५—क्रय समिति अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को किस प्रकार पूरा करती है ?

६—गाँव के महाजन, बाहर से आने वाले व्यापारियों के एजेन्ट तथा मडी में अपनी पैदावार बेचने ने किसान को क्या हानि होती है ?

७—इस स्थिति में कि जिसमें किसान आजकल है वह अपनी पैदावार का उचित मूल्य क्यों नहीं पा सकता ?

८—विक्रय समितियाँ क्या कार्य करती हैं ? किसानों को विक्रय समिति के सदस्य बनने से क्या लाभ होता है ?

९—विक्रय समिति का सगठन किस प्रकार होता है और वह किस प्रकार सदस्यों की पैदावार को बेचती है ?

१०—विक्रय समिति को सफलतापूर्वक चलाने में कौन-कौन सी कठिनाइयाँ पड़ती हैं ?

११—चकबन्दी समितियाँ किस प्रकार गाँव के बिखरे हुये खेतों की चकबन्दी करती हैं ?

१२—चकबन्दी समिति के स्थापित होने तथा उसके सफलतापूर्वक चकबन्दी करने में क्या-क्या अड़चनें आती हैं ? क्या इनके स्थान पर सहकारी कृषि समितियाँ स्थापित की जायँ ?

१३—रहन-सहन-सुधार समितियो का क्या उद्देश्य है और कौन-कौन से कार्य करता है ?

१४—रहन-सहन सुधार समितियाँ कहाँ-कहाँ सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं ?

१५—इङ्गलैण्ड में उपभोक्ता स्टोर आन्दोलन का विवरण लिखिये ।

१६—सहकारी क्रय-विक्रय समिति क्या है ? क्या उत्तर प्रदेश में ऐसी

समितियाँ हैं ? उनका ग्राम-जीवन में क्या महत्व है ? (१६४२)

१७—उपभोक्ता स्टोर से क्या लाभ हैं ? यदि तुम्हारे स्कूल में विद्यार्थी उपभोक्ता स्टोर खोलना चाहें तो तुम उसके लिये कौन से नियम पसन्द करोगे ?

१८—निम्नांकित किसी सहकारी समिति की व्यवस्था और कार्य-प्रणाली का वर्णन कीजिये :—

(क) उपभोक्ता स्टोर (१६४८)

(ख) रहन-सहन सुधार-समिति (१६४६)

(ग) सहकारी कृषि समिति ।

१६—तुम्हारे प्रदेश में कौन-कौन सी कृषि सहकारी समितियाँ चालू हैं ? वे किस प्रकार से ग्रामीणों की हालत सुधारने में सहायता करती हैं ? (१६४४)

२०—उपभोक्ता स्टोर या बिक्री समिति के सिद्धान्त समझाइए । (१६४४)

२१—औद्योगिक केन्द्रों में सहकारी उपभोक्ता स्टोरों की क्या आवश्यकता है ? आपके प्रदेश में ऐसे स्टोर क्यों सफल नहीं हुए हैं ? (१६४३)

२२—उपभोक्ता सहकारी स्टोर का सगठन कैसे होता है ? इससे क्या लाभ हैं ? (१६३०)

इकतीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के सङ्घ

(Union of Co-operative Societies)

सहकारिता आन्दोलन सर्वसाधारण का आन्दोलन है । उसे बाहरी सहायता पर निर्भर न रहकर स्वावलम्बी बनाना चाहिये । साख समितियों को डिपाजिट आकर्षित करके कार्यशील पूँजी स्वयं इकट्ठी करनी चाहिये । परन्तु भारत में जब साख समितियाँ डिपाजिट आकर्षित करने में असफल रहीं तो सेन्ट्रल बैङ्क अथवा बैंकिंग यूनियन की स्थापना करनी पड़ी । सहकारी समितियों की देख-भाल साधारणतः उनकी पञ्चायत को करनी चाहिये । किन्तु अशिक्षा के कारण जब पञ्चायतें अपना कार्य सुचारु रूप से न कर सकीं तो देख-भाल सुपरवाइजिंग यूनियन की स्थापना की गई जो अपने से सम्बन्धित समितियों की

देख भाल करती है। किन्तु आय-व्यय निरीक्षण तथा सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा का कार्य तो सहकारी समितियो की सम्मिलित यूनियन ही कर सकती है।

भारत में प्रत्येक प्रदेश मे प्रदेशीय सहकारी यूनियन अथवा प्रदेशीय सहकारी इस्टिट्यूट की स्थापना हो चुकी है। इन प्रदेशीय सस्थाओं का मुख्य कार्य प्रचार करना, समितियों का सगठन, साहित्य प्रकाशन, समितियो की देख-भाल तथा उनका निरीक्षण करना है।

भारत मे दो प्रकार की यूनियनें, गारन्टी यूनियन तथा सुपरवाइजिंग यूनियन अधिक सख्या में स्थापित की गई हैं, अतएव हम उनके विषय में विस्तारपूर्वक लिखते हैं।

गारंटी यूनियन (Guarantee Union)

गारटी यूनियन सेन्ट्रल बैङ्क द्वारा साख समितियो को दिये हुये ऋण की गारटी देती है। तीस या चालीस सहकारी साख समितियाँ मिलकर एक गारटी यूनियन बनाती है। जो भी साख समिति गारटी यूनियन की सदस्य बनती है वह अपनी साधारण सभा मे निश्चय करती हैं कि यदि गारटी यूनियन से सम्बन्धित कोई समिति अपना ऋण नहीं चुका पावेगी तो समिति एक निश्चित रकम तक उस दिवालिया समिति के ऋण को चुकाने की गारटी देती है। इस प्रकार यूनियन से सम्बन्धित प्रत्येक समिति एक निश्चित रकम की गारटी देती है। यह सब मिला कर यूनियन की गारटी होती है और यूनियन साख समितियों के ऋण की गारटी सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन को देती है।

गारटी यूनियन का जन्म बर्मा मे हुआ। तदुपरान्त बम्बई, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बरार, पू० बगाल, बिहार और उड़ीसा मे भी इनका प्रयोग किया गया, किन्तु वे असफल रहीं, इस कारण वे क्रमशः टूट गई और आगे फिर प्रदेशों में इस प्रकार की यूनियन स्थापित ही नहीं की गई। अन्य प्रदेशों मे देशी राज्यों ने भी फिर इन्हे नहीं अपनाया। यह यूनियन वस्तुतः बेकार थी, क्योंकि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं, फिर गारटी यूनियन की आवश्यकता ही कहाँ रहती है। अपने जन्म स्थान बर्मा के अतिरिक्त और कहीं भी अधिक दिनो यह गारटी यूनियन नहीं रही। विद्वानों

का मत है कि वर्मा में सहकारिता 'आन्दोलन की असफलता में यूनियनों का का बहुत हाथ है।

सुपरवाइजिंग यूनियन

सुपरवाइजिंग यूनियन के लिए निम्नलिखित कार्यों की आवश्यकता होती है :—कृषि सहकारी समितियों की देखभाल करना, उनकी उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र में नवीन समितियों का सगठन करना तथा उनकी उन्नति करना, अपने से सम्बन्धित समितियों की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, तथा उनके सदस्यो की हैसियत का लेखा तैयार करके उनकी साख निर्धारित करना, समितियों को उनके कार्य सचालन के विषय में उचित परामर्श देना, समितियो के सदस्यों तथा पचों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबन्ध कराना, समितियों को यदि आवश्यकता हो तो क्रय विक्रय में सहायता देना और सेन्ट्रल बैंक से उनका सम्बन्ध स्थापित करना।

सुपरवाइजिंग यूनियन से सम्बन्धित समितियाँ अपने प्रतिनिधियों को यूनियन की साधारण सभा में भेजती हैं। यूनियन की साधारण सभा एक कार्य कारिणी समिति का निर्वाचन करती है। कार्य-कारिणी समिति ही यूनियन का सारा प्रबंध करती है और सम्बन्धित समितियो की देख-भाल के लिए एक सुपरवाइजर नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति अपनी पूँजी के अनुसार यूनियन को चन्दा देती है। कृषि सहकारियो को सफलता पूर्वक चलाने के लिए सुपरवाइजिंग यूनियन की बहुत आवश्यकता है।

एक यूनियन एक ताल्लुके अथवा एक तहसील के बड़े क्षेत्र में कार्य नहीं करती। २० से ४० समितियाँ एक यूनियन से सम्बन्धित रहती हैं। मद्रास प्रदेश में चार सौ के लगभग यूनियन सफलतापूर्वक कार्य करती हैं। बिहार और उड़ीसा में दो प्रकार की यूनियनें हैं, एक तो आय-व्यय-निरीक्षण करती हैं, दूसरी देख भाल करती हैं। बम्बई में ये समितियाँ अधिक सख्या में हैं और सफलता-पूर्वक कार्य कर रही हैं। यहाँ यह प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रदेश में कोई कृषि सहकारी साख समिति ऐसी न रहे जो किसी न किसी यूनियन से सम्बन्धित न हो। पूर्वी पजाब और उत्तर प्रदेश में यूनियन नहीं है। वहाँ समितियो की देख-भाल का कार्य प्रदेशीय सहकारी यूनियन अथवा प्रदेशीय सहकारी इस्टिट्यूट

करती हैं। प्रत्येक प्रदेश में यह सुपरवाइजिंग यूनियन प्रदेशीय सहकारी यूनियन अथवा इंस्टिट्यूट से सम्बन्धित होती हैं। प्रदेशीय यूनियन इनका संगठन और देख-भाल करती हैं।

प्रदेशीय सहकारी यूनियन
(Provincial Co-operative Union)

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि प्रत्येक प्रदेश में एक सहकारी यूनियन का इंस्टिट्यूट है। पहले प्रदेशीय सहकारी यूनियन नहीं थी। उस समय यह अनुभव हुआ कि सारे प्रदेश मे सहकारी आन्दोलन की उन्नति करने के लिये कोई संस्था होनी चाहिये। प्रदेश भर के गैर सरकारी सहकारी कार्यकर्त्ता आपस में मिलकर विभिन्न समस्याओं पर परामर्श और विचार नहीं कर पाते थे। न प्रदेशीय सहकारी विभाग के अतिरिक्त कोई उस आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखित प्रचार करता था। सहकारी प्रचार कार्य को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था। फिर सहकारी विभाग काम भी नगण्यप्राय करते थे। "दिखावट अधिक, काम कम"। सहकारी शिक्षा का भी सहकारी ढङ्ग से प्रबन्ध नहीं हो पाता था। अत. यह सोचा गया कि इन सब कार्यों के लिए एक प्रदेशीय गैर सरकारी व्यवस्था की जाय। अत. प्रदेशीय सहकारी यूनियन बनाई गई। वह प्रदेशीय यूनियन गैर सहकारी व्यक्तियों को जो इस आन्दोलन में सहानुभूति रखते हैं, एक सूत्र मे संगठित करती है। एक प्रकार से सहकारिता आन्दोलन का यह प्रदेश में नेतृत्व करती है। मुख्य कार्य ये हैं :—

(१) सहकारिता आन्दोलन की समस्याओं पर प्रकाश डालना। इसके लिये प्रतिवर्ष वह एक सम्मेलन करती है जिसमें प्रदेश के कार्यकर्त्ता भाग लेते हैं और इस आन्दोलन के सम्बन्ध मे अपने विचार प्रगट करते हैं।

(२) पुस्तकें तथा पत्र निकाल कर तथा अन्य प्रकार से प्रचार-कार्य करना।

(३) सहकारी शिक्षा का प्रबन्ध करना, इसके लिये ये कक्षायें तथा स्कूल खोलती हैं जिसमें सहकारिता की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है।

(४) सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार* तथा प्रदेशीय सरकार को सहकारिता सम्बन्धी मामलों में राय देती है।

---

* प्रदेशीय सरकार की ओर से नियुक्त कर्मचारी जो प्रदेश में सहकारिता आन्दोलन को चलाता है।

(५) कहीं कहीं प्रदेशीय यूनियनें सहकारी समितियों के निरीक्षण, संगठ तथा आय-व्यय निरीक्षण का कार्य भी करती हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—गारटी यूनियन कार्य करती है? यह यूनियन असफल क्यों हुई?

२—सुपरवाइजिंग यूनियन के कार्यों का उल्लेख कीजिये।

३—सुपरवाइजिंग यूनियन की क्यो आवश्यकता है?

४—प्रदेशीय सहकारी यूनियन के मुख्य कार्य क्या हैं?

५—प्रदेशीय सहकारी यूनियन की प्रदेश में सहकारिता आन्दोलन की उन्नति करने के लिए क्यो आवश्यकता हुई?

बत्तीसवाँ अध्याय

सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क

(Central Co-operative Banks and Banking Unions)

आरम्भ में जब भारत में सहकारी साख समितियाँ स्थापित की गई तब यह आशा की जाती थी कि ग्रामीण जनता उन समितियो में रुपये जमा करेगी और समितियो के पास सदस्यो को ऋण देने के लिए डिपाजिट द्वारा यथेष्ट पूँजी आ जावेगी। इस कारण सन् १९०४ के सहकारिता कानून के अनुसार केवल नगर तथा ग्राम्य साख समितियो की स्थापना का विधान किया गया। किन्तु यह आशा कि गाँवों के रहने वाले इन साख समितियो मे रुपया जमा करेंगे, पूरी नहीं हुई। इसके दो मुख्य कारण हैं, प्रथम—किसान अधिकाश मे निर्धन तथा ऋणी हैं, द्वितीय, वे बैङ्को में अपनी बचत का रुपया जमा करने के अभ्यस्त नहीं हैं। विभाग के रजिस्ट्रार सरकार अथवा धनी व्यक्तियों से ऋण लेकर समितियों के लिए रुपये का प्रबन्ध करते थे। किन्तु इस प्रकार अधिक दिनो तक काम नहीं चल सकता था।

अस्तु, इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैङ्क खोले जायें जो सहकारी साख समितियो के लिए धन इकट्ठा करें। सन् १९१२ में दूसरा सहकारिता कानून पास हो गया और उसके अनुसार सेन्ट्रल बैंक खोलने

की सुविधा हो गई । अतएव सन् १६१२ के उपरान्त सहकारी सेन्ट्रल बैंक खोले गये।

सहकारी सेन्ट्रल बैंक दो प्रकार के होते हैं । ऐसे सेन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल सहकारी समितियाँ ही हो सकती हैं । दूसरे प्रकार के सहकारी बैंक वे है जिनके सदस्य व्यक्ति तथा सहकारी समितियाँ दोनों ही होते है ।

पहले प्रकार के सेन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल सहकारी समितियाँ हो सकती हैं, सहकारी बैंकिंग यूनियन कहलाते है । वास्तव में बैंकिंग यूनियन ही आदर्श सरकारी सेन्ट्रल बैंक हैं। क्योंकि उनसे सम्बन्धित सहकारी समितियाँ ही सेन्ट्रल बैंक की नीति को निर्धारित करती हैं और बैंक का प्रबन्ध भी उन्हीं समितियो के हाथ मे रहता है । भारत मे बैंकिंग यूनियन सख्या मे अधिक नहीं हैं, सेन्ट्रल बैङ्क ही सख्या मे अधिक है ।

सेन्ट्रल बैङ्क का क्षेत्र प्रत्येक प्रदेश मे भिन्न होता है । उस क्षेत्र की समस्त सहकारी समितियाँ उस सेन्ट्रल बैङ्क से सम्बन्धित रहती ह । कहीं-कहीं एक जिले मे केवल एक ही सेन्ट्रल बैङ्क होता है । ऐसी दशा मे उसे जिला सहकारी बैङ्क कहते हैं । उदाहरण के लिए "बरेली डिस्ट्रिक्ट कोआपरेटिव बैङ्क" । उत्तर भारत के प्रदेशों मे अधिकतर एक तहसील के लिए सेन्ट्रल बैंक होता है ।

साधारण सभा (General Meeting)

सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन के हिस्सेदारों की सभा को जेनरल मीटिंग या साधारण सभा कहते हैं । साधारण सभा के सदस्यों को केवल एक वोट देने का अधिकार होता है । साधारण सभा ही बोर्ड आफ डायरेक्टर्स (Board of Directors) का चुनाव करती है ।

बोर्ड आफ डायरेक्टर्स

बोर्ड आफ डायरेक्टर्स बैंक का प्रबन्ध करता है । डायरेक्टरों की सख्या अधिक होने के कारण बोर्ड आफ डायरेक्टर्स अपने सदस्यों मे से कुछ कमेटियाँ बना देता है जो बैंक का काम चलाती हैं ।

बैंक का दैनिक कार्य अवैतनिक मत्री चेयरमैन अथवा मैनेजिंग डायरेक्टर या मैनेजर की सलाह से करता है । डायरेक्टरों को फीस अथवा वेतन कुछ नहीं मिलता । उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रदेशों मे अधिकतर बैंक का चेयरमैन, डिस्ट्रि-

क्ट मेजिस्ट्रेट अथवा कोई अन्य सहकारी कर्मचारी होता है। किन्तु अधिकांश प्रदेशों में चेअरमेन गैरसरकारी ही होता है। सेन्ट्रल बैंको में सहकारी साख समितियों के प्रतिनिधि ही अधिक सख्या में होते है।

कार्यशील पूँजी (Working Capital)

सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन की कार्यशील पूँजी (Working Capital) हिस्सा पूँजी (Share Capital) रक्षित कोष (Reserve Fund) डिपाजिट तथा ऋण (Loan) के द्वारा प्राप्त होती है।

साधारणतया सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन के हिस्सों का मूल्य ५० रु० से लेकर १०० रु० तक होता है। सहकारी साख समितियाँ अपने ऋण के अनुपात से हिस्से लेती हैं। सहकारी कानून के अनुसार सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन अपने वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत लाभ रक्षितकोष (Reserve Fund) में जमा करती है। हिस्सा पूँजी (Share Capital) तथा रक्षित कोष (Reserve Fund) बैंक की पूँजी होती हैं। डिपाजिट ऋण ली हुई नहीं होती है।

किन्तु सदस्यों तथा गैर सदस्यो की डिपाजिट ही बैंकिंग कार्यशील पूँजी का बड़ा भाग होती है। सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन दो प्रकार की डिपाजिट लेती है, मुद्दती (Fixed) तथा सेविंग्स। किसी-किसी प्रदेश मे चालू खाता* (Current Account) भी रक्खा जाता है, किन्तु चालू खाते में जोखिम अधिक है, इस कारण अधिकांश बैंक उसे नहीं रखते। डिपाजिट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर सेन्ट्रल बैंक ऋण भी लेते हैं। अधिकतर सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन प्रदेशीय सहकारी बैंक से ऋण लेते हैं।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर अपने से सम्बन्धित सहकारी साख समितियों तथा गैर साख समितियों को ही ऋण देते है। किसी किसी प्रदेश तथा राज्य में व्यक्तियो को भी ऋण दिया जाता है, परन्तु अब यह रिवाज बन्द किया जा रहा है।

अपरिमित दायित्व (Unlimited Liability) वाली साख समितियों को सेन्ट्रल बैंक प्रोनोट अथवा बाड पर ही ऋण दे देते हैं। अपरिमित दायित्व

---

* चालू खाता में जमा करने वाला जब भी चाहे चेक द्वारा रुपया निकाल सकता है।

होने के कारण उनका प्रोनोट ही यथेष्ट जमानत (Security) है। सहकारी समितियों को प्रोनोट के अतिरिक्त कुछ सम्पत्ति भी गिरवी रखनी होती है।

यह जानने के लिये कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सेन्ट्रल, बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन अपने से सम्बन्धित साख समितियों की हैसियत के अनुसार उन साख समितियों की अधिकतम साख (Maximum Credit) निश्चय कर देती है। उससे अधिक ऋण साख समिति को नहीं दिया जाता।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर एक दो वर्षों के लिए ऋण देते हैं। कहीं कहीं अब भी पुराने कर्जे को अदा करने अथवा भूमि में सुधार करने के लिए पाँच से दस वर्ष तक के लिए ऋण दिया जाता है। किन्तु अब अधिक समय के लिए ऋण देने का कार्य केवल भूमि बन्धक बैंक (Land Mortgage Bank) ही सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

जब सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन के पास आवश्यकता से अधिक धन हो जाता है तो वे प्रदेशीय बैंकों में जमा कर देती हैं। सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष (Reserve Fund) में जमा करके शेष हिस्सेदारों में बाँट देते हैं। किन्तु इन बैंकों के उपनियमों में अधिक से अधिक लाभ की दर भी निश्चित कर दी जाती है जिससे अधिक लाभ हिस्सेदारों को नहीं बाँटा जा सकता है।

सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन अपने से सम्बन्धित समितियों की देख-भाल करने के अतिरिक्त उन पर अपना नियन्त्रण भी रखते हैं। इस कार्य के लिए बैंक कुछ कर्मचारी रखता है। ये कर्मचारी (सुपरवाइजर) ऋण के प्रार्थनाओं की जाँच करते हैं, साख समितियों के सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करते हैं और समितियों को अपने सदस्यों से रुपया वसूल करने में भी सहायता देते हैं। किसी-किसी प्रदेश में वे कर्मचारी समितियों का हिसाब भी रखते हैं। जहाँ नवीन सहकारी समितियों को स्थापित करने के लिए विशेष कर्मचारी नहीं रक्खे जाते वहाँ ये नवीन सहकारी समितियों को स्थापित करते हैं, और प्रचार कार्य करते हैं। किन्तु अब इनके बहुत से कार्य प्रदेशीय इंस्टिट्-

यूट करने लगी हैं। कुछ प्रदेशों में सहकारी समितियों की देखभाल का कार्य सुपरवाइजिंग यूनियन को दे दिया गया है।

सेन्ट्रल बैंकों के हिसाब की जाँच रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त आडिटर करते हैं। आडिटर की रिपोर्ट रजिस्ट्रार के पास जाती है। सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारी करते हैं। प्रत्येक बैंक वार्षिक बैलेंस शीट (लेनी देनी का लेखा) तैयार करके उसको आडिटर की रिपोर्ट के साथ रजिस्ट्रार तथा हिस्सेदारों के पास भेजता है।

सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिंग यूनियन का दायित्व परिमित (Limitedl labilıty) होता है। उत्तर प्रदेश में ६८ सेन्ट्रल बैंक हैं। भारत में कुल मिलाकर ५०० सेन्ट्रल सहकारी बैंक हैं और उनकी कार्यशील पूँजी ५० करोड़ रुपये से अधिक है।

अभ्यास के प्रश्न

१—सहकारी सेन्ट्रल बैंक स्थापित करने की भारत में क्यों जरूरत पड़ी?

२—सेन्ट्रल बैंक कितने प्रकार के होते हैं और उनमें क्या भेद है?

३—सेन्ट्रल बैंक का प्रबन्ध कौन कैसे करता है?

४—सेन्ट्रल बैंक की कार्यशील पूँजी कैसे इकट्ठा होती है?

५—सेन्ट्रल बैंक का मुख्य कार्य क्या है? कृषि साख सहकारी समितियों को वे किस प्रकार सहायता पहुँचाते हैं?

६—सेन्ट्रल बैंक का सहकारिता आन्दोलन में क्या स्थान है?

७—सेन्ट्रल बैंक अथवा बैंकिंग यूनियन का सगठन किस प्रकार से होता है?

८—सेन्ट्रल बैंक की व्यवस्था और कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये। (१९४४ और १९४६)।

तैंतीसवाँ अध्याय

प्रदेशीय सहकारी बैंक

(Provincial Co-operative Bank)

जैसे-जैसे देश में सहकारिता आन्दोलन फैलता गया, वैसे-वैसे एक ऐसी संस्था की आवश्यकता का अनुभव होने लगा जो सेन्ट्रल बैंकों का आपस में

सम्बन्ध स्थापित कर सके। १६१५ में मैक्लेगन कोआपरेटिव कमेटी ने प्रत्येक प्रदेश में प्रदेशीय सहकारी बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बताई। अत एव सभी बड़े-बड़े प्रदेशों मे प्रदेशीय सहकारी बैंक स्थापित हो गये।

प्रदेशीय बैंकोंकी स्थापना के पूर्व रजिस्ट्रार प्रदेशीय बैंक का कार्य करता था। यदि किसी सेन्ट्रल बैंक की पूँजी की अधिक आवश्यकता होती, तो रजिस्ट्रार प्रत्येक सेन्ट्रल बैंक को एक गश्ती चिट्ठी लिख देता और जिन सेन्ट्रल बैंकों के पास आवश्यकता से अधिक पूँजी होती थी उनसे ऋण दिलवाने का प्रबन्ध कर देता था।

प्रदेशीय सहकारी बैंक सेन्ट्रल बैंकों की अतिरिक्त पूँजी को जमा करते हैं और जिन सेन्ट्रल बैंकों को पूँजी की आवश्यकता होती है उन्हें ऋण देते हैं इसके अतिरिक्त द्रव्य बाजार (Money market) तथा सहकारी साख आन्दोलन के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी प्रदेशीय बैंको मे आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारत में १५ प्रदेशीय बैंक हैं। भारत में उड़ीसा के अतिरिक्त सभी प्रदेशों में प्रदेशीय सहकारी बैंक हैं। १६४५ के जनवरी मे उत्तर प्रदेश मे भी प्रदेशीय बैंक स्थापित हो गया।

प्रदेशीय सहकारी बैंक परिमित दायित्व (Limited liability) वाले होते हैं। अधिकतर प्रदेशीय बैंक मिश्रित ढङ्ग के हैं, अर्थात् उनके सदस्य व्यक्ति, सहकारी समितियाँ तथा सेन्ट्रल बैंक सभी होते हैं। किन्तु पूर्वी पञ्जाब और पूर्वी बङ्गाल के प्रदेशीय बैंकों मे व्यक्ति हिस्सेदार नहीं हो सकते। केवल सहकारी समितियाँ तथा सेन्ट्रल बैंक ही हिस्सेदार हो सकते हैं।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि प्रदेशीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों के अभिभावक का कार्य करते हैं। सहकारी साख आन्दोलन का द्रव्य बाजार (Money market) से निकट सम्बन्ध स्थापित हो जावे इसके लिए यह आवश्यक है कि सहकारी सेन्ट्रल बैंक अन्य बाहरी बैंकों से प्रदेशीय बैंक के द्वारा काम करे। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि प्रदेशीय सहकारी बैंक सेन्ट्रल बैंकों तथा बैंकिङ्ग यूनियन को आपस में एक दूसरे से ऋण न लेने दें। क्योंकि इससे प्रदेशीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों का अनुशासन ठीक प्रकार से नहीं कर सकते।

प्रदेशीय बैंकों को सहकारी साख समितियों से सीधा सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध सेन्ट्रल बैंक तथा बैंकिङ्ग यूनियन से होना चाहिये और सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध प्रदेशीय बैंक से होना चाहिये।

प्रदेशीय बैंक अपनी कार्यशील पूंजी के लिए सहकारी साख समितियों, सेन्ट्रल बैंकों और जनता की डिपाजिट पर निर्भर रहते हैं। जब प्रदेशीय बैंक सर्व साधारण से डिपाजिट स्वीकार करते हैं, तब उन्हे जमा करने वालों को माँगने पर, देने के लिये नक़द रुपया रखना पड़ता है। कुछ प्रदेशीय सरकारों ने नियम बनाकर कम से कम नकद रुपया कितना रखना चाहिये, यह निश्चय कर दिया है। जितने दिनों के लिये प्रदेशीय बैंकों की डिपाजिट मिलती है, उससे अधिक के लिये वे ऋण नहीं देते हैं। प्रत्येक प्रदेश मे प्रदेशीय बैंकों ने अधिक से अधिक समय निश्चित कर दिया है जिससे अधिक के लिए वे डिपाजिट स्वीकार नहीं करते। अधिकाश प्रदेशीय बैंक चालू खाता (Current account) भी रखते हैं, केवल पूर्वी पञ्जाब प्रदेशीय बैङ्क चालू खाता नहीं रखता। प्रदेशीय बैङ्क डिपाजिट लेने के अतिरिक्त, साधारण बैंकिङ्ग कार्य को करते हैं। बम्बई, मद्रास तथा पू० पञ्जाब के प्रदेशीय बैंकों ने लम्बे समय के लिये डिबेंचर (Debenture) भी बेचे हैं। अन्य बैंकों की भाँति प्रदेशीय बैंकों के सामने भी कार्यशील पूँजी (Working capital) की अधिकता तथा कमी की समस्या उपस्थित होती है। अतएव प्रदेशीय बैङ्क एक दूसरे को ऋण देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर थोड़े समय के लिये कुछ सूद देकर डिपाजिट बढ़ाने का प्रयत्न करते है। उत्तर प्रदेश की सरकार ने प्रादेशिक सहकारी बैंक के ५ लाख रुपये के हिस्से खरीद रखे हैं। उसे चाहिये कि इसके डिबेंचर के रुपये और उसके ब्याज की गारंटी भी ले। ऐसा करने से प्रादेशिक बैंक को जनता से रुपया मिलेगा।

नियमानुसार, इन प्रदेशीय बैंकों का आय-व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार के द्वारा होना चाहिये, परन्तु किसी प्रदेश में रजिस्ट्रार ने पेशेवर आडिटरों के द्वारा प्रदेशीय बैंकों के हिसाब की जाँच करवाने की आज्ञा दे दी है। प्रदेशीय बैंक अपनी वार्षिक बैलेंस शीट तैयार करते हैं। कुछ समय हुआ जब "अखिल भारतीय प्रदेशीय सहकारी बैंक एसोसियेशन (The All India Co-provincial

Co operative Banks Aociation) नामक सस्था को जन्म दिया गया। इस एसोसियेशन का मुख्य कार्य यह है कि वह प्रत्येक प्रदेशीय बैंक की कार्य-शील पूँजी की अधिकता तथा कमी के आँकड़ों को जमा करती है और सब प्रदेशीय बैंकों को सूचनार्थ भेज देती है। एसोसियेशन की बैठक दो वर्ष में एक बार होती है, जिसमें सहकारिता आन्दोलन सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार होता है। जब कभी प्रदेशीय बैंकों को सरकार का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है, तो एसोसियेशन ही सरकार से उस सम्बन्ध में बात चीत करती है।

जब से भारत में रिजर्व बैंक* खुल गया है तब से प्रदेशीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग (Agricultural Credit Department) से स्थापित हो गया है। इसके पूर्व प्रदेशीय सहकारी बैंकों का सम्बन्ध इम्पीरियल बैङ्कों से था। आवश्यकता पड़ने पर सहकारी बैंक रिजर्व बैङ्क से ऋण लेते हैं। भारत में १५ प्रदेशीय सहकारी बैङ्क हैं और उनकी कार्यशील पूँजी २५ करोड़ रुपये है।

अभ्यास के प्रश्न

१—प्रदेशीय सहकारी बैङ्क क्या क्या कार्य करता है?

२—प्रदेशीय बैङ्क की क्या आवश्यकता है? इससे सहकारी समितियों और ग्रामीण जनता को क्या लाभ पहुँचते हैं। (१९५३)

३—प्रदेशीय बैङ्क का सगठन किस प्रकार होता है। वह अपने सम्बन्धित समितियों तथा जनता को किस तरह सहायता पहुँचाता है? (१९४९)

४—प्रदेशीय बैङ्कों का सगठन किस प्रकार का है और वे अपनी कार्यशील पूँजी किस प्रकार इकट्ठा करते हैं।

---

*रिजर्व बैङ्क :—यह भारत सरकार का बैङ्क है। इसका मुख्य कार्य सर-कारी लेन-देन के काम को करना, मुद्रा (currency) को स्थिर रखना है। यह बैंक द्रव्य बाजार (Money market) पर नियन्त्रण रखता है और दूसरे बैङ्कों को समय पर ऋण देता है।

चौंतीसवाँ अध्याय

सहकारिता आन्दोलन की दशा

भारत में सहकारिता आन्दोलन को प्रारम्भ हुये ५० वर्ष का समय हो गया किन्तु हमारे गाँवों की दशा में कोई विशेष सुधार हुआ हो, ऐसा नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि सहकारिता आन्दोलन अभी कमजोर है। यह तो इसी से ज्ञात हो जाता है कि प्रति वर्ष बहुत सी सहकारी समितियाँ दिवालिया हो जाती हैं और बहुतों की दशा अच्छी नहीं है।

चालीस वर्षों में इस आन्दोलन को देश में एक मजबूत आन्दोलन बन जाना चाहिये था समितियों की उन्नति होनी चाहिए थी, गाँव वालों को दूसरी तरह की सहकारी समितियों की माँग करनी चाहिये थी, महाजन को सहकारी साख समितियों से डरना चाहिये था, समिति के सदस्यों की गरीबी कम होनी चाहिये थी। लेकिन ऐसा कुछ हुआ हो, यह दिखलाई नहीं देता। इससे ही यह जाना जा सकता है कि इस आन्दोलन की हालत अच्छी नहीं है।

सहकारी समितियों की असफलता के नीचे लिखे मुख्य कारण हैं :—

(१) किसान का कर्ज से दबा होना। जब तक किसान का कर्ज से छुटकारा नहीं होता, तब तक वह अपनी उन्नति के किसी भी काम में दिलचस्पी नहीं रख सकता।

(२) गाँव वालों का अशिक्षित होना। समिति का काम करने के लिये शिक्षित होना जरूरी है। इसका फल यह होता है कि समिति का कर्ता धर्ता वैतनिक मन्त्री हो जाता है, दूसरे सदस्य उसकी ओर से उदासीन हो जाता है। गाँव और शहर, दोनों जगह सिद्धान्तों की शिक्षा का प्रचार किया जाना चाहिये।

(३) सहकारी समितियों और सहकारिता आन्दोलन पर सरकारी देखभाल बहुत ज्यादा है। सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। इसका फल यह होता है कि अशिक्षित किसान यह समझता है कि ये सरकारी बैङ्क हैं और हमें कर्ज देने के लिये खोले गये हैं। सहकारिता की यह भावना कि हम मिल कर स्वयं अपने पैरों पर खड़े हों, इससे नष्ट हो जाती है।

(४) सहकारिता आन्दोलन की एक कमजोरी यह भी रही है कि अभी तक सहकारी साख समितियों की ओर अधिक ध्यान दिया गया और गैर साख समितियों की स्थापना की ओर कम ध्यान दिया गया। किसान को केवल साख की ही जरूरत नहीं है, वरन् उसको इस बात की भी जरूरत है कि उसकी पैदावार का उसे उचित मूल्य मिले और उसके काम में आने वाली चीजें भी उसे उचित मूल पर मिलें। हर्ष की बात है कि सहकारिता विभाग का इस ओर ध्यान गया है और गैर साख-समितियाँ अधिक संख्या में स्थापित की जा रही हैं।

(५) आन्दोलन की कमजोरी का एक यह भी कारण है कि सहकारिता विभाग के इन्सपेक्टर* और आर्गनाइजर† सहकारिता के सिद्धान्तों को बिना अच्छी तरह से सदस्यों को समझाए, जल्दी में समितियों का संगठन कर देते हैं। इन कर्मचारियों का तबादला होता रहता है। अतएव यदि ऐसी कमजोर समितियाँ बाद को टूट जावें तो उन पर दोष नहीं आता। इसलिए अपने ऊँचे अफसरों को प्रसन्न करने के लिये वे जल्दी में बहुत सी समितियों का संगठन कर देते हैं।

(६) कहीं कहीं पंच या सरपंच बेईमान होते हैं और वे समिति के रुपये से स्वयं लाभ उठाते हैं।

(७) कहीं कहीं महाजन अपने आदमियों को समिति का सदस्य बना कर उसे हथियाने का प्रयत्न करता है और कहीं-कहीं कोई प्रभावशाली आदमी समिति को हथिया लेता है।

(८) साख समितियों से ऋण मिलने में कभी कभी बहुत देर हो जाती है। साथ ही जब किसान साख समितियों से कर्ज लेता है तो यह बात छिपी नहीं रहती। भारतीय किसान यह नहीं चाहता कि लोग जानें कि वह कर्जदार है।

(९) सहकारी आन्दोलन तभी किसी देश में सफल हो सकता है जब किसानों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने के लिए लोग इस आन्दोलन में आवें। लेकिन भारत के जो भी गैर सरकारी लोग इसमें आये, वे अधिकतर सरकार को प्रसन्न करने के लिए आये। देश में किसानों की सेवा करने की जिन्हें लगन है, वे इस आन्दोलन से दूर रहे हैं।

---

*यह सहकारी समितियों की देख भाल के लिये जिले में एक होता है।
†यह समितियों का संगठन करते हैं और जिले में कई होते हैं।

ऊपर दिये हुये दोषों से यह न समझ लेना चाहिये कि सहकारिता आन्दोलन ने कोई लाभ ही नहीं हुआ। यह ठीक है कि अभी यह कमजोर है, फिर भी सहकारी समितियों से देश को बहुत लाभ हुआ है।

जहाँ साख समितियाँ हैं, वहा महाजन ने भी सूद की दर घटा दी है, किसानों में कमखर्ची की आदत पड़ रही है, बैंकिंग के सिद्धान्तों की जानकारी बढ़ रही है, लड़ाई झगड़े कम हुए हैं। किसानों की फसलो को बेचने और उचित मूल्य दिलाने का प्रबन्ध किया गया है तथा अच्छे बीज का प्रचार किया गया है।

अभ्यास के प्रश्न

१—निम्नांकित में से किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये —

(क) प्रदेशीय सहकारी बैंक, (ख) सन्तुलित भोजन, (ग) रबी, (घ) खेतों की छोटाई, (ट) कृषि विभाग, (च) रहन-सहन का तल और (छ) उत्तर प्रदेश में भूमि व्यवस्था। (१६४३)

२—किसी पाँच पर नोट लिखिए —

मुद्रा। बटाई प्रथा। ग्राम पंचायत। उपभोग। विलासिता की वस्तुयें। बाजार। सेवट। शिकमी किसान। (१६४५)

३—निम्नलिखित विषयों में से चार पर टिप्पणियाँ लिखिए —

सन्तुलित भोजन। छितरे खेत। घरेलू बजट। हाट और मेला। उत्पत्ति के साधन। सम्पत्ति उपयोगिता। (१६४५)

४—किन्हीं तीन पर टिप्पणियाँ लिखो —

सहकारी भूमिबन्धक बैंक। प्रदेशीय सहकारी यूनियन। गारंटी यूनियन। प्रदेशीय सहकारी बैंक। जीवन सुधार समिति। क्रय विक्रय समिति। (१६४५)

५—निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर नोट लिखो —

(क) भाग, (ख) बचत और गुप्त सचय, (ग) अदल-बदल, (घ) बटाई प्रथा, (ङ) कुल सूद, (च) बिखरे खेत और (छ) राष्ट्रीय सम्पत्ति। (१६४६)

६—किन्हीं पाँच पर नोट लिखिए —

क़ीमत, बटाई प्रथा, बाजार, पूँजी मुद्रा, रबी की फसल, ठेके की मजदूरी, कुल सूद। (१६४७)

७—निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर टिप्पणियाँ लिखिए :—

(क) पचायत, (ख) वेगार, (ग) शिकमी किसान, (घ) खसरा, (ङ) खत्ती, (च) अच्छा रहन-सहन का दर्जा, (छ) बैंक तथा (ज) हाट और मेला।

(१९४८)

८—भारत मे सहकारी आन्दोलन क्यों सफल नहीं हुआ है ? (१९४९)

९—निम्नलिखित मे किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—

सादा जीवन, ट्रैक्टर, गाँव की सफाई, भूमिधारी अधिकार।

१०—केवल तीन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—

प्रादेशिक सहकारी बैंक, बटाई प्रथा के दोष, ग्रामीण मनोरंजन के साधन, मजदूर-संघ, मूल्य व अर्थ। (१९५१)

११—किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए —

बहुव्येयी सहकारी समिति, मजदूर संघ, अदल बदल, आर्थिक लगान, अदालती पचायत, पारिवारिक बजट, उपयोगिता, व्यय और बचत। (१९५२)

१२—किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—

उपयोगिता, बाजार, व्यय और बचत, पारिवारिक बजट, आर्थिक लगान; गाँव का महाजन।

———